बी.एड. द्वितीय वर्ष

लिंग, विद्यालय और समाज

(GENDER, SCHOOL AND SOCIETY)

GEDE-08

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Mamta Bakliwal
   Professor
   Rajiv Gandhi College, Bhopal (M.P.)
2. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)
3. Dr.Chitra Sharma
   Principal
   Ever green Education Society, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, B.Ed.
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
4. Dr. Mamta Bakliwal
   Professor
   Rajiv Gandhi College, Bhopal (M.P.)
5. Dr. Chitra Sharma
   Princpal
   Ever green Education Society, Bhopal (M.P.)
6. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal(M.P.)

COURSE WRITERS

Dr. Neha Goswami, Guest Faculty, School of Open Learning, University of Delhi
Units: (1.0-1.1, 1.2.2, 1.3.2, 1.3.3-1.3.4, 1.4.1, 1.4.2, 1.5-1.5.1, 1.5.3, 1.5.4, 1.6-1.10, 2.0-2.1, 2.2.2, 2.3, 2.3.1, 2.3.2-2.3.3, 4.1-2.4.3, 2.5, 2.5.1, 2.6-2.10)

Dr. Firdous Azmat Siddiqui, Lecturer, Sarojini Naidu Centre for Women's Studies, Jamia Millia Islamia
Unit: (1.2.3, 1.3.1)

Dr. Chandra Shekhar Goswami, Indian Institute of Technology (IIT), Kanpur
Units: (1.2-1.2.1, 1.3, 2.2.1, 2.4, 2.5.2, 2.5.3)

Yatindra Nath Gaur, Formerly associated with National Bal Bhawan, New Delhi
Units: (1.4, 1.5.2, 2.2, 2.2.3)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

लिंग, विद्यालय और समाज

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 लैंगिकता की समझ– अर्थ एवं परिभाषा, समाजशास्त्रीय निर्माण के रूप में लैंगिकता, लैंगिक संबंध : पितृसत्ता व मातृसत्ता लैंगिक भेदभाव और असमानता– लैंगिक भेदभाव : अर्थ, उत्पत्ति एवं विकास, श्रम विभाजन : लैंगिक भूमिका, सामाजिक स्थिति : लैंगिक पूर्वाग्रह और लैंगिक अनुपात, लैंगिक असमानताएं और उनके अन्य रूप लैंगिक अध्ययन : प्रकृति परिवर्तन– लैंगिक अध्ययन : ऐतिहासिक विकास, महिला अध्ययन : परिवर्तन एवं निरंतरता लैंगिकता और संस्कृति– भारतीय संस्कृति में लैंगिक धारणा, लैंगिक निर्माण में संस्कृति की भूमिका, समाजीकरण एवं लैंगिक निर्माण, लैंगिक निर्माण में बच्चों की पालन संबंधी प्रथाओं की आलोचना	**इकाई 1** : लैंगिकता : सामाजिक निर्माण **(पृष्ठ 3–122)**
इकाई–2 भारत में शिक्षा : एक लैंगिक विश्लेषण– भारत में विद्यालयी शिक्षा : लैंगिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक अवलोकन, लड़कियों की शिक्षा : समाजशास्त्रीय समझ और सामाजिक मुद्दे, लड़कों और लड़कियों के लिए सह विद्यालय : समस्याएं एवं समाधान पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दे– पाठ्यपुस्तक और लैंगिक प्रतिनिधित्व, स्कूली गतिविधियां: लैंगिक पूर्वाग्रह, लड़कियों की स्कूली शिक्षा : लड़कियों का नामांकन, प्रतिधारण एवं कारण लैंगिक समानता : नीतिगत हस्तक्षेप– लैंगिक न्याय समानता : संवैधानिक प्रावधान, कमेटियां और आयोग एवं नीतिगत घोषणाएं और लैंगिक समानता, लैंगिक असमानता को दूर करने के उपाय लैंगिकता एवं कक्षा अभ्यास– छात्रों की क्षमताओं के बारे में शिक्षक की धारणाओं में लैंगिक पूर्वाग्रह, स्कूली गतिविधियां एवं संस्कृति, कक्षा अभ्यास	**इकाई 2** : लैंगिकता और शिक्षा **(पृष्ठ 123–226)**

विषय–सूची

परिचय 1–2

इकाई 1 लैंगिकता : सामाजिक निर्माण 3–122

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 लैंगिकता की समझ
  1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
  1.2.2 समाजशास्त्रीय निर्माण के रूप में लैंगिकता
  1.2.3 लैंगिक संबंध : पितृसत्ता व मातृसत्ता
1.3 लैंगिक भेदभाव और असमानता
  1.3.1 लैंगिक भेदभाव : अर्थ, उत्पत्ति एवं विकास
  1.3.2 श्रम विभाजन : लैंगिक भूमिका
  1.3.3 सामाजिक स्थिति : लैंगिक पूर्वाग्रह और लैंगिक अनुपात
  1.3.4 लैंगिक असमानताएं और उनके अन्य रूप
1.4 लैंगिक अध्ययन : प्रकृति परिवर्तन
  1.4.1 लैंगिक अध्ययन : ऐतिहासिक विकास
  1.4.2 महिला अध्ययन : परिवर्तन एवं निरंतरता
1.5 लैंगिकता और संस्कृति
  1.5.1 भारतीय संस्कृति में लैंगिक धारणा
  1.5.2 लैंगिक निर्माण में संस्कृति की भूमिका
  1.5.3 समाजीकरण एवं लैंगिक निर्माण
  1.5.4 लैंगिक निर्माण में बच्चों की पालन संबंधी प्रथाओं की आलोचना
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 लैंगिकता और शिक्षा 123–226

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 भारत में शिक्षा : एक लैंगिक विश्लेषण
  2.2.1 भारत में विद्यालयी शिक्षा : लैंगिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक अवलोकन
  2.2.2 लड़कियों की शिक्षा : समाजशास्त्रीय समझ और सामाजिक मुद्दे
  2.2.3 लड़कों और लड़कियों के लिए सह विद्यालय : समस्याएं एवं समाधान
2.3 पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दे
  2.3.1 पाठ्यपुस्तक और लैंगिक प्रतिनिधित्व
  2.3.2 स्कूली गतिविधियां : लैंगिक पूर्वाग्रह
  2.3.3 लड़कियों की स्कूली शिक्षा : लड़कियों का नामांकन, प्रतिधारण एवं कारण
2.4 लैंगिक समानता : नीतिगत हस्तक्षेप
  2.4.1 लैंगिक न्याय समानता : संवैधानिक प्रावधान
  2.4.2 कमेटियां, आयोग एवं नीतिगत घोषणाएं और लैंगिक समानता
  2.4.3 लैंगिक असमानता को दूर करने के उपाय

2.5 लैंगिकता एवं कक्षा अभ्यास
2.5.1 छात्रों की क्षमताओं के बारे में शिक्षक की धारणाओं में लैंगिक पूर्वाग्रह
2.5.2 स्कूली गतिविधियां एवं संस्कृति
2.5.3 कक्षा अभ्यास
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पाठ्य पुस्तक 'लिंग, विद्यालय और समाज' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. (द्वितीय वर्ष) पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। यह पुस्तक छात्रों को लैंगिकता, विद्यालय एवं समाज के परस्पर संबंधों को समझाने का प्रयास करती है।

जेंडर एक जैविक शब्दावली है जो स्त्री और पुरुष में जैविक अन्तर को प्रदर्शित करती है वहीं लैंगिकता (जेंडर) शब्द स्त्री और पुरुष के मध्य सामाजिक भेदभाव को प्रदर्शित करता है। जेंडर शब्द इस बात की ओर इशारा करता है कि जैविक भेद के अतिरिक्त जितने भी भेद दिखते हैं, वे प्राकृतिक न होकर समाज द्वारा निर्धारित किए गए हैं और इसी में यह बात भी सम्मिलित है कि अगर यह भेद बनाया हुआ है तो दूर भी किया जा सकता है। समाज में स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव के पीछे पूरी समाजीकरण की प्रक्रिया है, जिसके तहत बचपन से ही बालक–बालिका का अलग–अलग ढंग से पालन–पोषण किया जाता है और यह फर्क सामान्यतः सभी जगह देखा जा सकता है।

लिंग विभाजन का आधार शारीरिक संरचना है। शारीरिक संरचना के आधार पर कुछ कार्यों में विभाजन अनिवार्य है जैसे कि स्त्री अपनी यौन संरचना के कारण बच्चे को जन्म देती है एवं दूध पिलाकर उसका पालन–पोषण करती है। पुरुषों की जैविकीय संरचना निम्न होने के कारण किसी भी स्थिति में पुरुष यह कार्य नहीं कर सकता है। यह एक जैविकीय भेद है इसमें समाज चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता है परन्तु सेक्स के आधार पर समाज द्वारा जो कार्यों का विभाजन किया गया है वह लैंगिक भेद के अन्तर्गत आता है।

छात्रों की सुविधा के लिए पुस्तक की प्रत्येक इकाई के आरंभ में उससे संबंधित विषय का परिचय और उद्देश्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। विद्यार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए प्रत्येक इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के तहत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

अध्ययन की सुगमता के लिए पुस्तक में दो इकाइयों को समायोजित किया गया है, जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

पहली इकाई लैंगिकता के सामाजिक निर्माण पर आधारित है। जिसमें लैंगिकता की समझ, लैंगिक संबंध के अंतर्गत पितृसत्ता व मातृसत्ता, लैंगिक भेदभाव व असमानता, लैंगिक अध्ययन, भारतीय संस्कृति में लैंगिक अवधारणा, लैंगिक निर्माण में समाजीकरण की भूमिका आदि तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई लैंगिकता और शिक्षा पर आधारित है। जिसमें भारत में विद्यालयी शिक्षा में लैंगिक परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत लड़के व लड़कियों की शिक्षा की समस्याएं, पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दे, लैंगिक असमानता को दूर करने के उपाय; स्कूली गतिविधियां तथा कक्षा अभ्यास संबंधित तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

पाठ्यपुस्तक की भाषा को सरलतम रखते हुए यह ध्यान रखा गया है कि छात्रों को उक्त विषयों का सम्यक ज्ञान हो सके। हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्रों का मार्गदर्शन करने एवं ज्ञानवर्धन करने में पूर्णतः सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 लैंगिकता : सामाजिक निर्माण

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 लैंगिकता की समझ
  1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
  1.2.2 समाजशास्त्रीय निर्माण के रूप में लैंगिकता
  1.2.3 लैंगिक संबंध : पितृसत्ता व मातृसत्ता
1.3 लैंगिक भेदभाव और असमानता
  1.3.1 लैंगिक भेदभाव : अर्थ, उत्पत्ति एवं विकास
  1.3.2 श्रम विभाजन : लैंगिक भूमिका
  1.3.3 सामाजिक स्थिति : लैंगिक पूर्वाग्रह और लैंगिक अनुपात
  1.3.4 लैंगिक असमानताएं और उनके अन्य रूप
1.4 लैंगिक अध्ययन : प्रकृति परिवर्तन
  1.4.1 लैंगिक अध्ययन : ऐतिहासिक विकास
  1.4.2 महिला अध्ययन : परिवर्तन एवं निरंतरता
1.5 लैंगिकता और संस्कृति
  1.5.1 भारतीय संस्कृति में लैंगिक धारणा
  1.5.2 लैंगिक निर्माण में संस्कृति की भूमिका
  1.5.3 समाजीकरण एवं लैंगिक निर्माण
  1.5.4 लैंगिक निर्माण में बच्चों की पालन संबंधी प्रथाओं की आलोचना
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

1.0 परिचय

सेक्स एक जैविकीय अवधारणा है। ऐन ओकली (Ann Oakely) ने अपनी पुस्तक सेक्स, जेंडर एण्ड सोसाइटी 1972 में सेक्स को परिभाषित करते हुए कहा है कि, ''सेक्स का तात्पर्य पुरुषों अथवा स्त्रियों के जैविक विभाजन से है।'' यहां तक कि संसार में सभी जीवितों को उनके जैविकीय आधार पर दो वर्गों नर तथा मादा में बांटा गया है। लिंग शब्द जेंडर का हिन्दी रूपांतरण है। सामान्यतः लिंग शब्द का प्रयोग पुरुष एवं स्त्रियों के गुणों के कुलक तथा उनके समाज द्वारा उनसे अपेक्षित व्यवहारों के लिए किया जाता है। नारीवादी के अनुसार– ''सामाजिक लिंग को स्त्री–पुरुष विभेद के सामाजिक संगठन अथवा स्त्री–पुरुष के मध्य असमान सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' जेंडर एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय रचना है। जिसका सांस्कृतिक एवं पारंपरिक जीवन पर गहरा प्रभाव रहा है, और यह विश्व की लगभग आधी जनसंख्या की बात करता है।

बच्चों में अपने माता–पिता, भाई बहनों, अध्यापकों तथा पड़ोसियों के व्यवहार को अनुकरण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। समाजीकरण के इन माध्यमों से उन्हें जैसी

टिप्पणी

शिक्षा मिलती है, उनमें वैसी ही मनोवृत्ति विकसित होती है। यही कारण है कि यदि माता–पिता लड़के और लड़कियों की भूमिका के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं या भेदभाव दिखाते हैं तो उनके बच्चों में भी उसी तरह का पूर्वाग्रह विकसित हो जाता है। किसी जाति या धर्म के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं तो बच्चे आसानी से सीख लेते हैं। अपने देश में भिन्न–भिन्न जातियों के लोग रहते हैं। सबका बालकों को संस्कार व परवरिश करने का अपना तरीका है। कुछ जातियां अपने को ऊंचा व श्रेष्ठ मानती है। धर्म व नैतिकता का व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। जन्म लेते ही बच्चा मानव निर्मित वातावरण में प्रवेश करता है जहां भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति (धर्म, प्रथा, विश्वास) आदि उसे घेरे रहते हैं। बालक को परिवार में जन्म लेते ही उस धर्म का अनुयायी होना होता है। धर्म व नैतिकता मिलकर व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित एवं संतुलित करते हैं। संस्कृति विभिन्न प्रकार से जैसे धर्म, भाषा, नैतिकता, परम्पराएं, प्रथाएं आदि से व्यक्तित्व को लगातार प्रभावित कर सिखाती है। बच्चा बचपन से ही अपने आस–पास के परिवेश से सीखने लगता है। संस्कृति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है और एक जिम्मेदार सामाजिक नागरिक के रूप में उसे जीना सिखाती है। व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करती है। उदाहरण– जैसे भारतीय संयुक्त परिवारों में बच्चों को कठोर अनुशासन में रखा जाता है तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए तरह–तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी के परिणामस्वरूप भारत में अपने माता–पिता, भाई बहनों का पारिवारिक सदस्यों के संदर्भ में उत्तरदायित्व की भावना जितनी अधिक पाई जाती है, वह अन्य देशों के लोगों में देखने को नहीं मिलती है। संस्कृति अपने समूह या समाज के लोगों को दूसरों का सम्मान करना सिखाती है। संस्कृति व्यवहार का निर्धारण करती है। परिवार में, समाज में व्यक्ति की अलग–अलग भूमिका हो सकती है। घर में पिता, पति, बेटा या भाई हो सकता है। कार्यालय में उसकी भूमिका ऑफिसर की हो सकती है। अलग–अलग परिस्थितियों में तरह–तरह का व्यवहार करना संस्कृति ही सिखाती है कि पिता को पुत्र या पुत्री से कैसा व्यवहार करना चाहिए? पति के रूप में कैसा होना चाहिए? ये तमाम तरह की भूमिकाएं व्यक्तित्व व्यवहार का निर्धारण करते हुए उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

इस इकाई के अंतर्गत सेक्स एवं जेंडर का अर्थ एवं दोनों के मध्य अंतर को समझाया गया है साथ ही घर और समाज की पृष्ठभूमि की विवेचना करते हुए लैंगिकता के पारंपरिक लक्षण को बताया गया है। समाज की विविध संस्थाओं द्वारा लैंगिक भूमिकाओं की भी विस्तृत विवेचना की गई है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- लैंगिकता का अर्थ एवं समाजशास्त्रीय निर्माण में उसकी भूमिका को समझ पाएंगे;
- लैंगिक भेदभाव, श्रम विभाजन और लैंगिक असमानताओं के बारे में जान पाएंगे;
- लैंगिक अध्ययन की प्रकृति एवं परिवर्तन की विवेचना कर पाएंगे;

- लैंगिक संबंधों में पितृसत्ता एवं मातृसत्ता की भूमिका से अवगत हो पाएंगे;
- भारतीय संस्कृति में लैंगिक अवधारणा को समझ पाएंगे।

1.2 लैंगिकता की समझ

टिप्पणी

लिंग एक जटिल शब्दावली है, जोकि आंतरिक शक्ति की स्थापना के चरम स्तरीकरण से और भी जटिल हो जाती है। इसकी वर्णनात्मक प्रकृति हमारे सभ्य समाज में पुरुषों तथा स्त्रियों के बीच मोटे तौर पर विभिन्न लिंग अनुभवों को जन्म देती है। इस कारण से, हमारे दिमाग में एक प्रत्यक्ष सवाल यह उठता है कि लिंग आधारित असमानताएं समाज में जैविक विकास के परिमाण के कारण कैसे उद्धरित होती हैं? ऐसे ही अन्य प्रश्नों ने विद्वानों के लिए लैंगिक अध्ययन को और भी जटिल बना दिया है। कुछ दशक पहले, पुरुषों तथा महिलाओं के बीच लिंग अंतर अध्ययन का मुख्य उद्देश्य था। तत्पश्चात नारीवादियों ने निश्चित किया कि नारी के संपूर्ण व्यक्तित्व को विशेष रूप से असमानता से बाहर निकालना आवश्यक है।

हाल ही में लैंगिक अध्ययन निम्नलिखित उज्ज्वल दृष्टिकोणों से मोटे तौर पर निर्देशित हुए–

- आबादी पर सामाजिक निर्माणकर्ता द्वारा जोर
- जाति, वर्ग तथा लिंग की अंतर्संबंधित प्रणाली पर जोर
- लिंग तथा जाति की अवधारणाओं के बीच संबंध का विकास करना
- नारीवाद पर संकट की पहचान करना

लिंग (जेंडर) को समझने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि इसे सामाजिक प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए।

सारणी 1.1 लिंग के पारंपरिक अभिलक्षण

स्त्रीलिंग अभिलक्षण	पुलिंग अभिलक्षण
विनम्र	आत्मनिर्भर
भावुक	विवेकशील
ग्रहणशील	मुखर
सहजज्ञान युक्त	विश्लेषणात्मक
डरपोक	निडर
सहनशील	चपल
संवेदनशील	असंवेदनशील

निःसंदेह, यदि नारी के पास शक्ति नहीं, तो वह पुरुषों के सामने कुछ भी नहीं है। हालांकि, इसके साथ ही महिलाओं के पास यदि शक्ति हो, तो उन्हें पुरुषों से बेहतर समझा जाता है। लिंग–संबंधित पहचान मुख्य रूप से समाज के ऐतिहासिक दृष्टिकोण की वजह से है। मुख्यतः, पुरुषों तथा महिलाओं के बीच लिंग भेदभाव के गठन के लिए

टिप्पणी

यही दृष्टिकोण अनिवार्य रूप से जिम्मेदार है। यदि वैसे दृष्टिकोणों को उचित एवं वैज्ञानिक तरीके से पहचान लिया जाता है, तब वर्तमान समाज में लिंग–आधारित भेदभाव के उन्मूलन के लिए मान्य हल पर पहुंचने की संभावना बनती है। हालांकि, इसके बारे में कहना आसान है, पर इसे अमल में लाना बेहद मुश्किल है। पुरुषों तथा महिलाओं को श्रेणीबद्ध करना मुश्किल है, जो प्राचीनकाल से ही समय के अस्तित्व में है। इसीलिए, लिंग विशेषज्ञों का प्राथमिक लक्ष्य वह साधन तलाशना होता है, जिससे लिंग को नारीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जा सके और महिलाओं के सम्पूर्ण सशक्तीकरण के लिए इसे किस प्रकार से उपयोग किया जा सके?

1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

लिंग के अर्थ एवं परिभाषा को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

लिंग का अर्थ

"लिंग" शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'जीनस' से हुई। लैटिन शब्द जीनस पर आधारित लिंग, जन्म, परिवार और राष्ट्र को सूचित करता है। इसके प्रारंभिक अर्थ जाति, प्रकार, लिंग, संज्ञा के प्रकार और वर्ग इत्यादि हैं (जोकि लैटिन में जीनस के भी अर्थ हैं)। आधुनिक युग में लिंग का अर्थ लिंग, लैंगिकता, लैंगिक अंतर, पीढ़ी इत्यादि है। बहुत से समाजशास्त्रियों ने लिंग का नातेदारी, जाति, जैविक अंतरण, भाषा और राष्ट्रीयता के साथ भी बारीकी से अध्ययन किया है। भारत में, नारीवादी तथा लिंग विषयक विद्वानों ने लिंग–आधारित मुद्दों का पता लगाने में योगदान दिया है, परन्तु उनके मत विभाजित हैं। बहुत से शोधार्थियों ने यह बताया है कि सरकार पूरी तरह से अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा रही है, मुख्यतः इसी वजह से भारत में महिलाएं कमजोर हालत में हैं।

स्थितियों, मानदंडों और भूमिकाओं ने हमें अपनी जिंदगी को नियंत्रित, सुसंगत और उम्मीद के मुताबिक संगठित करने की अनुमति दी है, जोकि किसी सामाजिक संरचना की मुख्य संरचनाएं हैं। यह उन स्थापित सामाजिक मानदंडों से जुड़ा है, जो ऐसे बर्ताव का सुझाव देते हैं, जिससे कि वैसे लोगों से घुलना–मिलना आसान हो जाता है, जिन्होंने किसी अन्य सामाजिक पद को प्राप्त कर लिया है। कुछ स्थितियों में, लोगों को इन मानदंडों का ज्ञान हो सकता है। जब इंसान का मानक व्यवहार कठोर रूप से परिभाषित होता है, तब किसी निश्चित पक्ष की आजादी से प्रायः समझौता होता है। ये कठोर परिभाषाएं सरल संकल्पनाओं के बजाय उन रूढ़िबद्ध सिद्धांतों के विकास से जुड़ी हैं, जिसमें एक समान वर्ग वाले लोगों में कुछ निश्चित विशेषताएं समान होती हैं, क्योंकि जन्म से ही पुरुषों और महिलाओं को समाज में एक निश्चित स्थान दिया गया है। यद्यपि इस रूढ़िबद्धता में कुछ सकारात्मक विशेषताएं भी हो सकती हैं। परन्तु प्रायः वे ऐसे नकारात्मक विशेषताओं से भरे होते हैं, जिनका उपयोग किसी निश्चित समूह के सदस्य से भेदभाव करने के लिए किया जाता है। पुरुषों और महिलाओं की उनकी जैविक बनावट के आधार पर ग्रहण की जाने वाली विशेषताओं के अनुसार ही उनके द्वारा हैसियतों में रूढ़िबद्धता प्राप्त होती है। महिलाओं को चंचल और अविश्वसनीय कहकर रूढ़िबद्ध किया जाता है, क्योंकि उनके भीतर ऐसा उग्र हार्मोन होता है, जो उनमें अप्रत्याशित भावनात्मक रवैया भरता है।

लिंग क्या है?

टिप्पणी

भारत में लिंग की अवधारणा 1970 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों के दौरान स्थापित हुई थी। प्रारम्भ में इस सीमांकन की पंक्ति को आकर्षित करने के लिए इसे एक विश्लेषणात्मक शब्द के रूप में इस्तेमाल किया गया था, जैसे– जैविक लिंग। मतभेद के अनुसार इसका इस्तेमाल प्राणियों और अन्य संबंधित दक्षताओं के व्यवहार को सूचित करने के लिए मानव निरंतर करते रहे हैं। इसे संज्ञा के रूप में जैसेः– लक्षण और व्यवहार जैसे शब्दों के रूप में उपयोग में लाया गया है। इसीलिए लिंग जैविक विषयों को दर्शाता है और मनुष्य जाति में एक महिला से एक पुरुष का एक भेद बतलाता है। उसी तरह लिंग पुरुषों और महिलाओं से जुड़े सामाजिक, पारम्परिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक लक्षणों के माध्यम से सामाजिक संदर्भों को भी दर्शाता है। लिंग एक महिला को दूसरे पुरुष से अलग करता है, जोकि एक जैविक सन्दर्भ है। लिंग को मनुष्य रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिससे कि पुरुष या स्त्री होने का सामजिक निर्माण ज्ञात होता है। एक व्यक्ति के जन्म होने पर तदानुसार लिंग को उसके पुरुष या स्त्री होने के लिए जिम्मेदार माना जाता है, लेकिन जन्म के बाद समाज के माध्यम से उसके लिंग की स्थिति को अनुकूलित किया जाता हैं। लिंग शब्द का प्रयोग जैविक मतभेद के वास्तविक, शारीरिक और मानसिक प्रभाव से किया गया था। बहुत से तर्क यह बताते हैं कि सत्ता के एक पितृसत्तात्मक परंपरा को बनाए रखने और महिलाओं के बीच एक चेतना पैदा करने के लिए, उन्हें घरेलू बनाना स्वाभाविक रूप से अनुकूल था। दरअसल किसी भी लिंग के लिए जिम्मेदार मानी गई स्थिति और हासिल की जाने वाली स्थिति में तुलना होने की संभावना बहुत कम है। आज की दुनिया में, इन मतभेदों जैसे– कन्या भ्रूणहत्या जैसे महत्वपूर्ण पहलू को प्रभावी गर्भ निरोधक से बहुत हद तक कम कर दिया गया है। आमतौर पर महिलाओं को लम्बे समय से उनके जीवन के एक छोटे अनुपात में उन्हें प्रजनन के लिए जीवित रखा जा रहा है। इन भूमिकाओं को बहुत पहले खारिज कर देना चाहिए था। इस तरह का भेद पहली बार नहीं किया था। इसीलिए मानव विज्ञान, मनोविश्लेषण और चिकित्सा अनुसंधान में नारीवाद एक बहुत बड़ा हिस्सा रहा है।

लिंग महज एक शब्द के रूप में जाना जाता है, परन्तु यह राजनीतिक बदलाव तक ला सकता है। लिंग के आधार पर लेखकों के सुझाव से नारीवाद और लिंग के बीच अंतर को एक ध्रुवीकरण माना गया है और लिंग भेद से जुड़े अर्थ का अवलोकन हम सामाजिक रूप से स्वयं कर रहे हैं। चूंकि अस्थिर मानव समाज निर्माण के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों के भीतर इन जैविक कारकों को हम समझते हैं, इसीलिए विभिन्न परिणाम देते हैं। समाजशास्त्रियों ने सैद्धांतिक दृष्टिकोण के अनुसार लिंग की भूमिकाओं और मार्गदर्शन की प्रक्रियाओं को समझाया है, जिससे कि हमें सामाजिक वास्तविकता की व्याख्या के लिए सामान्य आंकड़े मिले हैं। समाजशास्त्रियों की भूमिका लिंगों की उन जैविक अवधारणाओं से जुड़ी है, जिनके बारे में अकसर गलतफहमी बनी हुई है कि सामाजिक क्षेत्रों के परिणाम लैंगिक भूमिका पहचान के तहत सम्मिलित हो रहे हैं। हालांकि इस अवधि को उपयोग में बदलने के लिए समाज में मानवीकरण होता रहा है। समाजशास्त्रियों के लेखन में लिंग शब्द की पारिभाषिक भूमिका को सकारात्मक के बजाय नकारात्मक भूमिका दे दी गई है। तद्नुसार, लिंग भूमिकाएं इस उम्मीद के नजरिये के साथ व्यवहार कर रही हैं कि समाज को लिंग के

प्रत्येक प्रकार से जोड़ा जाए। लिंग की इस परिभाषा को सामाजिक–सांस्कृतिक स्थानों पर सभी ओर से प्रासंगिक किया गया है।

लैंगिकता/लैंगिकरण क्या है?

टिप्पणी

लैंगिकता विशेष रूप से पुरुषत्व या नारीत्व के पहलू और परिस्थिति को बताने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिए, गुलाबी और नीले रंग पर लैंगिकता की धारणा यह है कि पहला रंग स्त्री के लिए और दूसरा पुरुष के रूप में जाना जाता है। लैंगिकता, महिलाओं और पुरुषों के विभिन्न कार्य के भुगतान से संबंधित है। (आमतौर पर यह भुगतान के काम को विभिन्न प्रकारों को समय पर पूरा करने के लिए दिया जाता है। महिलाएं सुरक्षित एवं कम अवधि के कार्य करती हैं जबकि पुरुष लंबी अवधि के जोखिम भरे भी काम करते हैं, उदाहरण के लिए अस्पताल में महिलाएं तथा उद्योग में पुरुष)। इसी प्रकार काम से संबंधित भुगतान के मामले में पुरुषों और महिलाओं की औसत आय अलग–अलग है। लैंगिकता शब्द को उल्लेख करने का यह अलग तरीका है। लैंगिकता को एक क्रिया के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसीलिए लिंग कार्यवाही को अभिव्यक्ति देता है। लिंग का प्रयोग लैंगिकरण या लैंगिकता के रूप में महिलाओं की सहमति का प्रतिबिम्ब बना हुआ है। लैंगिकता पुनः पेश की गई सामाजिक प्रक्रियाओं से महिलाओं और पुरुषों के बीच भेद उत्पन्न करने का एक तरीका है। लैंगिकरण और लैंगिकता का प्रयोग उन परिणामों को सूचित करने के लिए किया जाता है, जोकि सामाजिक रूप से निर्माण और दैहिक गतिविधियों को महिलाओं से अधिक पुरुषों को वरीयता देता है।

लिंग–क्रम

लिंग–क्रम एक वैचारिक और सामाजिक प्रथाओं के नमूनों की प्रणाली है, जिसमें मानव समाज में पुरुषों और महिलाओं के बीच शक्ति की स्थापना का पता चलता है। समाज में लिंग–क्रम के माध्यम से पुरुषत्व और नारीत्व की संहिता का निर्माण तथा अनुसरण होता है और पुरुषों तथा महिलाओं के बीच रिश्ते स्वयं संघटित होते हैं। लिंग–क्रम पितृसत्तात्मक होने के अलावा समतावादी तथा मातृसत्तात्मक भी हो सकता है। यह दृष्टिकोण लिंग संबंधों के निर्माण एवं मनोरंजन के लिए लिंग प्रणाली में सक्रिय भागीदारी की पहचान कराता है। तद्नुसार, यह समाज में सामाजिक बदलाव की संभावनाओं की अनुमति देता है।

असमलैंगिकता

असमलैंगिकता शब्द "लिंगवाद" से लिया गया है, जो 1860 के दशक के दौरान नारीवादी सृजन से उद्धृत हुआ है। नकारात्मक नमूने के कार्य लैंगिकता में बदल सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक धारणा है कि महिला का अस्तित्व पुरुषों के सामने कुछ भी नहीं है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश शब्दकोश में विषमलैंगिकता की परिभाषा के अनुसार, यह उनके द्वारा समलैंगिक लोगों को दिखाया गया पूर्वाग्रह विरोध है और उनसे भेदभाव करना है। समलैंगिकता को "असमलैंगिकता" के अलावा नारीवाद के भीतर बढ़ती प्रवृत्ति में लैंगिक असमानताओं को देखने के लिए समाज में एक संकेत के रूप में नस्लवाद और होमोफोबिया की दमनकारी संरचनाओं के द्वारा सूचित किया गया है।

पुरुषत्व

पुरुषत्व किसी व्यक्ति के साथ लोकप्रिय और प्रचलित सामाजिक प्रथाओं और सांस्कृतिक अभ्यावेदन से जुड़ा एक समूह है। पुरुष ही इन गतिविधियों का प्रदर्शन करते हैं। पुरुषत्व का बहुवचन "मर्दानगी" है। इस बात की भी मान्यता है कि पुरुषों के साथ जुड़े सांस्कृतिक अभ्यावेदन और उनके तरीके समाज के अनुसार बदलते रहते हैं। किसी भी समाज के भीतर यह उनके पुरुषों के ऊपर निर्भर होता है कि वह पुरुषत्व समाज है कि नहीं और समाज में पुरुषत्व की परिभाषा उनके द्वारा लगाए जाने वाले आकलन के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य से अलग है।

टिप्पणी

पितृतन्त्र

पुरुषों को पितृसत्ता का अधिकार तथा शक्तियां दी जाती हैं, जोकि एक सामाजिक व्यवस्था है और परिवार, घर तथा जनजाति इस सामाजिक इकाई के सदस्य हैं। एक बड़ी सामाजिक पितृसत्तात्मक प्रणाली में अन्य पुरुषों सहित महिलाओं और इकाई के बच्चों को भी वैध शक्ति दी जाती है। लैंगिकता, पितृसत्ता की प्रणालियों में से अवतरित हुआ है, जोकि पुरुष प्रधान सामाजिक संरचनाओं को काम करने के लिए समाज की इकाइयों में महिलाओं को नेतृत्व करने की स्थिति प्रदान कराती है। 20वीं शताब्दी के दौरान, नारीवादी लेखकों ने वर्चस्व के ऊपर सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख करने के लिए इस अवधारणा का प्रयोग किया था। पितृसत्ता, लैंगिक अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अग्रणीय, मौलिक धारणा है, जिससें महिलाओं की स्थिति की पहचान होती है और उनके सिद्धांतों की पहचान के लिए उन्हें परतंत्रता प्रदान कराती है। "कट्टरपंथी नारीवादी", "नारीवाद मार्क्सवादी" और "दोहरी प्रणाली सिद्धांत" ये तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं, जिसमें पितृसत्ता एक केन्द्रीय अवधारणा है। मौलिक सामाजिक विभाजन में कट्टरपंथी नारीवाद का विश्लेषण, पितृसत्ता में प्राथमिक रूप से प्रयोग में लाया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में यह सामान्य अवस्था अवतरित है कि हमारे समाज में पितृसत्ता पारम्परिक तथा ऐतिहासिक रूप से अपरिहार्य तथ्य है, इसीलिए लैंगिक समानता के संघर्ष नष्ट हो रहे हैं। उदार नारीवाद को 'समतावादी या मुख्यधारा नारीवाद' भी कहा जाता है, जिसे लैंगिक अध्ययन में उदारवादी शाखा माना गया है। यह सरल धारणा पर आधारित है कि सभी लोगों को समान बनाया गया है और लिंग के आधार पर अवसर की समानता से इनकार नहीं किया जाना चाहिए।

महिलाओं को यौन–क्रियाओं की वजह से परेशान करना अनैतिक और गैरकानूनी है। यौन–उत्पीड़न में मौखिक या शारीरिक उत्पीड़न या अनिष्ट यौन अग्रिम अनुरोधों को शामिल किया जा सकता हैं। उत्पीड़न को हालांकि, एक यौन प्रकृति कहना आवश्यक नहीं है, बल्कि हम महिलाओं की यौन–क्रियाओं के विषय में और आक्रामक टिप्पणियों को शामिल कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, सामान्य रूप से आक्रामकता द्वारा महिलाओं को परेशान करना अवैध है। शैक्षिक संस्थान और ऋण संस्थान कुछ ऐसे प्रारंभिक क्षेत्र हैं, जिसमें महिलाओं के खिलाफ भेदभाव का आरोप लगाया गया है। अधिकारों की कमी के कारण बैंक ऋण तथा छात्रवृति ने किसी निश्चित लिंग को समर्थन दिया है, जिन्हें कि मूलरूप से गैर–लैंगिक होना चाहिए। भारत में मौजूदा लिंग भेद को समाप्त करने के लिए मध्यम और उच्च वर्ग के भीतर महिलाओं को शिक्षित बनाने की आवश्यकता है। यह भारत में गरीबी को कम करने से किया जा सकता है,

जो अमीर और गरीब के बीच एक बड़ा अंतर पैदा करता है। महिलाओं के लिए रोजगार में बेहतर भुगतान के अवसरों को बढ़ाने के लिए साक्षरता और गणित जैसे क्षेत्र में बुनियादी कौशल की आवश्यकता है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि भारत एक गरीब देश है और यहां इस मुद्दे को उठाने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। वहीं दूसरी ओर, अन्य विद्वानों का दावा है कि भारतीय समाज की प्रकृति परंपरागत रूप से स्पष्टतः पितृसत्तात्मक है। महिलाओं को घरेलू बनाकर समाज में पितृसत्तात्मक संबंधों का अवतरण होता है। इस अभ्यास में, हालांकि भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मजबूत किया गया है।

टिप्पणी

सेक्स और लिंग की परिभाषा

लिंग को एक जैविक वर्ग के रूप में परिभाषित किया गया है, जोकि आनुवंशिकी और हार्मोन से ज्ञात होता है और हमारी शारीरिक संरचना का निर्धारण करता है। "महिला" और "पुरुष" लिंग के विशेषण हैं।

लिंग को एक ऐसे अर्थ में परिभाषित किया गया है, जो जैविक अंतरों का पालन करता है। यह व्यवहारों का ऐसा समूह है, जो सीखा और किया जाता है और यह किसी व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान संस्कृति को संस्कृति में बदल सकता है। लिंग के विशेषण "पुरुषत्व" तथा "नारीत्व" हैं।

लिंग की परिभाषा एवं अर्थ की तरफ वापस आने पर, हम यह पाते हैं कि लिंग का अंतर पूरी दुनिया में कई नैतिक रूप से मूल्यवान अवधारणाओं के सबसे प्राचीन, सार्वभौमिक और सबसे शक्तिशाली मूल है। यह उस इतिहास से स्पष्ट होता है, जिसमें मनुष्य ने स्वयं ही लिंग के आधार पर सामाजिक और प्राकृतिक दुनिया को संघटित किया है। विशेष रूप से लिंग उस विशिष्टता को संदर्भित करता है, जिसमें नस्लीय, वर्ग आधारित और उन अवधारणाओं में उल्लेखित मापदंड हैं। लिंग, वर्ग, जाति और क्षेत्र के आधार पर मतभेदों के साथ होता रहा है। मानव समाज की पितृसत्तात्मक प्रकृति के लिए लैंगिक अध्ययन के अस्तित्व में होने की आवश्यकता आ गई है। एंथनी गिडेंस के शब्दों में–

अधिकार की अन्य प्रणालियों की तरह पितृसत्ता में हिंसा का प्रयोग मुख्य रूप से निरंतर नहीं किया गया है। यह इसलिए है, क्योंकि महिलाओं से अधिक पुरुषों को अधिकार प्राप्त हैं और विभेदित लिंग भूमिकाओं के आधार पर उन्हें मान्यता दी गई है तथा इनके साथ जुड़े निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच लिंग भेद है।

कुछ विद्वानों का दावा है कि लिंग और कामुकता के बीच जैविक सम्बन्ध है। महिलाओं को सामान्य रूप से पितृसत्तात्मक समाज में नैतिक आधारों पर विभाजित किया गया है। लिंग समाजशास्त्रियों का मानना है कि पितृसत्ता ने इस प्रकार के ऐतिहासिक विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

दुनिया भर में सभी मानव सामाजिक सम्पर्क को स्थापित करने के लिए समाज में अपेक्षाकृत रूप से संरचित कर रहे हैं। सामाजिक सम्पर्क स्थापित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संरचना 'समाज' में मनुष्यों की हैसियत होती है। यह मनुष्य द्वारा प्राप्त की गई एक ऐसी वर्ग या स्थिति है, जोकि समाज में उसके प्रति किए गए व्यवहार का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। मनुष्य उच्च समाज में जन्म लेने के या कुछ अन्य बिंदु

जिन्हें वह अपने जीवन में प्राप्त करके आत्म उपलब्धियों, स्वयं के प्रयासों या दूसरों के माध्यम से हैसियत प्राप्त करता है। मनुष्य एक–एक करके बहुत कुछ प्राप्त करता है, जैसे कि माता, पिता, बेटी, वकील, मरीज, कर्मचारी और यात्री इत्यादि। बाद के जीवन में अर्जित की गई स्थितियों की तुलना में किसी कारण से प्राप्त की गई स्थिति तुरंत एक मनुष्य के जीवन के लगभग हर पहलू को प्रभावित करती है। किसी कारण से प्राप्त की गई स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण स्थितियां लिंग, जाति और सामाजिक वर्ग हैं। लैंगिक अध्ययन महिलाओं का अध्ययन है, जोकि उनके अनुभवों को क्रियाओं के केंद्र में स्थापित करता है। यह एक पूरक तथा स्थापित विषयों में सुधार भी है, तथा अपने दम पर एक नया शैक्षिक अनुशासन भी है। यह कला और विज्ञान पर नारीवाद का प्रभाव मानता है।

टिप्पणी

यौनिकता और लैंगिकता : एक अवलोकन

जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी जीवित प्रजाति में अंडाणु उत्सर्जन करने वाली मादा और शुक्राणु उत्पन्न करने वाले नर के मध्य अंतर को सेक्स कहते हैं जबकि जेंडर महिला और पुरुष के मध्य सामाजिक विभेद को परिलक्षित करता है।

जेंडर शब्द का अर्थ है कि पुरुष तथा महिला दोनों की सामाजिक–सांस्कृतिक परिभाषा यानी समाज पुरुष और महिला को किस तरह से देखता है, उन्हें कैसी भूमिकाएं, संसाधन एवं अधिकार देता है। आजकल जेंडर शब्द का उपयोग पुरुषों और महिलाओं की वास्तविक सामाजिक सच्चाइयों को समझने के लिए किया जा रहा है।

फैमिनिस्ट विद्वान के अनुसार– "सामाजिक जेंडर (लिंग) को स्त्री–पुरुष विभेद के सामाजिक संगठन अथवा स्त्री–पुरुष के मध्य असमान संबंधों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' सुप्रसिद्ध विचारक पेपनेक के अनुसार– "सामाजिक जेंडर (लिंग) स्त्री तथा पुरुष से संबंधित है, जो स्त्री–पुरुष की भूमिकाओं को सांस्कृतिक आधार पर परिभाषित करने का प्रयास करता है एवं स्त्री पुरुष के विशेषाधिकारों से संबंधित है। सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक आधार पर लिंग सामान्यतः शक्ति संबंधों का कार्य का सामाजिक सोपान है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि जेंडर एक समाजशास्त्रीय रचना है तो सेक्स एवं जैव वैज्ञानिक रचना। सेक्स शब्द पुरुष और महिला को परिभाषित करता है जो एक जैविक और शारीरिक घटना है यह मनुष्य की प्राकृतिक या जैविक विशेषता है। ऐन ओकली को सेक्स शब्द को महत्व देने का श्रेय जाता है। इनके अनुसार ''सेक्स का तात्पर्य स्त्री एवं पुरुष के जैविकीय विभाजन से है जबकि जेंडर का अर्थ स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व के रूप में सामाजिक रूप से किए गए विभाजन से है।''

विगत कुछ वर्षों में समाजशास्त्रियों ने जेंडर के सामाजिक पक्ष को उसके जैविकीय स्तर से अलग कर दिया है और आजकल इसे जेंडर के तौर पर समझा जा रहा है।

इस संबंध में जो नए शोध हुए हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि जेंडर का महिलाओं तथा पुरुषों की भूमिका संबंधी विचारों में भिन्न संस्कृतियों के कारण अंतर है। आधुनिक युग में जेंडर संबंधी विभिन्न अध्ययनों/शोधों द्वारा समाज में व्याप्त असमानता को कम अथवा समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे एक सन्तुलित समाज

का निर्माण किया जा सके तथा देश के सभी नागरिक (पुरुष–महिला) दोनों स्वतंत्र रूप से भारत के विकास में अपना योगदान दे सकें।

सेक्स एवं जेंडर के बीच के अंतर को हम निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट कर सकते हैं–

टिप्पणी

सेक्स	जेंडर
1. सेक्स शारीरिक या जैविक अवधारणा है।	1. जेंडर एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक अवधारणा है।
2. सेक्स प्रकृति की देन है।	2. जेंडर सांस्कृतिक व सामाजिक है। इसे मनुष्य ने बनाया है।
3. यह एक ऐसा अंतर है जो पुरुष व महिला के जननांगों में और उससे जुड़े प्रजनन कार्यों में साफ दिखाई देता है।	3. इसका संबंध पुरुषोचित, स्त्रियोचित गुणों, व्यवहारों के तरीकों, भूमिकाओं आदि से है।
4. सेक्स को आसानी से बदला नहीं जा सकता है।	4. जेंडर को बदला जा सकता है।
5. सेक्स स्थाई है। हर जगह व हर समय शारीरिक रूप से महिला व पुरुष के वही अंग होते हैं।	5. जेंडर परिवर्तनशील है। यह समय के साथ, संस्कृति के साथ यहां तक कि एक परिवार से दूसरे परिवार में बदल सकता है।

1.2.2 समाजशास्त्रीय निर्माण के रूप में लैंगिकता

समाजशास्त्र के अनुशासन की स्थापना करने वाले कुछ विचारकों ने महिलाओं से संबंधित मुद्दों को हल करने के लिए लोगों को प्रेरित किया है। यह समय बौद्धिक, राजनीतिक और सामाजिक उथल–पुथल का माना गया था, जिसकी लहर नारीवादियों के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विरोध के आंदोलनों के साथ दिखाई देती थी। इसके बावजूद, इन विचारकों में से ज्यादातर अपनी व्यापक बहस से इस बात में एकीकृत थे कि परिवार, भावना और कामुकता के विषय में महिलाओं के मुद्दों से संबंधित तर्क सीमित हैं। उनके सिद्धांतों के लिए केंद्रीय ढांचे और प्रक्रियाओं को आकार देने के लिए सांस्कृतिक रूप से परिभाषित मर्दानगी का प्रभाव काफी हद तक गैर मान्यता प्राप्त था, जबकि वे तर्क अधिकतर पुरुष प्रधान संरचनाओं के महत्व पर केंद्रित थे। उनके सिद्धांत भी पुरुष प्रधान संरचनाओं के तटस्थ और निहित थे। इस प्रकार, क्या समाजशास्त्र के प्रारंभिक विचारकों के बारे में कहा जा सकता है कि लैंगिक मुद्दों पर विचार की प्रक्रिया परिधीय है कि नहीं? सबसे परे वे कहते हैं कि परोक्ष रूप से उचित लिंग असमानता सिद्धांत तैयार किया गया है।

समाजशास्त्र इस बात में रुचि रखता है कि मानवीय समाज में मानव का व्यवहार सामूहिक जीवन से कैसे प्रेरित होता है। यद्यपि, सभी सामूहिक जीवन विभिन्न प्रकारों से नियमित होते हैं, इनमें लिंग नियमितता का एक महत्वपूर्ण घटक है। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से, लिंग के प्रति जागरूकता ने वर्तमान सामाजिक सिद्धांत को संशोधित

किया है और एक नवीन नारीवाद प्रतिमान का निर्माण किया है। अनुभवजन्य दृष्टिकोण से, लिंग के प्रति जागरूकता ने नवीन अनुसंधान प्रेरणाओं को जन्म दिया है और सामाजिक जांच के लिए नए विषयों को खोला है।

लिंग के समाजशास्त्र के लिए मुख्य अवधारणाएं: मानवीय समाज में लगभग हर घर में कुछ गतिविधियां ऐसी हैं, जो निम्न रूप से हैं–

टिप्पणी

- खाना पकाना
- घर की सफाई
- झाड़ू से सफाई
- धूल की सफाई
- किराने की खरीदारी
- अन्य घरेलू वस्तुओं की खरीद
- कपड़ा धोना, सुखाना और इस्त्री करना
- घर की मरम्मत का काम
- कचरे का निष्कासन
- परिवार के सदस्यों की देखभाल
- परिवार के सदस्यों की आवश्यकताएं और बच्चों की निरंतर निगरानी के प्रति विशेष देखभाल करना

भारतीय गृहस्थी में पूर्व लिखित क्रियाओं को पूरा करने के लिए कौन जिम्मेदार है? ज्यादातर और निश्चित रूप से भारतीय समाज की गृहस्थियों में महिलाएं हीं इन उपरोक्त कार्य के लिए जिम्मेदार हैं। इन कार्यों को घरेलू काम या घर का कामकाज कहा जाता है। इस बात पर आश्चर्य नहीं होगा कि इन उपरोक्त कार्यों को किसी प्रकार से आर्थिक या सामाजिक परिप्रेक्ष्य के कार्यों की तरह नहीं देखा जाता है। यह मान लिया जाता है कि वे कार्यों का एक ऐसा समूह है, जिसके लिए किसी गृहस्थी की महिलाएं हीं प्राकृतिक रूप से जिम्मेदार हैं। यह देश सकल घरेलू उत्पाद में किसी प्रकार से आंकलित नहीं होता है। भारत में जी.डी.पी. को एक निश्चित अवधि उत्पादित सामान तथा सेवाओं के योग से निकला जाता है।

इस विश्वास के साथ कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की अवस्था तुच्छ है, नकारात्मक छवि के कार्यभार लिंगवाद में बदल सकते हैं। पुरुष लैंगिकता के नकारात्मक परिणामों से प्रतिरक्षित नहीं है, परन्तु महिलाएं इसे ज्यादा अनुभव इसलिए करती हैं, क्योंकि वे जिस अवस्था समूह को पाती थीं, पुरुषों की तुलना में वह अधिक कलंकित होता था। उदाहरण के लिए, पुरुषों की तुलना में महिलाएं ज्यादातर उन अवस्थाओं को प्राप्त करती हैं, जिनमें कम शक्तियां, कम इज्जत और कम भुगतान या कोई भुगतान नहीं होता है। जैविक पहलुओं के कारण हीनता से संबंधित मान्यताओं को मानव समाज में मजबूती प्रदान की जा रही है और महिलाओं के प्रति भेदभाव को साबित करने के लिए उसका उपयोग हो रहा है। लैंगिकता, पितृसत्तात्मक प्रणालियों और पुरुषप्रधान सामाजिक संरचनाओं के द्वारा अवतरित है, जो महिलाओं के उत्पीड़न के लिए दोषी है। परिभाषा के द्वारा, पितृसत्ता पुरुष केन्द्रीयता दर्शाता है, जो पुरुषकेंद्रित

और मानदंडों को सामाजिक संस्थानों में परंपरागत रूप से चला आ रहा है, जोकि एक ऐसा मानदंड बन गया है, जिसका पालन सभी मनुष्य करते हैं। तद्नुसार, लिंगवाद दृढ़ तब होता है, जब पितृसत्ता और पुरुष–केन्द्रीयता को उन अवधारणाओं के अवतरित करने के लिए मिलाया जाता है, जिसमें लिंग भूमिकाओं को जैविक रूप से पता लगाया जाता है और इसीलिए किसी दिए गए ढांचे में यह बदले नहीं जा सकते हैं।

टिप्पणी

विकासशील दुनिया में, महिलाओं की हीनता तथा जैविक अनुपयुक्तता के लिए शिक्षा, अवसरों तथा अन्य सुविधाओं की कमी जिम्मेदार है। इन प्रतिबंधों ने पुरुषों को मानव समाज में लिंग और उसके प्रतिपादन पर लिखित, प्रचारित और व्याख्यान का संरक्षक बना दिया है। इतिहास भी पुरुषकेंद्रित नजरिये से दर्ज हुआ है, जिनमें नारी जाति को नजर–अंदाज किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य ने इस विश्वास को अवतरित किया है कि पितृसत्ता इतिहास का अनिवार्य और अपरिहार्य तथ्य है, इसीलिए लिंग समानता के लिए चलित संघर्ष विफलता की ओर बढ़ रहे हैं। महिला शिक्षा को हम शोध तथा छात्रवृति में सम्मिलित होने की काबिलियत से जोड़ सकते हैं, जोकि वर्तमान पुरुषकेंद्रित धारणाओं के समक्ष एक विकल्प है। बहुत विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि पितृसत्तात्मक प्रणाली भले ही सार्वभौमिक हो सकती है, परन्तु यह अपरिहार्य नहीं है और लिंग समतावाद कुछ संस्कृतियों में जीवन का एक ऐतिहासिक तथ्य था तथा अन्य के जीवन में समकालीन तथ्य है।

जैविक दृष्टिकोण

19वीं सदी के आखिरी और 20वीं सदी के आरंभ में समाजशास्त्र के कई विद्वानों ने माना कि बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक क्षमताओं में पुरुष और महिलाएं स्वाभाविक रूप से अलग और असमान थे। ब्रिटिश समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेंसर ने एक उदार नारीवादी के रूप में अपना कार्य शुरू किया और यहां तक अपने प्रारंभिक कार्यों में महिलाओं के अधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने कहा कि पुरुषों और महिलाओं के बीच केवल एक "तुच्छ मानसिक भिन्नता" नहीं थी। हालांकि, बाद में उन्होंने सामाजिक डार्विनवाद को गले लगा लिया और यह मांग की कि जीव–विज्ञान पुरुषों और महिलाओं के बीच महत्वपूर्ण अंतर के बारे में बतलाए। उन्होंने कहा कि न्याय और तर्कक्षमता महिलाओं में कम होती है इसलिए महिलाओं को न्यायाधीशों की तरह तर्क करने की क्षमता अपने पति और बच्चों की देखभाल करने में लगाना हमारे जीवन के लिए जरूरी है। उन्होंने यह भी कहा कि महिलाओं को स्वाभाविक रूप से एक शक्तिशाली आदमी की सुरक्षा के अधीन होना पसंद है। कॉम्टे के अनुसार, महिलाएं अपनी भावनात्मक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता की वजह से परिवार और घरेलू जीवन के लिए उपयुक्त हैं। वे "सदा शैशव" में रहती हैं और पुरुषों को बौद्धिक रूप से नीचा कर रही हैं, इसीलिए महिलाएं किसी भी अन्य भूमिका के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

इसी तरह, दुर्खीम, महिलाओं की सामाजिक अधीनता को समझाने के लिए जैविक कारकों की बात भी करते थे। दुर्खीम मानते थे कि शादी जैसी संस्था में आवश्यक सुधार की जरूरत है और विवाहित महिलाओं को नुकसान, अविवाहित पुरुषों की तुलना में कम है। क्योंकि उनकी सामाजिक जरूरतें कम हैं। लिंग के बीच श्रम के विभाजन पर सिद्धांत लिखते हुए दुर्खीम ने भी लिंग पर चर्चा की थी। दुर्खीम लिंगों

और इस तरह "वैवाहिक एकजुटता" के बीच श्रम विभाजन की अधिक विशेषज्ञता में विश्वास करते थे।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवादी विश्लेषित तर्क ने सामाजिक जीवन की लैंगिक व्यवस्थाओं से उत्पन्न असमानता पर चर्चा की है। यह तर्क परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति में पहले फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा प्रस्तावित किया गया था। एंगेल्स के तीन चरणों, जिनमें से प्रत्येक का वर्णन हुआ था, शादी के तीसरे चरण के दौरान विकसित लिंगों के बीच असमानता को सुनिश्चित करने के लिए महिलाओं पर जोर डाल दिया गया था, क्योंकि संपत्ति का उत्तराधिकार समुचित पितृत्व के आधार पर था। पूंजीवाद के उन्मूलन के लिए मार्क्सवादियों ने उत्तराधिकार को चिंता का विषय बताया है, तथा इस पर जोर दिया है कि असमानता समाप्त होने पर पूंजीवाद खत्म हो सकता है। मार्शल जनजातियों से संक्रमण का वर्णन कृषि समाज को पितृसत्तात्मक करने के लिए था, जबकि अपने सामान्य आर्थिक इतिहास में जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर, एंगेल्स के सिद्धांत भी सहयोजित थे। वेबर के अनुसार, इस संक्रमण के माध्यम से, महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई है और एक परिवार के भीतर श्रम के विभाजन में वृद्धि हुई है। वेबर के लिए, एक मंच से दूसरे में संक्रमण अर्थशास्त्र का केवल एक सवाल नहीं था, बल्कि यह धर्म और "जादू" का सवाल भी था। वेबर के लिए, समाज में परिवर्तन एक पुरुष संबंधी घटना थी। हालांकि, महिलाओं में ऐतिहासिक परतंत्रता और लैंगिक असमानता मौजूद है, वे इस बारे में किसी प्रकार की जानकारी देने में नाकाम रहे।

टिप्पणी

एक केंद्र के रूप में लिंग

अमेरिकी समाजशास्त्री टेल्कोट पार्सन्स ने भी परिवार, समाजीकरण और बातचीत की प्रक्रिया पर लिखा था। पादरी महिलाओं को पुरुषों की तुलना में काफी कम की स्थिति में समान वर्ग की स्थिति में रखते थे। महिलाओं को रोजगार के अवसरों से वंचित किया गया है और यह कहा कि समाज में उन महिलाओं को संकुचित कर दिया गया, जो एक मां, पत्नी और कर्मचारी की भूमिका का गठबंधन करना चाहती थी। पार्सन्स ने, महिलाओं को "गृह प्रबंधन" के लिए स्वयं को प्रतिबंधित करने के लिए मजबूर किया था। हालांकि, पादरी ने यह चर्चा की है कि घर के कामकाज के लिए विकल्प भी समस्या ग्रस्त थे। पादरी के विचार थे कि महिलाएं श्रम बल में पुरुषों के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकती हैं, लेकिन माना जाता है कि ऐसी स्थिति गहराई से परिवार के ढांचे में परिवर्तित होती है।

कुछ विद्वानों ने पादरी के विचार का विरोध किया था, परन्तु इसका मतलब यह नहीं था कि परिवार के ढांचे में व्यापक बदलाव के लिए उन्होंने कुछ नहीं कहा। वह केवल भारी संख्या एवं बाहरी श्रम बल में शामिल होने और विवाहित महिलाओं के परिणाम की ओर इशारा कर रहे थे। इसके अलावा, पादरी महिलाओं के द्वारा समाज में झेले जा रहे विषमताओं से बोधगम्य थे, चाहे उनके किसी भी सिद्धांत की व्याख्या हो। 1950 और 1960 के दशक से, कई समाजशास्त्रियों ने व्यापक संख्या में श्रम में शामिल होने से महिलाओं को परिवार प्रणाली में स्वास्थ्य और बच्चों की उचित समाजीकरण संकट की चेतावनी दी थी।

1.2.3 लैंगिक संबंध : पितृसत्ता व मातृसत्ता

टिप्पणी

समाजों की विभिन्न विन्यासों में और सांस्कृतिक विन्यास में महिलाओं की स्थिति को समझना आवश्यक और महत्वपूर्ण है। हमारे लिए यह समझना आवश्यक है कि समाज के विभिन्न समूहों और तबकों में महिलाओं को कैसे चित्रित किया जा रहा है। ये समूह, तबके और निर्णायक कारक मानव समाज में महिलाओं की स्थितियों और उनकी भूमिका को परिभाषित करते हैं। ये धारणाएं पुरुष की शताब्दियों से चली आ रही शासन की प्रवृत्ति से बनी हैं। पुरुष द्वारा युगों से निर्धारित नियम, रीति–रिवाज और विनियम न केवल उसकी भूमिका को बल्कि भारतीय समाज में उसके संबंध के कुछ खास स्तरों में भी परिभाषित हैं। किंतु, लगभग 800 वर्षों की अवधि में भारत पर निरंतर हुए विदेशी आक्रमण और शासन के कारण इस भूमिका और संबंध में परिवर्तन आया है।

यह एक कड़वा सच है कि महिलाएं हमेशा पुरुष के आत्म–सम्मान और अहं के रिसीवर के अंत में रही हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान और तदनंतर समाज के पूंजीवादी दृष्टिकोण के विकास के दौर में, महिलाओं की भूमिका और अस्मिता पर विचार सामाजिक और धार्मिक कार्यकर्ताओं व सुधारवादियों की चिंता का एक प्रमुख विषय बन गया। राष्ट्रीय नेताओं, राजनीतिज्ञों, नीति निर्माताओं, योजनाकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और शैक्षिक विद्वानों के साथ, इन सभी सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं का उद्देश्य समाज में नारी की भूमिका की स्थापित परिभाषा को बदलना था।

विचार का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय था बुनियादी व मूलभूत परिवर्तन जो मुख्यतः आर्थिक संबंध में परिवर्तन के चलते आते हैं। किंतु, एक महत्वपूर्ण तथ्य, जिसकी भारतीय संदर्भ में अनदेखी नहीं की जा सकती, यह है कि भारतीय समाज धार्मिक भावनाओं, मान्यताओं और पारंपरिक सोच पर दृढ़तापूर्वक आधारित है। यद्यपि ब्रिटिश शासन ने समाज की इस धारणा को बदलने का प्रयास किया और जीवन के यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोणों पर ध्यान दिया जो किसी समाज के विकास के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

महिलाओं का उनके पति और बच्चों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। बीते समय में, महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता रहा है। उन्हें न केवल पुरुषों से कमतर माना जाता है बल्कि उन्हें परिवार और परिवार के बाहर भी शारीरिक व मानसिक प्रताड़नाएं झेलनी पड़ती हैं।

वंश संरचना

परिवार में एक महिला की स्थिति पर परिवार की संरचना का पर्याप्त प्रभाव रहता है। किसी परिवार में कितनी पीढ़ियां शामिल हैं? परिवार के सदस्यों के लिए कौन से कारक संधारणीय हैं? विभिन्न वंश प्रणालियां किस प्रकार महिलाओं की अवस्थिति एवं भूमिका को प्रभावित करती हैं? भारतीय पितृसत्ता व मातृसत्ता में वंश के दो मुख्य रूप हैं।

- **पितृसत्ता**

एक पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली में, परिवार के सदस्य अपने पिता के वंश से पहचाने जाते हैं, जबकि मातृवंशीय परिवार में, पुरुष को आगंतुक और महिला को स्थायी सदस्य माना जाता है। पितृवंशीय परिवार में, बेटा स्थायी सदस्य होता है जबकि बेटी अस्थायी

क्योंकि उसे अपने पति के घर में रहने के लिए अपने पिता के घर को छोड़ना पड़ता है। वह अपने पिता के घर कभी–कभी आ–जा सकती है।

संपत्ति के स्वाभाविक उत्तराधिकारी के रूप में पुरुष का प्रतिग्रहण और महिला बहिष्करण पितृवंशीय परिवार का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय है। लड़के को स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना जाता है। उसे परिवार के पूर्वजों का अंतिम संस्कार करना पड़ता है; इसलिए उसे एक उत्तरदायी व्यक्ति माना जाता है, जबकि परंपरागत समाज में एक बेटी को केवल गुजारे का अधिकार होता है। केवल बेटे को जन्मजात संपत्ति का अधिकार होता है।

टिप्पणी

शब्द 'पितृसत्ता' का शाब्दिक अर्थ पिता या 'कुलपति' का शासन होता है। इसे पुरुष प्रभावी परिवार के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है – कुलपति का विशाल परिवार जिसमें महिलाएं, युवा लोग, बच्चे, दास और घरेलू सेवक होते हैं। सामान्यतः इसका अर्थ पुरुष वर्चस्व या शक्ति संबंध जिसकी सहायता से पुरुष महिलाओं पर प्रभावी होते हैं, और विस्तृत रूप से कहें, तो एक प्रणाली जिसमें महिलाओं को नानाविध ढंग से दोयम स्थान पर रखा जाता है। दक्षिण एशिया में, इसे *पितृसत्ता, पितरशाही* और *पित्रोतंत्रो* कहा जाता है।

पितृसत्ता एक पुरुष प्रधान सामाजिक संरचना है, जिसमें महिलाएं दमित होती हैं। हम एक पितृसत्ता में रहते–जीते हैं, एक समाज जिस पर अधिकांशतः पुरुष का नियंत्रण होता है और जिसमें पुरुष सामान्यतः अधिकांश लाभों का उपभोग करते हैं (संपत्ति और सम्मान दोनों संदर्भों में)। इसके बावजूद कि पुरुष इसे लेकर असहज महसूस करें और इसे बदलना चाहें, तो भी उन्हें एक पुरुष प्रधान समाज में रहने का लाभ मिलता है। परिभाषा के अनुसार, पितृसत्ता पुरुषकेंद्रिकता का प्रदर्शन करती है – सभी सामाजिक संस्थानों में प्रचलित पुरुष–केंद्रित नियम जो मानक बन जाते हैं और उनका पालन सभी लोग करते हैं। इन मान्यताओं को बनाए रखने के लिए कि महिला–पुरुष भूमिकाओं का निर्धारण शारीरिक आधार पर होता है, जब पितृसत्ता और पुरुष केंद्रिकता मिलती है, तब लिंगजन्य पूर्वाग्रह बलवती हो जाता है, और इसीलिए वे अपरिवर्तनीय होती हैं। उदाहरणस्वरूप, समस्त विकासशील विश्व में, किसी महिला की शारीरिक रूप से अनुपयुक्तता के प्रति मान्यताओं ने, घरेलू कामकाज को छोड़कर, शिक्षा और साक्षरता की प्राप्ति के अवसरों को सीमित कर रखा है। इन सीमाओं ने पुरुषों को महिला–पुरुष के प्रति जो कुछ लिखित, प्रसारित और व्याख्यायित है, उसका और समाज में पुरुषों और महिलाओं की स्थिति का कर्ता–धर्ता बना दिया है। अभी हाल में, पुरुष केंद्रिकता के संदर्भ से इतिहास लिखा गया जिसमें मानवजाति के आधे हिस्से को दरकिनार कर दिया गया। इस विचार ने इस मान्यता को बनाए रखा है कि पितृसत्ता इतिहास का एक अपरिहार्य, अनिवार्य तथ्य है; इसलिए महिला–पुरुष समानता के लिए हो रहे संघर्ष असफल होने को अभिशप्त हैं। महिला शिक्षा पुरुष केंद्रिकता के प्रचलित विचारों के विकल्प प्रस्तुत करने हेतु शोध और छात्रवृत्ति के आकर्षण की शक्ति से जुड़ी है। हम देखेंगे कि यह छात्रवृत्ति पितृसत्तात्मक प्रणालियों के संभवतः विश्वव्यापी होने का संकेत देती है, किंतु वे अपरिहार्य नहीं हैं और यह कि महिला–पुरुष समतावाद कुछ संस्कृतियों में जीवन का एक ऐतिहासिक सच था और अन्य संस्कृतियों में जीवन का समकालीन तथ्य है।

पितृसत्ता की संकल्पना महिला–पुरुष समानता की कई नारीवादी व्याख्याओं के केंद्र में रही है। किंतु, एक वैश्लेषिक साधन के रूप में, महिला–पुरुष समानता में परिवर्तनों और विविधता की व्याख्या करने में असफल रहने के कारण इसकी आलोचना भी हुई है। समस्त इतिहास के परिप्रेक्ष्य में हम दमन के एकरूप और समरूप होने की कल्पना नहीं कर सकते।

टिप्पणी

ब्रिटिश समाजशास्त्री सिल्विया वाल्बी मानती हैं कि पितृसत्ता की अवधारणा महिला–पुरुष समानता के किसी भी विश्लेषण के लिए आवश्यक है। थियॉराइजिंग पैट्रियार्की (1990) में, वाल्बी पितृसत्ता को समझने का एक मार्ग प्रस्तुत करती हैं, जो अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक लचीला है। यह ऐतिहासिक समय में परिवर्तन और नृजाति व वर्ग के अंतरों पर विचार करने की अनुमति देता है।

वाल्बी के अनुसार, 'पितृसत्ता सामाजिक संरचनाओं की एक प्रणाली है जिसमें पुरुष महिलाओं को अधिकार में रखते हैं, उनका दमन और शोषण करते हैं।' (1990 : 20) वह पितृसत्ता और पूंजीवाद को अलग–अलग प्रणालियों के रूप में देखती हैं जिनका सामना ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न रूपों में होता है – कभी–कभी सौहार्दपूर्वक और कभी–कभी तनाव में। वह तर्क देती है कि श्रम के महिला–पुरुष वर्गीकरण के जरिए पूंजीवाद ने पितृसत्ता को सामान्यतः लाभ पहुंचाया है। अन्यथा पूंजीवाद और पितृसत्ता एक दूसरे के विपरीत रहे हैं। उदाहरणस्वरूप, युद्ध के दिनों में, जब भारी संख्या में महिलाओं का श्रम बाजार में प्रवेश हुआ, तब पूंजीवाद और पितृसत्ता के हित समानांतर नहीं थे।

वाल्बी छह ऐसी संरचनाओं की पहचान करती हैं, जिनसे पितृसत्ता चलती है। वे मानती हैं कि पुरुषों की हिंसा या संतानोत्पत्ति में महिलाओं की भूमिका जैसे एक 'महत्वपूर्ण' कारण पर ध्यान केंद्रित करना आरंभिक नारीवादी सिद्धांत की एक कमजोरी थी। महिला–पुरुष असमानता की गहराई और अंतर्संबंध वाल्बी का सरोकार है, इसलिए वह पितृसत्ता को छह संरचनाओं के संघटन के रूप में देखती हैं, जो स्वतंत्र हैं किंतु जिनका एक दूसरे से परस्पर व्यवहार है :

- **परिवार में उत्पादन संबंध** : महिलाओं के बेगार घरेलू श्रम, जैसे घर के कार्य और शिशु देखभाल, को उसका पति महत्व नहीं देता।
- **सवेतन कार्य** : श्रम बाजार में महिलाओं को कुछ खास कामों से अलग रखा जाता है, उन्हें अपेक्षाकृत कम वेतन दिया जाता है और अल्प कौशलपूर्ण कामों तक सीमित रखा जाता है।
- **पितृसत्तात्मक राज्य** : अपनी नीतियों और प्राथमिकताओं में राज्य पितृसत्तात्मक हितों के प्रति सुव्यवस्थित पूर्वाग्रह रखता है।
- **पुरुष हिंसा** : हालांकि पुरुष हिंसा को अक्सर व्यक्तिगत कृत्यों से जोड़कर देखा जाता है, किंतु यह संरचित और सुनियोजित होता है। महिलाएं नियमित रूप से इस हिंसा की शिकार और नियत ढंग से इससे प्रभावित होती हैं। विशिष्ट मामलों को छोड़कर, हस्तक्षेप से मनाकर राज्य प्रभावपूर्ण ढंग से हिंसा को माफ कर देता है।

- **काम–वासना में पितृसत्तात्मक संबंध :** यह 'बाध्यकर विषम लिंग कामुकता' में और पुरुषों व महिलाओं के बीच दोहरे मानदंड में दिखाई देता है (जिसमें काम आचरण पर विभिन्न नियम लागू होते हैं)।
- **पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक संस्थाएं** : समाचार माध्यमों, धर्म और शिक्षा, 'एक पितृसत्तात्मक निगरानी में' उत्पाद प्रस्तुतियों समेत विभिन्न संस्थाएं और प्रथाएं। ये प्रस्तुतियां महिलाओं की अस्मिताओं को प्रभावित और आचरण व क्रियाकलाप के स्वीकार्य मानदंड नियत करती हैं।

टिप्पणी

वाल्बी पितृसत्ता के दो विशिष्ट रूपों की पहचान करती हैं : निजी पितृसत्ता और सार्वजनिक पितृसत्ता।

निजी पितृसत्ता महिलाओं की प्रधानता है जो परिवार के भीतर किसी विशिष्ट कुलपति के द्वारा लागू होती है। यह एक बहिष्कारक रणनीति है, क्योंकि महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन में भाग लेना सर्वथा वर्जित है। पश्चिम में, 20वीं शताब्दी के पहले, एक महिला का जीवन उसके परिवार के इर्द–गिर्द घूमता था, और उसके पिता और/या पति का उस पर पर्याप्त नियंत्रण रहता था। सिल्विया वाल्बी ने इसे निजी पितृसत्ता की संज्ञा दी है।

दूसरी तरफ, सार्वजनिक पितृसत्ता स्वरूप में अपेक्षाकृत अधिक सामूहिक है। महिलाएं राजनीति और श्रम बाजार जैसे सार्वजनिक क्षेत्रों में उलझी रहती हैं, किंतु संपत्ति, शक्ति और सम्मान से वंचित रहती हैं। यह वह प्रणाली थी जिसमें महिलाएं अपने परिवार अर्थ के लिए पुरुषों की मुंहताज रहा करती थीं, कुछ या तो कोई काम नहीं करती थीं या फिर उन्हें अपना काम छोड़ देना पड़ता था। धीरे–धीरे, दूसरे विश्व युद्ध के बाद, इस परिस्थिति में परिवर्तन होना शुरू हुआ और अधिक से अधिक महिलाएं काम के लिए बाहर जाने लगीं और उन्हें बेहतर काम मिलने लगे। कई महिलाओं ने आर्थिक आजादी हासिल कर ली है, और ऐसे अनेकानेक परिवर्तन आए हैं, जिनकी बदौलत तलाक आसान हो चला है और अकेली रहती मांओं की सहायता के लिए कल्याणकारी कार्य किए जाने लगे हैं।

इसका अर्थ है कि महिलाओं के लिए सहायता हेतु किसी पुरुष के बिना जीवन संभव हो चला है। किंतु, वाल्बी तर्क देती हैं कि इसका अर्थ यह नहीं कि पितृसत्ता लुप्त हो गई है, बल्कि इसके स्वरूप में परिवर्तन आ गया है।

पितृसत्ता कार्य कैसे करती है?

महिला–पुरुष आधारित भेदभाव और शोषण व्यापक हैं और सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर पारिभाषित पुरुषों व महिलाओं की विशेषताएं, प्रवृत्तियां, क्षमताएं, कामनाएं, व्यक्तित्व विशेषताएं, भूमिकाएं, दायित्व और आचरणिक आदर्श का समाज में असमानताओं और क्रम परंपराओं को प्रबलित करते हैं। महिला–पुरुष अंतर मानव निर्मित हैं और किसी पितृसत्तात्मक समाज में उन्हें वैध कर दिया जाता है। नीचे कुछ खास विशेषताएं प्रस्तुत हैं जो किसी पितृसत्तात्मक परिवार में दिखाई दे सकती हैं :

- बेटे को प्राथमिकता दी जाती है।
- भोजन वितरण में लड़कियों के साथ भेदभाव।
- महिलाओं और युवा लड़कियों पर घरेलू कार्य का बोझ।

- लड़कियों के लिए शिक्षा के अवसरों का अभाव।
- लड़कियों की स्वतंत्रता और कहीं जाने–आने पर प्रतिबंध।
- पत्नी की प्रताड़ना।
- महिलाओं और लड़कियों पर पुरुषों का नियंत्रण।

टिप्पणी

- कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न।
- उत्तराधिकार या संपत्ति के अधिकार का अभाव।
- महिलाओं के शरीर और काम क्रिया पर पुरुषों का नियंत्रण।
- जननक्षमता या प्रसव अधिकारों पर महिलाओं का कोई नियंत्रण नहीं।

परिवार में ही हम क्रम परंपरा, अधीनीकरण (अधीनता) और भेदभाव का पहला पाठ सीखते हैं। ज्यादातर आधुनिक धर्म पितृसत्तात्मक हैं, जिनमें पुरुष सत्ता को सर्वोच्च माना जाता है। किसी पितृसत्तात्मक आदेश को वे आधिदैविक आधार विहित रूप में प्रस्तुत करते हैं। शक्ति का नारी संबंधी सिद्धांत जो पहले प्रचलित था, उत्तरोत्तर कमजोर पड़ता गया है। सभी प्रमुख धर्मों की व्याख्या पुरुषों ने की है और उन पर नियंत्रण भी उन्हीं का रहा है।

- **मातृसत्ता**

मातृसत्ता का अर्थ माता का शासन होता है। वस्तुतः, कुछ समाजों और समुदायों को छोड़कर, कहीं भी मातृसत्ता के अस्तित्व का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता। कभी–कभी मातृवंश और मातृसत्ता को लेकर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। केरल के नायरों का समाज मातृवंशीय समाज है। मातृवंशीय समाज में, वंश परंपरा का पता माता से लगाया जाता है, अर्थात् संपत्ति मां से बेटी को मिलती है। ऐसे समाज में, पति पत्नी के साथ रहने उसके घर आता है।

मातृसत्ता एक सामाजिक सांगठनिक संरचना है, जिसमें मां या फिर सबसे बूढ़ी महिला परिवार की प्रधान होती है। वंश और संबंध का निर्धारण महिला कुल से किया जाता है। किसी महिला या महिलाओं का भी इस पर नियंत्रण या शासन होता है। जहां सामान्य अंग्रेजी में जो परिभाषाएं लागू होती हैं, वहीं मानव विज्ञान की विधाओं और नारीवाद से जुड़ी परिभाषाओं में कुछ संदर्भों में अंतर है।

ज्यादातर मानवविज्ञानियों का मानना है कि ऐसा कोई समाज ज्ञात नहीं है, जो सुस्पष्ट रूप से मातृसत्तात्मक हो, किंतु कुछ लेखक मानते हैं कि इसके अपवाद हो सकते हैं या हैं। संभव है कि मातृसत्ताओं को भ्रमवश मातृवंश, मातृस्थानिक और मातृकेंद्रिक समाज भी समझा जाता हो। कुछ लोग गैर–पितृसत्तात्मक प्रणाली को मातृसत्तात्मक मानते हैं, इस तरह, जिसमें लैंगिक दृष्टि से समतावादी प्रणालियों को भी शामिल कर लिया जाता है, किंतु अधिकांश शिक्षाशास्त्री इन्हें परम मातृसत्ताओं से अलग रखते हैं।

उन्नीसवीं शाताब्दी में पश्चिमी शोध, मानव विकास के आरंभिक, मुख्यतः प्रागैतिहासिक, चरण का प्रतिनिधित्व करने वाली मातृसत्ता की एक परिकल्पना सामने आई। तथाकथित आदिम समाजों की संभावनाओं का उल्लेख किया गया और दूसरे दौर के नारीवाद के संदर्भ के साथ यह परिकल्पना 20वीं शताब्दी तक जीवित रही और

प्रचलित हुई। कुछ प्राचीन कथाओं में मातृसत्ताओं का उल्लेख है। कई आधुनिक नारीवादियों ने मौजूदा दौर में या भविष्य में मातृसत्ता का समर्थन किया है और यह नारीवादी साहित्य में आई है। विभिन्न ब्रह्म मीमांसाओं में, मातृसत्ता को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

टिप्पणी

मातृवंशीय प्रणाली में मां को परिवार के प्रधान का दर्जा दिया गया है। इस तरह, महिला वंश में ही बच्चों को स्थायी सदस्यता मिलती है। इसलिए, एक बच्चे की पहचान को मां की वजह से स्वीकार किया जाता है। यह प्रथा भारत के कुछ गिने–चुने समुदायों में ही पाई जाती है, जैसे केरल के नायरों और खसियों में क्पोह में और लक्षद्वीप के मुसलमानों में। विवाह से महिला की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। उत्तर भारत में खसियों में, बेटी नहीं होने की स्थिति में ही बेटों को उनकी पैतृक संपत्ति में उत्तराधिकार मिलता है, अन्यथा नहीं। इस तरह, संपत्ति पर महिला का अधिकार होता है और सबसे छोटी बेटी सभी धार्मिक अनुष्ठानों का संपादन करती है, किंतु बाहरी दुनिया में पुरुषों का प्रभुत्व रहता है। खसियों की एक कहावत है 'युद्ध और राजनीति पुरुषों की, संपत्ति महिलाओं की'।

मातृवंश कर्नाटक और तमिलनाडु के कुछ भागों में भी पाया जाता है। बीती शताब्दी की समाप्ति के बाद से इन समुदायों की विधिक प्रणालियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन आए हैं। उत्तरी लक्षद्वीप के मोपला मातृवंश का पालन करने वाले मुसलमान हैं। मोपलों को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में रखा गया है। मातृवंशीय संपत्ति के उत्तराधिकार के प्रति वह सतत अपने प्रथागत कानूनों का पालन करते रहे हैं, और इस तरह का एक दुर्लभ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसकी विशेषता यह है कि इसमें पति के एकक का संस्थानीकरण नहीं होता, पत्नी और बच्चे स्वतंत्र सत्ता के रूप में या एक बृहत्तर सत्ता में समाविष्ट होते हैं और जिसमें इस्लाम के साथ अटूट अनुबंध होता है। कुल मिलाकर, भारत में मातृवंशीय प्रणाली, लक्षद्वीप में पाई जाने वाली, पर परिवर्तन की प्रक्रियाओं का अब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

पूर्वोत्तर राज्यों में, मातृवंशीय संरचना मुख्यतः मेघालय और असम राज्यों के गारो, खसी और प्नार में दिखाई देती है। कम से कम 44 प्रतिशत खसी और 30 प्रतिशत गारो आबादी ईसाई है, किंतु, एक नए धर्म के ग्रहण से उनकी सगोत्रता और विवाह की संरचना में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम कुछ दशकों से, बाजार अर्थनीति के प्रवेश, शिक्षा और आवागमन के अवसरों, व्यावसायिक संरचना के विविधीकरण और कानूनी ढांचे में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप आई परिवर्तन की प्रक्रियाओं की बयार ने उप–महाद्वीप के दोनों कोणों में मातृवंशीय संस्कृतियों को छुआ है। उनमें वैवाहिक आवास (ससुराल) और कामकाजी व्यक्तियों के संघटन, अर्थव्यवस्था के आधारों, जमीन–जायदाद के घटकों, उत्तराधिकार के नियमों और सत्ता संरचना के प्रतिमानों में परिवर्तन हुए हैं।

मोपला मुख्यतः व्यापारी रहे हैं और उनमें दामाद को घर जंवाई के रूप रखने की प्रवृत्ति रही है। खसी और गारो कुदाल संस्कृति (हो कल्चर) में फलते–फूलते रहे हैं, जिसमें जमीन के वास्तविक उपयोग का महत्व है पूर्ण स्वामित्व का नहीं। परंपरागत भूमि काश्तकारी प्रणाली में, कुल या मातृवंश कुछ भूभागों को अपने सदस्यों के द्वारा की जाने वाली खेती के अंतर्गत रखते हैं। वैवाहिक आवास (ससुराल) मुख्यतः स्त्री के घर

के आसपास होता है, जिसमें पति पत्नी पक्ष के लोगों के साथ या पत्नी की जमीन पर रहने के लिए आता है।

टिप्पणी

मातृवंशीय प्रणालियों पर उनकी महिलाओं को उनके द्वारा प्रदत्त स्थिति से जोड़कर विचार किया जा सकता है। यह केवल पितृवंशीय विचारधारा पर, जिसमें महिलाओं को अलग नजरिए से देखने की प्रवृत्ति होती है, आधारित संस्थाओं और समाजों को बोझ से छुटकारा दिलाने के लिए है। उनके विचार का एक और ठोस तर्क भी है। विद्वानों के अनुसार, मातृवंश आर्यों के पहले अत्यधिक प्रचलित था, जिस पर आर्य पितृवंशीय संस्कृति थोप दी गई। महिलाओं के प्रति विचार में द्वैधता, जिसका एक रूप उसी समुदाय में महिलाओं की गौण स्थिति में देखा जा सकता है, जो दयाशील माता के रूप में दैत्यों की संहारक, तामसी और ध्यान और भक्ति की मांग करती देवी भगवती की विभिन्न रूपों में पूजा भी करता है, जिसे भारतीय संस्कृति के मातृवंशीय आधार का श्रेय दिया जाता है।

मातृवंशीय प्रणाली में, वंश महिलाओं के माध्यम से चलता है, किंतु शक्ति सामान्यतः महिलाओं में निहित नहीं होती। इसके लिए, हमें मातृवंशीय प्रणाली को मातृसत्तात्मक प्रणाली समझने के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। मातृवंशीय प्रणाली में, सामाजिक नियंत्रण और भूमि व अन्य संपत्ति के मामलों में नीति निर्माण समेत राजनीतिक शक्ति पुरुषों में निहित होती है; मातृसत्ता में, यह शक्ति महिलाओं में निहित होनी चाहिए। मातृवंश को ऐसी आर्थिक प्रणालियों से जोड़ा गया है, जिनमें महिलाएं यथार्थतः पुरुषों पर निर्भर नहीं होतीं और अपने पर निर्भर रहते हुए ज्यादातर कार्यकलापों का प्रबंध कर सकती हैं। पुरुष कुछ सहायता करते हैं; वे शिकार करते हैं, मछलियां पकड़ते हैं और व्यापार व युद्ध करते हैं। मातृवंश में बिना हल के सामान्य खेती होती है। गारो लोगों ने अभी कुछ ही दशकों पूर्व में हल का उपयोग करना शुरू किया है। दक्षिण पश्चिम में खास कर भूस्वामी नायर समाज में मातृवंशीय समुदाय एक अपवाद है, जिसकी महिलाएं उत्पादन का कोई काम नहीं करतीं किंतु फिर भी वे संपत्ति के अधिकारों का लाभ लेती हैं और उत्तराधिकार व दायाधिकार की कड़ी का काम करती हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. भारत में लिंग की अवधारणा कब स्थापित हुई थी?

   (क) 1950 (ख) 1970

   (ग) 1980 (घ) 1990

2. भारत में वंश संरचना के अंतर्गत निम्न में से क्या शामिल है?

   (क) पितृसत्ता (ख) मातृसत्ता

   (ग) क व ख दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

1.3 लैंगिक भेदभाव और असमानता

लैंगिक भेदभाव एवं असमानता को दूर करने के लिए मानव अधिकार के रूप में महिलाओं की स्थिति पर विशेष ध्यान आकर्षित करते हुए सकारात्मक धारणा बनी।

महिलाओं के प्रति असमानता दर्शाने के लिए आक्रामकता एक प्रमुख सूचक है। हमारे पुरुष प्रभुता वाले समाज में लैंगिक भेदभाव होने के कारण महिलाओं के खिलाफ अकसर हिंसा होती है। संयुक्त राष्ट्र की घोषणा के अनुसार जिसमें महिलाओं के खिलाफ हिंसा के निवारण के तहत महिलाओं के खिलाफ होने वाले हिंसात्मक व्यवहार की सीमाओं को बिल्कुल स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। 'यह एक ऐसा कृत्य है जो सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत जीवन में किसी लिंग आधारित अवधारणा के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ हो जिसमें किसी महिला को शारीरिक, यौनसंबंधी, मनोवैज्ञानिक हानि पहुंचाने का प्रयास हो या इस प्रकार की कोई धमकी दी गई हो।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि लिंग भेदभाव तभी समाप्त हो सकता है जब महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो तथा उनके लिए एक नियमबद्ध कानून व्यवस्था का प्रावधान किया गया हो। संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद 4डी में घोषणा की गई है जिसमें महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा को समाप्त करने के लिए वर्ष 1993 में यह कहा गया था कि राष्ट्र को चाहिए कि वह महिलाओं को उनके अधिकारों के बारे में बताएं तथा बताने के लिए एक स्वतंत्र यंत्रावली की स्थापना भी करें।

1.3.1 लैंगिक भेदभाव : अर्थ, उत्पत्ति एवं विकास

लिंग महिला–पुरुष का सामाजिक वर्गीकरण है। यह पुरुष और महिला के बीच समाज द्वारा स्थापित अंतर है। इसलिए समाज की विभिन्न प्रथाओं को, जो पुरुष और महिला के बीच अंतर करती हैं, महिला–पुरुष भेदभाव की संज्ञा दी जा सकती है। किसी पितृसत्तात्मक समाज में, जो प्रायः विश्व के सभी भागों में प्रचलित है, महिला–पुरुष भेदभाव एक आम बात है। वह जाति हो या वर्ग, वंश अथवा नृजाति, महिलाएं हर जगह सर्वाधिक उत्पीड़ित प्राणी हैं। महिला–पुरुष भेदभाव मुख्यतः शासक और शासित का संघटन है। प्रचलित विचार है कि कुछ लोग बृहत्तर बुद्धि जैसी कुछ विशेषताओं के साथ जन्म लेते हैं, और उन्हें जन्म से ही श्रेष्ठ माना जाता है, जबकि महिलाएं अधीनस्थ प्राणी हैं।

नारीवादी मानव विज्ञानी सिमोन दे बोउवार की टिप्पणी ठीक ही है कि 'स्त्री जन्म नहीं लेती बल्कि गढ़ी जाती है।' यह पंक्ति पूर्णतः स्पष्ट कर देती है कि यह शिशु पालन की प्रथा है जो एक महिला को निरंतर याद दिलाती रहती है कि उसे कपड़े पहनना, खाना खाना, गाना, हंसना, बात करना और सारे कार्य उसी तरह से करने चाहिए जैसा कि समाज उससे चाहता हो।

यदि महिलाएं कामकाजी हों, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि उन्हें घर पर काम नहीं करना है। वे घरेलू काम के प्रति उत्तरदायी हैं। इस दोहरे बोझ के बावजूद, महिलाओं को वह प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं दिया जाता जिसकी वे हकदार हैं। इस तरह, कहा जा सकता है कि इन समस्याओं का मूल कारण पितृसत्तात्मक समाज है।

महिला–पुरुष भेदभाव तब होता है जब एक को दूसरे से बेहतर माना जाए और जाति, वंश लिंग, रंग और मत जैसे उनके जन्मजात गुणों में अंतर किया जाए। यह भेदभाव शिक्षा दिलाने, संपत्ति के अधिकार, आने–जाने, निर्णय निर्माण, अधिकार आदि के आधार पर हो सकता है। महिला–भेदभाव की जड़ लोगों की सोच में है। कई

रूढ़िवादी धार्मिक लोग बालिकाओं को उनके घरों से बाहर जाने की अनुमति नहीं देते। जो लोग सामाजिक रीति–रिवाजों और प्रथाओं के प्रबल समर्थक होते हैं, वे विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं देते।

टिप्पणी

भारतीय समाज में महिला–पुरुष भेदभाव एक आम बात है। लड़कियों की पसंद महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती। भारत के कई हिस्सों में लड़कियां शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं और अगर उन्हें स्कूल भेजा भी जाता है, तो लड़कों की शिक्षा और प्रगति को अधिक महत्व दिया जाता है। लड़कियों से घरेलू कामकाज में हाथ बंटाने, छोटे भाई–बहनों की देखभाल करने आदि की आशा की जाती है।

महिला–पुरुष भेदभाव में अब बदलाव आने लगा है। स्कूलों और कॉलेजों में अधिक से अधिक लड़कियों का दाखिला हो रहा है। महिला कामगार संगठित और असंगठित क्षेत्रों में देखी जा सकती हैं।

महिला–पुरुष भेदभाव के कारण

लैंगिक भेदभाव के कुछ कारण इस प्रकार हैं–

- **शैक्षिक पिछड़ापन** : जाने–माने जनसांख्यिकीविद् सोनल दे देसाई का मानना था कि बेटियों की पढ़ाई–लिखाई के प्रति माता–पिता की उदासीनता की जड़ें महिलाओं की स्थिति में हैं। माता–पिता अपनी बेटियों को शिक्षा नहीं दिलाने के कई कारण बताते हैं। सबसे पहला विचार यह है कि लड़कियों की शिक्षा से माता–पिता को कोई लाभ नहीं मिलता और दूसरा यह कि उनके भविष्य में कार्यों को, मुख्यतः जनन संबंधी और प्रायः खेती मजदूरी समेत होने के कारण, औपचारिक शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है।
- **जाति व्यवस्था** : जाति व्यवस्था एक अति प्राचीन प्रणाली है जिसकी अब कोई प्रासंगिकता नहीं रह गई है। जाति का अदर्शन एक भ्रांति है। जाति व्यवस्था आधुनिक भारतीय समाज और राजनीति का एक हिस्सा है। लिंग, धर्म और अन्य विषयों के साथ इसकी पारस्परिक क्रियाएं इसे कई सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं में, और इन प्रक्रियाओं पर इसके प्रभाव में एक निर्णायक कारक बनाती हैं। जाति व्यवस्था के बने रहने में जाति और लिंग के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है। लिंग और जाति दोनों के बीच संबंध है और दोनों एक–दूसरे को आकार देते हैं। क्लॉद लेवी स्त्रास के अनुसार, सच्चा और सगोत्र विवाह (जाति के भीतर विवाह) मानव समुदाय की सीमाओं से परे विवाह की संभावना को मान्यता देने से महज इनकार करना है। यहां तक कि एक तरफ उच्च वर्ग की महिलाओं का पुनर्विवाह वर्जित और वहीं इसके विपरीत कभी–कभी निम्न–जाति की महिलाओं से सहवास मान्य था। श्रम विनियोग की एक प्रणाली के रूप में जाति व्यवस्था के विशाल तर्काधार ने अन्य ऊंची जातियों के प्रयोजनों को प्रोत्साहित करने के लिए महिला–पुरुष संहिताओं को आकार दिया है।

  दलित समुदायों, अनुसूचित जाति (जनसंख्या का 15 प्रतिशत) और अनुसूचित जनजाति (7 प्रतिशत) आज भारत में सबसे बड़े और निम्न जाति के सर्वाधिक जाने–माने समूह हैं। शोधों से पता चलता है कि इन समूहों में गरीबी की दर अभी भी अन्य समूहों के लोगों की तुलना में स्पष्टतः अधिक है। किंतु, इन समूहों

टिप्पणी

में महिलाओं की स्थिति उल्लेखनीय है। दलित समुदायों में राष्ट्रीय जनसंख्या की तुलना में लड़कियों का सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) नाम मात्र के लिए कम है, और लड़कों और लड़कियों के जीईआर के बीच अंतर नगण्य है, जबकि जनसंख्या के अन्य वर्गों में यह अंतर स्पष्ट है। इन समूहों में श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी दर भी उच्चतर है और इस तरह उनके पूरी तरह से घरेलू काम में ही उलझे रहने की संभावना कम है, हालांकि उनका रोजगार नैमित्तिक श्रम में निहित है। इन समुदायों में महिलाओं की स्थिति पर उनकी उच्चतर आर्थिक उत्पादकता के प्रभावों को अच्छी तरह से समझने के लिए, खास कर यह देखने के लिए कि इससे उनकी निर्णय निर्माण की क्षमता में वृद्धि होती है या नहीं, और शोध होना चाहिए। इन समुदायों के अंतः समुदायों और घरेलू प्रक्रियाओं पर शोध का भी अभाव है, जिससे उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति का परिमाण निर्धारण और मूल्यांकन कठिन होता है।

- **धार्मिक मान्यताएं** : धर्म भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है और हाल में यह भारतीय राजनीति का एक वर्धमान हिस्सा बन गया है। धर्म से महिलाएं विशेष रूप से प्रभावित हैं। धार्मिक परंपरा के वाहक के रूप में देखी जाने वाली इन महिलाओं की सार्वजनिक और निजी भूमिकाओं पर अक्सर धर्म के नाम पर प्रतिबंध होते हैं। महिलाओं को अक्सर शिक्षा प्राप्त करने या आर्थिक रूप से उत्पादक होने से हतोत्साहित किया जाता है। युवावस्था की पहली सीढ़ी से ही उन पर विवाह के बहुत अधिक दबाव रहते हैं (खास कर ग्रामीण क्षेत्रों में); और धर्मों के भीतर पुरुषों के प्रति पूर्वाग्रह इस बात के उदाहरण हैं कि धर्म महिलाओं के विकास को कैसे प्रभावित कर सकता है। महिलाओं के धार्मिक समुदायों में उनकी भूमिका को समझना उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के हेतुक (प्रेरणात्मक) एजेंटों को समझने; और उनकी जरूरतों को पूरा करने हेतु प्रयास कार्यक्रम तैयार करने दोनों के लिए जरूरी है।

स्वीडन की सामाजिक प्रजातांत्रिक डेमोक्रेटिक राजनीतिज्ञ अन्ना मारिया लिंद का कहना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भारत की आबादी अभी भी पारंपरिक जीवन व्यतीत करती है। धार्मिक कानून और परंपराएं आज भी कई लोगों के, विशेष रूप से महिलाओं के जीवन का निर्धारण करती हैं। इसके बावजूद कि महिलाओं को पहले से ही जमीन और संसाधनों पर अधिकार है, सामाजिक और धार्मिक कारक परिवार के भीतर गांठ उत्पन्न होने से रोकने के लिए कई महिलाओं को इस अधिकार से दूर रहने को विवश करते हैं। भारत में समाज के सभी वर्गों में बेटे के जन्म को प्राथमिकता दी जाती है, जो लड़कियों के लिए उनके जीवन पर्यंत मानदंड तय कर देता है। पुरुषों की तरह, महिलाएं भी परिवार में और राष्ट्र के विकास में एक महती भूमिका निभाती हैं। किंतु उनके योगदान को पुरुष प्रभावी समाज में मान्यता नहीं दी जाती।

भारतीय परिवार में महिलाओं की स्थिति

विवाह दो पक्षों के बीच एक समझौता है। सामान्यतः, यह समझौता उल्लिखित शर्तों के अधीन होता है और इन शर्तों को दोनों पक्ष राजी–खुशी से स्वीकार करते हैं। विवाह एक समझौता है किंतु एकदिशीय है जहां वर पक्ष अपनी शर्तें रखता है और दूसरे, यानी वधू पक्ष को उन्हें मानना पड़ता है, उनकी पसंद और स्वीकृति के परे। विवाह समझौते

की शर्तों को मानने से मना करने की स्थिति में परिवार में महिलाओं को जब–तब प्रताड़ित किया जाता है। ऐसी कोई प्रथा नहीं है कि महिला पक्ष विवाह समझौते में अपनी शर्तें रखे। यह पक्षपात भारतीय परिवारों में निरंतर बना हुआ है और सभी तबकों में महिलाओं के शोषण का पक्षधर है। महिला की शिक्षा और मार्गदर्शन भी इस स्थिति में योगदान करते हैं। खास कर उनका परिधान उनकी कमजोरी में एक अहम भूमिका निभाता है। युगों से चली आ रही महिलाओं की कमजोरियों के कुछ कारणों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत है :

टिप्पणी

- पुरुष पक्षपात
- महिलाओं को उत्पादन का एक साधन माना जाना
- उत्तम परिधान एवं पहनावा
- सामाजिक दबाव
- जाति आधारित भेदभाव और सामाजिक वर्जनाएं
- फलप्रद संसाधनों की अपर्याप्त सुलभता
- गरीबी
- उन्नति की अपर्याप्त सुविधाएं
- आर्थिक दुर्बलता

1.3.2 श्रम विभाजन : लैंगिक भूमिका

घर में काम करने के कारण स्त्रियों को गैर उत्पादक श्रम करने वाली महिला कहकर पुकारा जाता है। घर में काम करने के इस विभाजन को 'लैंगिक श्रम विभाजन' कहते हैं। एक महिला का कार्य घर के अंदर होता है इसलिए इसे व्यक्तिगत कहकर छोड़ दिया जाता है जबकि पुरुष का कार्य घर से बाहर होता है, उसे सार्वजनिक कार्य कहा जाता है। अधिकांश समाजों में महिलाओं के कार्यों को स्पष्ट रूप से अलग करके प्रदर्शित किया जाता है। भारतीय समाज के मध्यम वर्ग में धन कमाकर लाने का उत्तरदायित्व पुरुषों का होता है और स्त्रियां घर का कामकाज करती हैं तथा बच्चों का पालन–पोषण एवं देखभाल करती हैं। स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता एवं श्रम में लैंगिक आधार पर विभाजन जैसे मुद्दे परस्पर एक–दूसरे से संबद्ध हैं। पश्चिमी देशों में बड़ी संख्या में जब महिलाओं ने श्रम कार्य करना आरंभ किया तब से श्रम विभाजन की विचारधारा को भारी चुनौती का सामना करना पड़ा है।

श्रम विभाजन के अंतर्गत स्त्री–पुरुष की इस प्रक्रिया को जैविक रचना के आधार पर प्राकृतिक एवं अनुपूरक समझा जाता है। पश्चिम में नारीवादी आंदोलन के उदय ने श्रम विभाजन को लेकर बहुत से प्रश्न खड़े कर दिए और इसके साथ–साथ विभिन्न समाजों एवं संस्कृतियों में महिलाओं की लगभग एक जैसी अधीनता पर भी सवालिया निशान लगा दिया है।

आंकड़े दर्शाते हैं कि विश्व भर में एक समान काम करने के बावजूद महिलाओं को उसी काम के लिए पुरुषों की तुलना में कम पैसे मिलते हैं। लैंगिक असमानता एवं भेदभाव के कारण व्यवसायों में भी परिवर्तन आ गया है। श्रम बल में महिलाओं की

सक्रिय सहभागिता, इसके अवमूल्यन एवं निर्णयन की प्रक्रिया महिलाओं को बाहर कर देने से संबद्ध है।

महिलाएं पुरुष वर्ग द्वारा उत्पीड़ित एवं उपेक्षित हैं। पितृ–सत्तात्मक संरचना भौगोलिक एवं ऐतिहासिक रूप से लगभग सभी जगह एक जैसी है। वर्तमान समाज में भेदभाव का मुख्य केंद्र वर्ग नहीं बल्कि लैंगिकता है। स्त्री–पुरुष श्रम विभाजन पर परा सांस्कृतिक शोध ने जीवन–निर्वाह के विविध साधनों से समाज में महिलाओं की उत्पादनशील गतिविधियों की विस्तृत रेंज को स्पष्ट करने का प्रयास किया है लेकिन साथ ही उन्होंने महिलाओं की स्थिति पर इनके निहितार्थों पर भी ध्यान केंद्रित किया है।

टिप्पणी

आज भारत में अर्थव्यवस्था दो वर्गों में बंटी हुई है– संगठित और असंगठित। संगठित क्षेत्र वे हैं जहां नियमित वेतन मिलता है, श्रम के कानून होते हैं और श्रम से जुड़े लाभ मिलते हैं। असंगठित क्षेत्र वे हैं जहां न तो ये काम पक्के होते हैं और न इनमें नियमित वेतन मिलता है। अधिकांश स्त्रियां जो अपने घर से बाहर काम करती हैं वे असंगठित क्षेत्र हैं और इनमें कई प्रकार के शोषण होते हैं। यद्यपि यह नियम सभी मानते हैं कि समान काम के लिए समान वेतन मिलना चाहिए परंतु ज्यादातर महिलाएं पुरुषों से कम वेतन पाती हैं। कृषि या निर्माण कार्य में जिनमें प्रायः स्त्रियां काम करती हैं, पुरुषों की तुलना में उन्हें कम वेतन मिलता है। स्त्रियां चाहे घर में काम करती हों या बाहर, घर के काम को हमेशा एक स्त्री का ही उत्तरदायित्व समझा जाता है। वे स्त्रियां जो घर और बाहर के काम को करती हैं दोहरे बोझ से पीड़ित होती हैं। इस स्थिति का हम कैसे भी विश्लेषण करें पर निश्चित रूप से स्त्रियां पुरुषों से अधिक काम करती हैं और उसकी तुलना में उनके लाभ बहुत कम हैं।

1.3.3 सामाजिक स्थिति : लैंगिक पूर्वाग्रह और लैंगिक अनुपात

समाज में लैंगिकता को लेकर आज भी कई पूर्वाग्रह और रूढ़ियां प्रचलित हैं। इन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है।

लैंगिक पूर्वाग्रह

लैंगिक पूर्वाग्रह से अभिप्राय अलग–अलग लिंगों के हिसाब से उनके साथ होने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहार एवं उनके साथ होने वाले पक्षपात से है। लैंगिक रूढ़िबद्धता से अभिप्राय किसी भी लिंग को एक विशेष छवि में बांधने से है। सामान्यतः रूढ़ शब्द का प्रयोग किसी भी वस्तु या घटना के अत्यधिक सामान्यीकरण करने के लिए किया जाता है। ये एक प्रकार की छाप होती है जिसके आधार पर हम किसी भी व्यक्ति को एक निश्चित वर्ग में बांट सकते हैं। यह छाप वास्तव में किसी समूह विशेष की छाप है और यदि इस समूह के किसी व्यक्ति में उस समूह का एक भी गुण न हो तो भी उस व्यक्ति पर कई बार सिर्फ इसलिए थोपी जा सकती है कि वह एक समूह विशेष का हिस्सा था। इस प्रकार लैंगिक रूढ़िबद्धता में भी अलग–अलग लिंगों की कुछ विशेष छवि को गढ़ लिया जाता है। ये छवियां मस्तिष्क में इस प्रकार से बैठ जाती हैं कि हमारा मस्तिष्क विभिन्न लिंगों को इन छवियों के भीतर ही देखता है और इसी कारण जन्म होता है लैंगिक पूर्वाग्रहों का। लैंगिक पूर्वाग्रह एवं लैंगिक रूढ़िबद्धता एक दूसरे से संबंधित हैं। हमारे मन–मस्तिष्क में लैंगिक रूढ़िबद्धता छवियां इस कदर बस जाती हैं कि हम कब

पक्षपातपूर्वक व्यवहार करने लगते हैं हमको पता ही नहीं चलता। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी के अनुसार, लैंगिक रूढ़िबद्धता ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत बच्चों को उनकी एक्स भूमिकाओं में ढाला जाता है तथा जिसके कारण वयस्क तथा बच्चे अपने व्यक्तित्व विकास के विभिन्न पहलुओं से वंचित कर दिए जाते हैं।

टिप्पणी

लैंगिक रूढ़िबद्धता

हमारे समाज में प्रत्येक लिंग के लिए बहुत सारी लैंगिक रूढ़िबद्धता मौजूद हैं। रूढ़िवादी लैंगिक भूमिकाएं बचपन से ही सिखाई जाती हैं। ये न दिखाई देने वाली समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। और यह समाजीकरण भिन्न–भिन्न माध्यमों के द्वारा संपन्न होता है। उदाहरण के लिए जब किसी लड़के से कहा जाता है कि 'लड़कियों की तरह मत रो' या लड़कियों को कहा जाता है कि 'ज्यादा उछल–कूद मत करो' तो वास्तव में हमारे मस्तिष्क में फिट रूढ़िबद्धता सक्रिय होती है और साथ ही वे बच्चे जिनको ऐसा बोला जाता है उनके दिमाग में भी रूढ़िबद्धता कार्य कर रही होती है। ऐसे ही व्यवहारों से बच्चे स्त्री (feminine) एवं पुरुष (masculine) वाले गुण सीखते हैं। स्कूल में आज भी गृह–विज्ञान एवं कला को लड़कियों के लिए जबकि इंजीनियरिंग एवं कम्प्यूटर जैसे विषय लड़कों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। पुरुष अपने आप को लड़कियों से बेहतर एवं श्रेष्ठ मानते हैं। अधिकांशतः स्त्रियां भी स्वयं ऐसी ही धारणा रखती हैं। ऐसा समाज के बनाए खांचों एवं रूढ़िबद्धता के कारण ही है।

हमारी सामाजिक संरचना में स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की भूमिका का निर्धारण बचपन से ही हो जाता है। सामाजिक रूढ़ियों के अनुसार स्त्री एवं पुरुष में अलग–अलग गुण होने चाहिए। सामाजिक संरचना एवं रूढ़िबद्ध छवियों के अनुसार तय स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व के कुछ मानदंडों की सूची निम्नलिखित है–

स्त्रीत्व के गुण	पुरुषत्व के गुण
कोमल	कठोर
आश्रित	स्वतंत्र
आज्ञाकारी	प्रभावशाली
सहयोगी	प्रतियोगी
कमजोर	बहादुर
पालन–पोषण करना	स्तरीय भूमिकाएं
भावुक	भावुक नहीं
अतार्किक	तार्किक

यदि हम इन गुणों को देखें तो यह पाएंगे कि समाज द्वारा तय स्त्री एवं पुरुष की भूमिकाएं एकदम विपरीत हैं। यदि पुरुष तार्किक है तो स्त्री को अतार्किक माना जाता है। स्त्री का भावुक होना आवश्यक है परंतु यदि पुरुष भावुक हो तो यह अच्छा नहीं माना जाता। थोड़ा गहराई से सोचें तो हम ये पाएंगे कि महिलाओं के गुणों का अवमूल्यन किया गया है। और पितृसत्ता के प्रभाव से महिलाएं भी अपने गुणों के

अवमूल्यन को स्वीकार कर लेती हैं। वास्तव में इनमें से यदि कोई भी अपनी तय भूमिका से अलग सांचे में जाता है तो उसको बुरा समझा जाता है। समाज की नजर में अच्छी स्त्री एवं अच्छा पुरुष वही है जो इन तय भूमिकाओं के भीतर ही रहते हुए अपने दायित्व का निर्वाह करे।

लैंगिक भूमिकाएं एवं रूढ़िबद्धता

टिप्पणी

अधिकांशतः बचपन से ही लड़के एवं लड़कियों की लिंगाधारित भूमिका निर्धारित कर दी जाती है और फिर अपने जीवन काल में वे उन रूढ़िबद्धताओं का सामना करते रहते हैं। लड़की के जन्म को ही बुरा माना जाता है। बेटी पैदा होने पर दुख की अभिव्यक्ति की जाती है और भाग्य को कोसा जाता है। दूसरी तरफ लड़के के पैदा होने पर खुशी जाहिर की जाती है और जश्न मनाया जाता है। बेटी के पैदा होने पर मां की भी उपेक्षा की जाती है और उसको अच्छा खान–पान नहीं दिया जाता। ऐसे में उनकी ये निराशा उनकी बेटियों में भी हस्तांतरित होती है। लड़कों को खूब दुलार से पाला–पोसा जाता है और उनका पालन–पोषण भी अच्छे से किया जाता है। दोनों के लिए अलग–अलग तरह के वस्त्र बनाए जाते हैं। यहां तक कि रंगों का चुनाव भी लिंग के हिसाब से किया जाता है। दोनों के खिलौनों में भी बहुत अंतर होता है। लड़कियों को बर्तन, गुड़िया आदि जबकि लड़कों को बंदूकें, गाड़ियां, हवाई जहाज और विडियो गेम जैसे खिलौने दिए जाते हैं।

लड़कियों के तरुणावस्था में प्रवेश करते ही उन पर प्रतिबंध लगने प्रारम्भ हो जाते हैं। उनके चलने–फिरने, हंसने–बोलने, पहनने–ओढ़ने सबके तरीकों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है। लड़कों के लिए प्रतिबंध नहीं होते उल्टा उनको स्वतन्त्रता मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। लड़कियों के विवाह के लिए मां–बाप अधिक चिंतित होते हैं क्योंकि सामाजिक रूढ़ियों के तहत उनको अनेक रस्मो–रिवाज अदा करने होते हैं जिसके लिए उनको पैसे की आवश्यकता होती है। ऐसे में कई लड़कियां स्वयं हीन भावना महसूस करने लगती हैं और अपने आप को अपने माता–पिता पर बोझ समझने लगती हैं। इसलिए देश के कई भागों में लड़कियों की गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है। लड़की शिशु मृत्यु दर हमेशा लड़के शिशुओं की मृत्यु दर की तुलना में अधिक होती है। विवाह के पश्चात भी लड़कियों को दहेज के लिए परेशान किया जाता है और यहां तक कि मार भी दिया जाता है।

लड़कियों एवं लड़कों की शिक्षा में गहरा भेद मिलता है जिसका कारण उनके लिंग के हिसाब से उनके साथ पक्षपात करना एवं उनकी रूढ़िवादी छवि को गढ़ना है। 2011 की जनगणना के अनुसार स्त्री साक्षरता दर 65.5 प्रतिशत और पुरुष साक्षरता दर 82.1 प्रतिशत थी। दोनों में साक्षरता के अंतर के बहुत से कारण हो सकते हैं जो लैंगिक भेदभाव को दर्शाते हैं। लड़कियों के लिए शिक्षा से वंचित होने के बहुत सारे कारण होते हैं जैसे–अपने छोटे भाई–बहन की देखभाल करना, जल्दी विवाह हो जाना, अत्यधिक निर्धनता होना आदि। बहुत सारी लड़कियां विवाह के कारण अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती हैं। परिवार में भी लड़कियों की शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। यदि वे लड़की को पढ़ाते भी हैं तो इसलिए ताकि उनका विवाह हो सकें। उनको सीमित विषयों को पढ़ने के लिए कहा जाता है। उनसे नौकरी की अपेक्षा नहीं रखी जाती। लड़कों की शिक्षा का संदर्भ इसके बिलकुल विपरीत हैं। उनकी शिक्षा को अधिक महत्व

दिया जाता है और उनकी शिक्षा पर पैसा भी खर्च किया जाता है क्योंकि पढ़–लिख कर कमाएगा और मां–बाप के पास ही रहेगा जबकि लड़कियों को पढ़ा–लिखा कर क्या करना है, उनको तो पराए घर जाना होता है। इस प्रकार की सोच लड़के एवं लड़कियों की लैंगिक भूमिका के कारण ही है।

टिप्पणी

लड़के यदि किसी से झगड़ा करके घर लौटे तो उनको प्रोत्साहित किया जाता है जबकि लड़कियों को शांत एवं भावुक बनने के लिए कहा जाता है। लड़के यदि रोते हैं तो उनको ताने दिए जाते हैं कि 'लड़कियों की तरह क्यों रो रहे हो' 'शर्म आनी चाहिए तुमको, चूड़ियां पहन लो' आदि। इस तरह की बातों से लड़के उग्र, हिंसक एवं लड़ाकू बनते हैं।

बाहर के कार्यों के लिए लड़कों को ही बाहर भेजा जाता है जबकि घर के कार्य करने के लिए लड़कियों को कहा जाता है। घर के काम में लड़कियों को कुशल बनाने का प्रयास किया जाता है ताकि वह शादी के बाद घरेलू कार्य अच्छे से कर सकें एवं अपनी घर–गृहस्थी संभाल सकें। लड़कों के लिए कुछ बनने एवं पैसा कमाने के लिए जोर दिया जाता है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वह कुछ बनकर अपने घर को चलाने में सहायता करें। कई बार लड़कों पर इस बात का इतना दवाब बनाया जाता है कि गलत रास्ते की ओर चले जाते हैं। वे गलत तरीकों से पैसा कमाने लगते हैं या फिर मादक पदार्थों का सेवन करने लगते हैं और अपना जीवन संकट में डाल देते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लड़का एवं लड़की दोनों की ही समाज में निश्चित भूमिकाएं हैं। और दोनों से ही ये अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी भूमिका का अच्छे से निर्वाह करें।

लैंगिक रूढ़िबद्धता के कारण

हमने देखा कि कैसे स्त्री एवं पुरुष को समाज द्वारा तय उनकी भूमिकाओं में बांध कर उनके साथ भेदभाव किया जाता है। पुरुषों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त है परंतु उनकी अलग तरह की समस्याएं हैं। स्त्रियां सर्वाधिक भेदभाव की शिकार हैं। इन लैंगिक रूढ़िबद्धताओं के कारणों की पहचान करना और उनको समझना बहुत ही आवश्यक है। लैंगिक रूढ़िबद्धता के कुछ कारण निम्नलिखित हैं–

- **पितृसत्ता का प्रभाव** : भारत में पुरुष–प्रधान समाजों की अधिकता है। यहां पितृसत्ता का प्रभाव है जिसके अंतर्गत पुरुष ही सर्वश्रेष्ठ होता है और स्त्रियों को किसी प्रकार का निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं होता है। यह विचारधारा स्त्रियों का शोषण एवं उत्पीड़न करती है। केवल भारत जैसे विकासशील देश में ही नहीं अपितु विकसित देशों में भी स्त्रियों का दर्जा पुरुषों के बराबर नहीं है। पितृसत्तात्मक विचारधारा स्त्री एवं पुरुष में गहन भेदभाव करती है क्योंकि यह केवल एक लिंग 'पुल्लिग' को ही अन्य से श्रेष्ठ मानती है।
- **सामाजिक रीति–रिवाज** : कई बार सामाजिक रीति–रिवाज कुछ इस प्रकार से बने होते हैं जो स्त्री एवं पुरुष में भेदभाव पर ही आधारित होते हैं और उनका पालन भी किया जाता है। लड़की के जन्म से जुड़ी मान्यताएं आज भी मानी जाती हैं। दहेज प्रथा आज और भी विकराल रूप में हमारे सामने है। लड़कियां बाहर निकल कर काम तो करने लगी हैं परंतु घर में उनकी भूमिका में किसी

प्रकार का अंतर नहीं आया है। विवाह आज भी सामाजिक दबाव में किया जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जहां सामाजिक रीति–रिवाज भी भेदभाव में अपना पूर्ण सहयोग देते हैं।

- **धार्मिक रूढ़ियां** : लगभग हर धर्म में ऐसी धार्मिक रूढ़ियां एवं मान्यताएं हैं जिनसे लैंगिक रूढ़िबद्धता को बढ़ावा मिलता है। हर धर्म के कर्ता–धर्ता अधिकांशतः पुरुष ही होते हैं महिलाएं नहीं। विभिन्न धर्मों में पुरुष को स्त्री से श्रेष्ठ बताया है। स्त्रियां, पुरुष के संरक्षण में ही रहती हैं। इसलिए धर्म भी स्त्रियों की हीन अवस्था और उनके साथ भेदभाव के लिए जिम्मेदार है।

टिप्पणी

- **शिक्षा का अभाव** : शिक्षा का अभाव लैंगिक रूढ़िबद्धता का प्रमुख कारण है। चाहे स्त्री हो या पुरुष, समाज में हो रहे अन्याय एवं असमानता के खिलाफ तभी आवाज उठा सकेंगे जब शिक्षा द्वारा उनके भीतर चेतना जाग्रत होगी। शिक्षा के अभाव का दंश भी स्त्रियों को अधिक झेलना पड़ता है। घर–परिवार की जिम्मेदारी पूरी करने के चक्कर में वे स्वयं शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातीं और इसलिए अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को समझ भी नहीं पातीं और न ही इसके खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत जुटा पाती हैं।

- **स्त्रियों का आर्थिक रूप से अक्षम होना** : हमारे समाज में लैंगिक भेदभाव सबसे अधिक महिलाओं के साथ ही होता है और महिलाएं इसके विरुद्ध आवाज तक नहीं उठातीं। उनको रूढ़िबद्धता की वजह से बहुत दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इसका एक कारण तो यह है कि वे अपनी स्थिति को ही अपने जीवन की नियति मानकर जीती हैं। दूसरा सबसे बड़ा कारण उनका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होना है। वे अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कभी पिता पर, कभी भाई पर, कभी पति पर तो कभी बेटों पर निर्भर रहती हैं। ऐसे में उनको पुरुषों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है। अक्सर देखा गया है कि जो स्त्रियां आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती हैं वे उन स्त्रियों की तुलना में अधिक स्वतंत्र होती हैं जो आत्मनिर्भर नहीं होतीं।

- **राजनीति में महिलाओं की सीमित भूमिका** : यदि हम राजनीति में महिलाओं की भूमिका को देखें तो हमें केवल चंद ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने रूढ़िबद्धता को तोड़कर अपनी एक अलग पहचान बनाई है। भारत में इन्दिरा गांधी, सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज आदि, पाकिस्तान में बेनजीर भुट्टों, बांग्लादेश में शेख हसीना जैसी महिलाओं ने अपने देश की बागडोर संभाली है। परंतु इनकी संख्या इतनी कम रही है कि इससे महिलाओं की राजनीति में वांछित भागीदारी सुनिश्चित नहीं होती। भारत में संसद में महिलाओं की भागीदारी बहुत सीमित है। संसद में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने की मांग कितने वर्षों से रुकी हुई है। जब तक राजनीतिक स्तर पर महिलाओं की उचित संख्या में भागीदारी एवं उनको स्वयं निर्णय लेने की स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी तब तक वे समाज के हर क्षेत्र में भेदभाव एवं रूढ़िबद्धता का सामना करती रहेंगी। इन सबको समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वे राजनीति में आएं और नीति एवं निर्णयों में समानता के मूल्यों को फलीभूत करें।

सशक्तीकरण

टिप्पणी

जब हम किसी व्यक्ति के सशक्तीकरण की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय किसी व्यक्ति को कुछ विशेष अधिकार एवं कार्य करने की सत्ता प्रदान करने से होता है। साथ ही अपने जीवन की परिस्थितियों पर उसका अधिक नियंत्रण हो जाता है। सामान्यतः सशक्तीकरण को हम महिलाओं के संदर्भ में प्रयोग करते हैं क्योंकि ये वो कमजोर तबका है जिसको सशक्त बनाने की अधिक आवश्यकता है।

वर्तमान में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए बहुत प्रयास किए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया था। वर्ष 1980 को 'महिला विकास वर्ष' के रूप में मनाया गया था। प्रत्येक वर्ष 8 मार्च भी 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के रूप में विश्वभर में मनाया जाता है। भारत में भी वर्ष 1975 को 'महिला वर्ष' एवं 1976–1985 के दशक को 'महिला दशक' के रूप में मनाया गया था। वर्ष 2001 को 'महिला सशक्तीकरण वर्ष' के रूप में मनाया गया था। इसके बाद से ही महिला सशक्तीकरण की अवधारणा को लोकप्रियता मिली और आज भी इस दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं।

महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि उनको सामाजिक, राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रतिनिधित्व एवं दक्षता हासिल हो और वे सुरक्षित रहें। लैंगिक असमानता, हिंसा, स्वास्थ्य आदि जैसे पहलुओं की दिशा में कार्य करके महिला सशक्तीकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। महिलाओं का सशक्तीकरण आधुनिक जीवन में सामाजिक न्याय की जड़ों को मजबूत करता है। इसके माध्यम से समाज के रवैये में बुनियादी परिवर्तन लाकर महिलाओं के विवेक, सामर्थ्य एवं योग्यताओं को मिलने वाली चुनौतियों के बीच उन्हें प्रोत्साहित करना है ताकि वे अपनी क्षमताओं को पहचान कर उन्हें व्यवहार में तब्दील कर सकें, जिससे समाज का उत्थान हो। महिलाओं का सशक्तीकरण एक लगातार चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है, जिसका मूल उद्देश्य ही हाशिये के लोगों को मुख्य धारा में लाना है ताकि उनको सत्ता संरचना एवं विकास में भागीदार बनाया जा सके।

महिला सशक्तीकरण की अवधारणा मुख्यतः महिलाओं के लिए अधिकारों को मानवाधिकारों की श्रेणी में रखने की मांग करती है और महिला एवं पुरुष के बीच समानता स्थापित करने का प्रयास करती है। साथ ही यह अवधारणा महिलाओं को सम्मान के साथ जीवन जीने और उनको उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने की दिशा में कार्य करती है। वास्तव में महिला सशक्तीकरण एक व्यापक अवधारणा है जो महिलाओं के स्वयं के जीवन पर नियंत्रण, उनके निर्णय लेने की क्षमता, उनको शैक्षिक अवसर प्रदान करने, उचित आर्थिक अवसर प्रदान करने, संसाधनों के उचित उपभोग एवं समाज में उनकी उपयुक्त भागीदारी से संबंधित है। सशक्तीकरण के प्रयास व्यक्तिगत स्तर पर भी हो सकते हैं और सामूहिक स्तर पर भी। कई बार समूह में सम्मिलित होकर ही मनुष्य की चेतना जाग्रत होती है और वह अपनी स्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। महिला सशक्तीकरण को हम तीन भागों में बांट कर देख सकते हैं–

- सामाजिक सशक्तीकरण
- आर्थिक सशक्तीकरण
- राजनीतिक सशक्तीकरण

1. सामाजिक सशक्तीकरण

टिप्पणी

सामाजिक सशक्तीकरण महिला सशक्तीकरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। समाज में महिलाओं की स्थिति और महिलाओं के प्रति समाज की अवधारणा को बदलने के लिए सामाजिक सशक्तीकरण की दिशा में कदम उठाने होंगे। इसके लिए सर्वप्रथम अभावग्रस्त वर्गों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार करने की आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षा में प्रोत्साहन देने के लिए निःशुल्क शिक्षा, निःशुल्क पुस्तकें, मिड–डे मील, विभिन्न छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त कस्तूरबा गांधी विद्यालय, नवोदय विद्यालयों की स्थापना भी वंचित वर्गों की शिक्षा में भागीदारी बढ़ाने के लिए की गई।

विद्यालय की समाप्ति के बाद आगे की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए एवं अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए छात्रवृत्तियों में इजाफा किया गया है। हॉस्टल सुविधाओं को बढ़ाया गया है ताकि अपने घर से दूर पढ़ने वाले छात्र पूरा ध्यान अपनी शिक्षा पर लगा सकें।

इसके अलावा हमारे भारत के संविधान में भी वंचित तबकों के सशक्तीकरण के लिए शोषण और सामाजिक अन्याय से सुरक्षा के प्रावधान है। इसके अतिरिक्त महिलाओं में सशक्तीकरण के लिए रोजगार, तकनीकी कौशलों के विकास के लिए महिलाओं एवं बालिकाओं की शिक्षा का सार्वभौमिकरण, निरक्षरता उन्मूलन एवं लैंगिक संवेदनाओं की दिशा में कदम उठाए जा रहे हैं ताकि शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सके और शिक्षा को जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया बनाया जा सके।

महिला सशक्तीकरण के लिए दलित महिलाओं पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि दलित महिलाएं सामाजिक रूप से पिछड़ी हुई हैं। यह वर्ग सर्वाधिक प्रताड़ित है। इनको वर्ग, जाति, लिंग तथा संस्कृति के स्तर पर घर, गांव एवं अपने समाज में भी प्रताड़ित होती है। ऐसे में इनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान देकर इनका सशक्तीकरण किया जा सकता है। एक शिक्षित महिला ही अपना व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास कर सकती है।

महिलाओं के स्वास्थ्य को विशेष ध्यान में रखने की आवश्यकता है। इसके लिए विभिन्न स्वास्थ्य योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है। महिलाओं एवं लड़कियों की विशेष स्वास्थ्य आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

इसके साथ ही महिला सशक्तीकरण के लिए महिलाओं को हर प्रकार की हिंसा एवं शारीरिक शोषण से बचना होगा। संवैधानिक प्रावधानों एवं कानून के साथ–साथ बहुत सारे गैर सरकारी संगठन भी महिलाओं के साथ होने वाली शारीरिक एवं मानसिक हिंसा के उन्मूलन के लिए कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार सामाजिक सशक्तीकरण के लिए सरकार प्रयास कर रही है परंतु महिलाओं का सामाजिक सशक्तीकरण तब तक असंभव है जब तक समाज की मानसिकता में उनके प्रति परिवर्तन नहीं आता। इसमें शिक्षा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

2. आर्थिक सशक्तीकरण

सशक्तीकरण का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण मापदंड है आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना। आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने के लिए रोजगार और आय के साधन पैदा करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इसके लिए विभिन्न वित्तीय संगठनों की स्थापना

की गई है। साथ ही गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली महिलाओं की संख्या को कम करने के लिए कई ऐसी योजनाओं का प्रारम्भ किया गया है जो विशेष रूप से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करें। कृषि एवं उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं के प्रयास को पहचान कर उनको आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है। विभिन्न व्यवसायों में उनकी भागीदारी बढ़ाने के लिए उनके लिए प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जा रही है।

टिप्पणी

महिलाओं की कार्यक्षेत्र में भागीदारी बढ़ाने के लिए और उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए कार्यस्थल का वातावरण उनके लिए सहायक होना चाहिए। इसके लिए वहां पर उनके बच्चों की देख–रेख की सुविधा, क्रेच तथा वृद्ध और विकलांगों के लिए विशेष व्यवस्था होनी चाहिए।

3. राजनीतिक सशक्तीकरण

महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण उनके सम्पूर्ण सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है। हालांकि भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही महिलाओं को वोट डालने का एवं चुनाव लड़ने का अधिकार स्वतः ही प्राप्त है। इस प्रकार वे सरकार के हर स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग ले सकती हैं। परंतु यह एक विडम्बना है कि उनके पास निर्णय लेने का अधिकार होते हुए भी निर्णय लेने की स्वतन्त्रता नहीं है। राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी होना महिलाओं की समाज में समानता एवं उनको अधिकार दिलाने के लिए बेहद आवश्यक है। महिलाओं के लिए लोकसभा और विधानसभा में भी सीटों के 33 प्रतिशत आरक्षण के लिए विधेयक कब से विचारधीन है परंतु इसको प्राथमिकता नहीं दी गई।

यदि हम सशक्तीकरण की अवधारणा को व्यापक दृष्टि से देखें तो इसका समन्वय तब मुश्किल हो जाता है जब प्रत्येक राष्ट्र अपनी एक अलग स्त्री प्रथा, स्त्री कानून, स्त्री रूढ़िवादिता, हर स्त्री के लिए अलग आचरण, संस्कार एवं बंधन रखता है। भारत जैसे बहु–सांस्कृतिक देश में अलग–अलग स्थानों पर स्त्रियों के लिए अलग–अलग प्रथाएं प्रचलित हैं। ऐसे में सशक्तीकरण को कानूनी प्रक्रिया में बांधना मुश्किल ही नहीं असंभव प्रतीत होने लगता है।

महिला सशक्तीकरण के लिए महिलाओं ने स्वयं कई आंदोलन किए एवं सरकार ने समय–समय पर नीतियों एवं योजनाओं के माध्यम से सशक्तीकरण के नारे को साकार करने का प्रयास किया। सही मायने में महिलाएं यदि अपना सशक्तीकरण चाहती हैं तो उनको शैक्षिक योग्यता प्राप्त करके अपनी सोच, निर्णय लेने की क्षमता एवं अपनी विभिन्न भूमिकाओं में तालमेल रखकर सशक्तीकरण की दिशा में स्वयं पहला कदम उठाना होगा और सरकारों को भी रास्ता दिखाना होगा। महिलाओं को रोजगार के क्षेत्र में शामिल किया जाए। आत्मनिर्भरता को महिलाएं अपने सम्पूर्ण बौद्धिक एवं सामाजिक विकास के रूप में देखती है।

प्रसिद्ध नारीवादी कमला भसीन महिला सशक्तीकरण के लिए निम्नलिखित सुझाव देती हैं–

- महिलाओं के योगदान को समाज में जाहिर करना, यानी यह दर्शाना कि महिलाएं बच्चों को जन्म देने और घर–गृहस्थी संभालने के साथ–साथ किसान, श्रमिक, कारीगर, व्यवसायी आदि भी हैं, वे सदैव उत्पादन में लगी रहती हैं और

जीडीपी में उनका योगदान हमेशा ज्यादा रहा है। वे जीवन की उत्पादक, प्राकृतिक संसाधनों की प्रबन्धक आदि हैं।

- महिलाओं और समाज को, महिलाओं में पहले मौजूद रही और अब तक मौजूद विशेषकर कृषि, स्वास्थ्य, हस्तशिल्प आदि जैसे क्षेत्रों के बारे में जानकारी, क्षमता और कौशलों की पहचान कराना।
- महिलाओं को आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास प्रदान करने वाला सामाजिक वातावरण तैयार करना।
- महिलाओं और लड़कियों को उनके पूरे सामर्थ्य का एहसास कराने के अवसर उपलब्ध कराना और उन्हें कुछ गिनी–चुनी परंपरागत भूमिकाओं और व्यवसायों में धकेलने की जगह और विकल्प प्रदान करना। उन्हें ऐसी शिक्षा प्रदान करना,जो उन्हें घरेलू बनाने की जगह सशक्त बनाए।
- महिलाओं को अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने में सक्षम बनाना,वे कब और किससे शादी करेंगी, क्या वे बच्चों को जन्म देंगी और कब देंगी, वे क्या पढ़ेंगी और कब पढ़ेंगी। परिवार, समुदाय और राष्ट्रीय मामलों पर भी निर्णय लेना। सभी स्तरों पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाना।
- महिलाओं और लड़कियों की वास्तविक आवश्यकताओं, परिवार के भीतर और बाहर उनके दर्जे, उनके अधिकारों और उत्तरदायित्वों के बारे में महिलाओं और पुरुषों के बीच जागरूकता उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करना।
- महिलाओं की भोजन, कपड़े और आश्रय जैसी बुनियादी जरूरतें और स्वास्थ्य एवं सुरक्षा संबंधी विशेष जरूरतें पूरी करने के लिए उनको सुविधाएं और संसाधन उपलब्ध कराना।
- महिलाओं को उत्पादन के साधनों तक पहुंच और नियंत्रण, संपत्ति और अन्य संसाधनों तथा आमदनी पर नियंत्रण प्राप्त करने में सहायता करना।

टिप्पणी

महिला सशक्तीकरण में शिक्षा की भूमिका

महिलाओं के सशक्तीकरण में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में माना जा सकता है। परंतु शिक्षा की विषय–वस्तु और प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो महिलाओं के पक्ष में हो। महिलाओं को शिक्षित बनाने, जानकारी एवं ज्ञान देने के लिए जो भी प्रयास किए जा रहे हैं उनको और अधिक मजबूत बनाने की आवश्यकता है। क्योंकि ये शिक्षा उनको पितृसत्तात्मक ज्ञान, नियम, मूल्यों, व्यवहार एवं पद्धतियों को चुनौती देने में मदद करेगी। उनकी शिक्षा ऐसी हो जो केवल शब्दों को ही पढ़ने और समझने में मदद न करे अपितु दुनिया को भी पढ़ने,समझने एवं नियंत्रित करने में सहायता करे। शिक्षा महिलाओं को तेजी से बदलती हुई विश्व की वास्तविकताओं को समझने के लिए आवश्यक विश्लेषणात्मक कौशल हासिल करने में मदद करती है जो उन्हें अपमानजनक और अमानवीय स्थितियों का विरोध करने का विश्वास एवं ताकत प्रदान करती है। महिलाओं की साक्षरता उनकी जागृति का केंद्र बनकर उनको सशक्त करने में मदद करेगी। इससे वह अपने जीवन पर अधिक नियंत्रण रख सकेंगी। शिक्षा महिलाओं को

चुप्पी तोड़ने में भी सहायक होगी। इसके लिए स्कूल एवं कक्षाओं में ऐसा वातावरण बनाया जाना चाहिए जो महिलाओं को अधिक से अधिक आजादी दे सके।

महिलाओं के सशक्तीकरण के साथ–साथ मानवीय मूल्यों का भी सशक्तीकरण आवश्यक है। तभी हमारे आस–पास समानता, न्याय एवं शांति होगी। महिलाओं का सशक्तीकरण केवल तभी त्वरित गति से संभव हो सकेगा, जब पुरुष इस बात को समझेंगे कि महिलाओं का सशक्त होना उनके लिए भी अच्छा और परिवारों एवं राष्ट्रों के लिए भी अच्छा होगा। पुरुषों को भी इस दिशा में प्रयत्न करने होंगे।

टिप्पणी

लैंगिक अनुपात

लिंग अनुपात (प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या) महिलाओं के प्रति समाज के नजरिए और लैंगिकता तथा विकास के बारे में सामाजिक विभाजकों के बदलते पहलुओं का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है। घटते लिंग अनुपात की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। बल्कि कुछ राज्यों में तो इसने भयावह रूप ले लिया है। इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय मंचों और संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा चिंता प्रकट की जाती रही है। शोध अध्ययनों ने इस समस्या के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। इन अध्ययनों से यह पता चला है कि स्थायी पितृसत्तात्मक मानदंडों एवं मानसिकता के माहौल में सहायता प्राप्त प्रजनन संबंधी तकनीकों एवं कार्यप्रणाली में उन्नति की वजह से इस तरह के जन्म–पूर्व लिंग चयन की संभावना ज्यादा हो गई है और बढ़ती ही जा रही है।

पिछले दशकों में लिंग अनुपात तेजी से घटा है। जहां 1901 में यह 972 था 1991 में यह घटकर 927 रह गया। इसके बाद लगातार वृद्धि दर्ज करते हुए यह अनुपात 2011 में 948 हो गया। 1991–2011 के दौरान शिशु लिंग अनुपात (0–6 वर्ष के आयु वर्ग में प्रति हजार लड़कों पर लड़कियों की संख्या) के आंकड़े यह बताते हैं कि पूरे उत्तर और पश्चिम क्षेत्र में यह खाई 2011 में और अधिक गहरी और चौड़ी हुई है जबकि 2011 में केवल हरियणा, पंजाब, दिल्ली और गुजरात के कुछ क्षेत्रों में ही शिशु लिंग अनुपात बहुत कम था।

जेंडर पूर्वाग्रह पर आधारित लिंग चयन की प्रथा की वजह से जन्म के समय गायब लड़कियों की संख्या 2007–2012 के दौरान 3.3 लाख प्रतिवर्ष थी। इसके पहले के 6 वर्षों के 5.8 लाख प्रतिवर्ष के औसत की तुलना में जन्म के समय लड़कियों की संख्या में कमी दिखती है।

भारत में बाल लिंगानुपात 914 प्रति 1000 है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक 1000 लड़कों की तुलना में 914 लड़कियां हैं अर्थात 86 लड़कियां कम हैं। ग्रामीण इलाकों में तो यह स्थिति और भी खराब है। कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध आज भी कम नहीं हैं। जो लड़कियां इस प्रकोप से बच जाती हैं उनमें 5 से 9 वर्ष तक के आयु वर्ग की 50 प्रतिशत लड़कियां कुपोषण का शिकार होती हैं। स्वास्थ्य संबंधी बड़ी चिंता यह है कि लगभग आधी लड़कियां रक्ताल्पता (एनीमिया) और अंडरवेट की शिकार हैं। लड़कियों के जीवन में आउटडोर गतिविधियों और स्वस्थ्य जीवनशैली को बहुत कम महत्व दिया जाता है और उनमें से अधिकतर घरों तक ही सीमित रहती हैं और सबसे खराब बात यह है कि 4 वर्ष की होने से पहले ही 4 में से 1 लड़की यौन शोषण का शिकार होती है। लाखों लड़कियां कुपोषण, निरक्षरता, कमजोरी एवं प्रताड़ना का शिकार हैं।

विद्यालयों में कई बार टायलेट की सुविधा भी नहीं होती। स्वच्छता एवं रजो स्वास्थ्य की स्थिति तो और भी खराब है। मासिक धर्म हमारे समाज में शर्म का विषय है। इसकी चर्चा को समाज में वर्जित माना जाता है। लड़कियों का विवाह छोटी उम्र में कर दिया जाता है। ऐसी कमजोर, अशिक्षित एवं अशक्त लड़की, कमजोर एवं खराब सेहत वाले बच्चे को जन्म देती है और इस प्रकार गरीबी, खराब सेहत एवं भेदभाव का चक्र चलता रहता है।

टिप्पणी

अब प्रश्न ये उठता है कि इस प्रकार की लैंगिक भेदभाव वाली मानसिकता कैसे पनपती है? दरअसल यह समाजीकरण की प्रक्रिया के कारण होता है जिससे हम गुजरते हैं। इसके लिए समाज में जागरूकता लाना बड़ा जरूरी है। सरकार की तरफ से विभिन्न योजनाओं के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके लिए 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' अभियान की शुरुआत जोर–शोर से की गई है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना और इस मुद्दे को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाना है। इसके अतिरिक्त उन जिलों की पहचान की जाएगी जहां लिंग अनुपात काफी निम्न है और वहां के लिए लिंग अनुपात बढ़ाने के लिए कुछ कार्यक्रम बनाए जाएंगे। इसके अलावा इस योजना के तहत सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्थानीय महिला संगठनों/युवाओं की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त अन्य सरकारी योजनाएं भी महिला स्वास्थ्य क्षेत्र के सशक्तीकरण में अपनी भूमिका निभाती हैं। इनमें कुछ हैं– सुकन्या समृद्धि योजना, समेकित बाल विकास कार्यक्रम, बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, सबला किशोरावस्था बालिकाओं के लिए योजनाएं आदि। वास्तव में महिलाओं का स्वास्थ्य उनके सम्पूर्ण सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक स्वस्थ महिला समाज के एक उत्पादक के रूप में बढ़ती है। वह अपनी आय से न केवल अपने परिवार की बल्कि अपनी स्वयं की भी मदद कर सकती है।

1.3.4 लैंगिक असमानताएं और उनके अन्य रूप

भारतीय समाज की भिन्नताओं के कारण समाज द्वारा आरोपित सामाजिक लिंगभेद एवं संबंध न तो स्थायी हैं और न ही ये सार्वभौमिक हैं। ये समय, स्थान एवं संस्कृति में बदलाव के साथ–साथ बदलते रहते हैं। साथ ही इन पर सांस्कृतिक पर्यावरणीय, आर्थिक एवं राजनीतिक घटकों का भी प्रभाव पड़ता है। समाजीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत बच्चे जन्म से ही अपने लिंग के बारे में सीखने लगते हैं। वे ये भी सीखते हैं कि दूसरों की दृष्टि में स्त्री या पुरुष दिखने के लिए उनको किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। सारी जिंदगी वे माता–पिता, शिक्षकों एवं बुजुर्गों से यही सीखते रहते हैं और समाजीकरण की प्रक्रिया चलती रहती है। इस अवधारणा को लैंगिक अदायगी (Gender Performitivity) कहा जाता है। लैंगिक अदायगी एक महत्वपूर्ण विचार है। इस अवधारणा में व्यक्ति को ऐसे पात्रों के रूप में देखा जाता है जो कुछ विशेष क्रियाएं करते हैं जिससे उनकी पहचान निर्धारित की जाती है। इन क्रियाओं में सामाजिक कायदे–कानून एवं आदतों पर आधारित उनके रोज के किए जाने वाले व्यवहार शामिल हैं। लैंगिक अदायगी के इस सिद्धांत को प्रसिद्ध नारीवादी 'जूडिथ बटलर' ने दिया था। उनके अनुसार लैंगिकता इस बात की अभिव्यक्ति नहीं है कि हम क्या हैं? बल्कि इस

बात की अभिव्यक्ति है कि हम क्या करते हैं? और ये क्या करना ही बचपन से हमें मर्द एवं औरत के सांचों में डाल देता है।

रुथ हार्टले के अनुसार लिंग पर आधारित समाजीकरण चार प्रक्रियाओं द्वारा होता है–

टिप्पणी

सामान्यतः इन चार प्रक्रियाओं के आधार पर लिंग भेद किया जाता है जो लैंगिक समाजीकरण का कारण होता है।

1. अक्सर यह देखा जाता है कि लड़कों का प्रारम्भ से ही सशक्त एवं स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पालन–पोषण किया जाता है। इसके विपरीत कुछ संस्कृतियों में छोटी लड़की के कपड़ों, बालों एवं साज–सज्जा के ऊपर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। उसे यह बार–बार बताया जाता है कि वह कितनी सुंदर है। बचपन के इन शारीरिक अनुभवों का बच्चों के मस्तिष्क पर गहरा असर पड़ता है। वे अपने आप को एक खास ढांचे में रखकर देखने लगते हैं जैसे सशक्त, कोमल, सुंदर आदि।
2. लड़के एवं लड़कियों का ध्यान किसी विशेष चीज की तरफ आकर्षित किया जाता है। उदाहरण के लिए लड़कियों को खेलने के लिए गुड़िया, किचन सेट, टेडी बीयर आदि दिए जाते हैं जबकि लड़कों को खेलने के लिए बंदूक, कार, हवाई जहाज आदि जैसे खिलौने दिए जाते हैं। बहुत से निर्धन घरों में लड़कियां इन खिलौनों से नहीं खेलतीं बल्कि बचपन से ही वे असली बर्तन साफ करती हैं, घर की सफाई करती हैं एवं छोटे भाई–बहनों का ध्यान रखती हैं जबकि वे खुद बच्ची होती हैं। इन घरों में ही लड़के या तो स्कूल जाते हैं या फिर काम पर जाते हैं। इस तरह लड़के एवं लड़कियों के साथ बिल्कुल अलग व्यवहार होता है इसलिए इनकी रुचियां एक खास दिशा में धाराबद्ध होने लगती हैं। जब वे बड़े होते हैं तो उनकी योग्यताएं एवं सपने भी अलग–अलग दिशा में बढ़ते हैं। कुछ विशेष चीजों से बचपन में बनी उनकी पहचान, भविष्य में उनके चुनाव पर भी असर डालती है।
3. कई बार परिवार के सदस्यों, अध्यापकों, मित्रों द्वारा लड़के एवं लड़कियों के लिए भिन्न–भिन्न सम्बोधन होते हैं जो उनके लिए उस प्रकार की छवि गढ़ देते हैं और फिर इसका उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए लड़कियों को कहा जाता है कि बिटिया कितनी प्यारी लग रही है एवं लड़कों से कहा जाता है तुम हट्टे–कट्टे जवान हो।
4. लड़के एवं लड़कियां पैदा होते ही अपने चारों ओर पारंपरिक पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की भूमिकाओं को एवं स्त्रियोचित तथा पुरुषोचित गतिविधियां होते हुए देखते हैं। लड़कियां अपनी मां के साथ घर के कार्यों में उनकी मदद करती हैं जबकि लड़के अपने पिता के साथ बाहर के कार्यों में मदद करते हैं। अधिकतर समुदायों में लड़के एवं लड़कियों की परवरिश अलग तरह से की जाती है। वहां लड़के एवं लड़कियों के लिए एक ही वातावरण में बहुत अंतर होता है। वे सारी गतिविधियां देखते हैं और इस प्रकार उनके समाजीकरण की प्रक्रिया चलती रहती है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्री एवं पुरुष में गंभीर भेदभाव एवं असमानता है। इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री एवं पुरुष दोनों ही पीड़ित हैं। परिवार

ही सबसे पहली धुरी है जहां लैंगिक असमानता जन्म लेती है। लड़का एवं लड़की के लिंग अनुपात हमें बताते हैं कि भारत में लड़के के जन्म को वरीयता दी जाती है और पितृवंशात्मकता पर जोर दिया जाता है। दोनों की शिक्षा में भी अंतर पाया जाता है। लड़कों को अधिक बेहतर अवसर प्रदान करवाए जाते हैं जबकि लड़कियों की शिक्षा को लेकर कोई प्राथमिकता नहीं दिखाई देती है। यदि स्कूल दूर हो तो छुड़वा लिया जाता है। यदि परिवार निर्धन है तो लड़की की शिक्षा सबसे पहले बलि चढ़ाई जाती है।

टिप्पणी

रोजगार की बात करें तो स्त्री एवं पुरुष रोजगार में काफी अंतर नजर आता है। यह अंतर दो तरीकों से देखा जा सकता है– पहला तो कार्य की प्रकृति में अंतर। महिलाओं को कुछ विशेष कार्य करने की अनुमति नहीं है। इसके विपरीत कुछ ऐसे कार्य हैं जो केवल महिलाओं के लिए ही उचित समझे जाते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण अंतर है– वेतन का। अक्सर समान कार्य के लिए भी महिला एवं पुरुष के वेतन में भेदभाव किया जाता है।

भारत में लैंगिक असमानता के कारण और प्रकार

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता का मूल कारण इसकी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिल्विया बाल्वे के अनुसार "पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना की ऐसी प्रक्रिया और व्यवस्था है, जिसमें आदमी औरत पर अपना प्रभुत्व जमाता है, उसका दमन करता है, और उसका शोषण करता है।" महिलाओं का शोषण भारतीय समाज की सदियों पुरानी सांस्कृतिक घटना है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने अपनी वैधता और स्वीकृति हमारे धार्मिक विश्वासों, चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम, या किसी अन्य धर्म से ही क्यों न हो, से प्राप्त की है।

उदाहरण के लिए प्राचीन भारतीय हिन्दू ग्रंथ 'मनु स्मृति' के निर्माता मनु के अनुसार "ऐसा माना जाता है कि औरत को अपने बाल्यकाल में पिता के अधीन, शादी के बाद पति के अधीन और अपनी वृद्धावस्था या विधवा होने पर पुत्र के अधीन रहना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में उसे खुद को स्वतंत्र रहने की अनुमति नहीं है।"

मुसलमानों में भी समान स्थिति है और वहां भी भेदभाव या परतंत्रता के लिए मंजूरी, धार्मिक ग्रन्थों और इस्लामी परम्पराओं द्वारा ही प्रदान की जाती है। इसी प्रकार अन्य धार्मिक मान्यताओं में भी महिलाओं के साथ एक ही प्रकार के या अलग तरीके से भेदभाव हो रहे हैं।

महिलाओं के समाज में निचला स्तर होने के कुछ कारणों में से एक कारण अत्याधिक गरीबी एवं उनका शिक्षाविहीन होना है। गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी महिलाएं कम वेतन पर घरेलू कार्य करने, संगठित वेश्यावृति का कार्य करने या प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर होती हैं। महिलाओं को न केवल असमान वेतन या अधिक कार्य करवाया जाता है बल्कि उनके लिए ऐसी नौकरियां पेश की जाती हैं जिनमें कम कौशल की जरूरत पड़ती है और जिनका वेतनमान कम होता है। यह लिंग निर्धारण के आधार पर असमानता का एक प्रमुख रूप बन गया है।

लड़की को शिक्षित करना अभी एक बुरा निवेश माना जाता है क्योंकि एक दिन उसकी शादी होगी और उसको अपने पिता का घर छोड़ कर दूसरे घर जाना पड़ेगा। इसलिए अच्छी शिक्षा के अभाव में वर्तमान में नौकरी–कौशल की शर्तों को वे पूरा नहीं

कर पातीं। वहीं प्रत्येक वर्ष हाईस्कूल और इंटरमीडिएट में लड़कियों का परिणाम, लड़कों से अच्छा रहता है। ये प्रदर्शित करता है कि 12वीं कक्षा के बाद माता–पिता लड़कियों की शिक्षा पर ज्यादा खर्च नहीं करते जिससे कि वे नौकरी प्राप्त करने के क्षेत्र में पिछड़ रही हैं। सिर्फ शिक्षा ही नहीं, परिवार, खाने की आदतों के मामले में भी लड़कों को लड़कियों से ज्यादा तवज्जो दी जाती है।

टिप्पणी

समाज में लैंगिक असमानताओं को दूर करने के लिए हमें समानता पर जोर देना होगा। विभिन्न नीतियों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ानी होगी ताकि वे महिलाओं की बात को रख सकें। क़ानूनों में सुधार करना होगा। निर्णयों में महिलाओं को शामिल करना होगा। उनके लिए शिक्षा, रोजगार आदि के अवसर बढ़ाए जाएंगे। सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा का प्रयोग किया जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

3. महिला–पुरुष भेदभाव का क्या कारण है?

   (क) शैक्षिक पिछड़ापन (ख) जाति व्यवस्था

   (ग) धार्मिक मान्यताएं (घ) उपरोक्त सभी

4. भारतीय समाज के किस वर्ग में धन कमाकर लाने का उत्तरदायित्व पुरुषों का होता है?

   (क) निम्न वर्ग (ख) मध्यम वर्ग

   (ग) उच्च वर्ग (घ) इनमें से कोई नहीं

1.4 लैंगिक अध्ययन : प्रकृति परिवर्तन

लैंगिक अध्ययन, सामाजिक अर्थ और उसके भीतर लिंगों के अभ्यावेदन का क्षेत्र है। लिंग द्वारा हम परिवार के भीतर कई मानवीय रिश्तों के व्यवहार के आकार को महसूस करते हैं। लिंग भूमिकाओं के विकल्प को विश्वविद्यालयों और कार्यस्थलों में स्थापित किए जाने के लिए हम उसके अनुरूप प्रदर्शन करते हैं। महिलाओं और पुरुषों की लैंगिक छवि मीडिया (विज्ञापन, फिल्मों, साहित्य, पत्रिकाओं, समाचार–पत्रों, टेलीविजन कार्यक्रमों, वीडियो गेम, वेबसाइटों आदि) से प्रभावित होती है। इस प्रकार के निरूपण और अनुभवों को अकसर समझदार बनाए जाने के लिए इन्हें देशीयकृत किया जा रहा है। हालांकि, वास्तव में ये सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और कानूनी संस्थानों और विशिष्टतः ज्ञान की विभिन्न प्रणालियों के द्वारा सावधानीपूर्वक बनाए जाते हैं। इसके अलावा ये लिंग, धर्म, जाति और क्षेत्र से उभरती शक्तियों के पदानुक्रम में डूबे रहते हैं। एक ओर तो यह पाठ्यक्रम लिंग के प्रदर्शन और आकार अभ्यावेदन के प्रयास को समझने के लिए संरचनाओं को आगे बढ़ाता है, तो दूसरी ओर यह पाठ्यक्रम महिलाओं की लैंगिक प्रक्रियाओं के बारे में जागरूकता उत्पन्न करता है और परिवर्तन करने के तरीकों का पता लगाता है। यह विषय निम्नलिखित विस्तार से बना है–

- **पुरुषत्व और नारीत्व** : जैविक नियतिवाद से लेकर सेक्स, लिंग–भेद और यौन अंतर को बतलाना।

- **परिवार की तलाश** : लिंग समाजीकरण सिद्धांत, सार्वजनिक–निजी क्रिया का भुगतान और बकाया; राजनीति के रूप में व्यक्ति या व्यक्तिगत नियम।
- **लिंग की शिक्षा** : महिला अध्ययन का इतिहास, ज्ञान, महत्व और अनुसंधान करने के लिए संपर्क जोड़ने की शक्ति।

टिप्पणी

भारत में इस तरह के पाठ्यक्रम का उद्देश्य, देश के विकास के साथ ही हर दिन के अनुभवों से लिंग की भूमिका का अध्ययन करना है। यह महिला सशक्तीकरण के लिए सिंहावलोकन का भी प्रयास करता है। यह महिलाओं के आंदोलनों, रणनीतियों और महिलाओं के आंदोलनों से पहले महिलाओं की चुनौतियों और विचारों में भी सहायता करता है।

लैंगिक अध्ययन के प्रकार

लैंगिक अध्ययन के निम्न प्रकर हैं–

- **उदार लैंगिक अध्ययन** : यह मुख्य रूप से व्यक्तिगत अधिकारों पर ध्यान केंद्रित करता है और स्वायत्तता पर जोर देने के साथ पुरुषों और महिलाओं के बीच मतभेद कम करने के लिए अवसर की समानता पर स्थित है। यह भी उन प्रचार रणनीतियों पर जोर देता है, जो महिलाओं को पुरुषों द्वारा प्राप्त किए गए व्यक्तिगत अधिकारों के विस्तारण की बाधाओं को तोड़ता है।
- **सामाजिक लैंगिक अध्ययन** : इसका मुख्य केंद्र दमनकारी सामाजिक संरचना के निर्माण की स्थिति पर होता है। विशेष रूप से उन सामाजिक संबंधों के अध्ययन के ऊपर जिसमें सुधार समुदायों और संस्थाओं के प्रयास के साथ व्यक्तिगत अधिकारों की तुलना में अधिकतम जिम्मेदारियों पर जोर दिया जाता है।
- **सांस्कृतिक लैंगिक अध्ययन** : इसका मुख्य केंद्र पुरुषों और महिलाओं की आवाजों के सकारात्मक मूल्यों के बीच मतभेदों को कम करने पर होता है। इन्हें कानूनी प्रणाली में सम्मिलित करने पर भी जोर दिया गया है। इसके अध्ययन में महिलाओं की संस्कृति, विशेष रूप से मातृमूल्यों के पुनर्मूल्यांकन पर चर्चा होती है।
- **कट्टरपंथी लैंगिक अध्ययन** : इसके अध्ययन में पुरुषों और महिलाओं के बीच सत्ता की असमानता और अंतर पर जोर दिया जाता है।
- **विविधता लैंगिक अध्ययन** : इसमें महिलाओं के बीच अंतर जिसमें जाति, धर्म और वर्ग भी शामिल हैं। यह महिलाओं के विभिन्न समूहों के भीतर गठबंधन के निर्माण पर जोर देता है और सुधार के अंतर्राष्ट्रीय और वैश्विक कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करता है।

भारत और अन्य विकासशील देशों में वर्तमान आयात तथा निर्यात व्यापार के साथ हुए औद्योगीकरण से महिलाओं के कम मजदूरी वाले रोजगार के हालात में सुधार हुआ है। विशेष रूप से निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों में लिंग मुद्दे के अध्ययन से जुड़े शोध तथा सिद्धांतों ने अलगाववाद से परे हट कर लिंग को एक सामाजिक मुद्दा बनाकर उसे केंद्रीय विषय बनाया है।

अब समय आ गया है कि लैंगिक अध्ययन की आवश्यकताओं की पहचान की जाए, जिससे लिंग झुकाव को गंभीरता से लिया जा सके। यह एक ऐसा क्षेत्र भी है,

टिप्पणी

जिसे प्रायः शैक्षणिक विषयों के साथ समाज के अन्य परिप्रेक्ष्यों के भीतर लागू किया गया है। मान्यताएं समाज के अत्यन्त शक्तिशाली लोगों द्वारा लागू की जाती हैं और यह प्रायः कम शक्तिशाली लोगों की कीमत पर होती हैं। लैंगिक अध्ययन असन्तुलनों के सुधार का महत्वपूर्ण साधन है। यह उन मानदंडों एवं आकारों का अध्ययन करता है, जोकि पुरुषत्व या नारीत्व से जुड़े व्यवहार कहलाते हैं। यह पारम्परिक आकारों का अध्ययन करता है, जैसेः लड़कियों तथा लड़कों में पहनाने का अंतर। आभूषण, स्कर्ट, साड़ियां तथा सलवार कुर्तियों को स्त्री से संबंधित कपड़ा माना जाता है, जबकि पैंट, शर्ट, शेरवानी को पुरुष से संबंधित कपड़ा माना जाता है। कुछ और भी अंतर है, जैसे पुरुषों की तुलना में औरतों के कपड़े अधिक रंगों से भरे होते हैं और चमचमाते तथा चमकीली चीजों से सजाए गए होते हैं।

नारीवाद

नारीवादी समाजशास्त्र महिलाओं के पक्ष में है और पुरुषों के उस प्रभुत्व को चुनौती तथा टक्कर देता है, जोकि महिलाओं को पुरुषों से असमानता को संस्थागत करती थी। नारीवादी सिद्धांत उन कारणों का विश्लेषण करते हैं, जोकि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भेदभाव को अवतरित करते हैं।

अधिकतर नारीवादियों ने पितृसत्तात्मक प्रणाली की आलोचना करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। महिलाओं की तुलना में पुरुषों के पास समाज के संसाधनों का लाभ उठाने के बेहतर अवसर थे, इसीलिए पुरुष महिलाओं पर शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम थे। व्यक्तिगत स्तर के साथ बड़े पैमाने पर भी लिंगों के बीच अतरंग संबंध हमेशा से ही सत्तात्मक रिश्ते थे (मिल्लेट्ट, 1972/1970)। कुछ व्यक्तियों ने बदलाव करके मदद भी की, लेकिन यह महिलाओं की मुक्ति तबतक नहीं ला सकता था, जब तक समाज की क्रियाओं में बदलाव नहीं लाया जाता।

1960 के दशक के आखिरी तथा 1970 के शुरुआती वर्षों में नारीवादी आंदोलनों में कुछ नारीवादी समूहों या घटनाओं में पुरुष भी शामिल थे (वेलेहन, 1955), लेकिन वे सम्मेलनों और समूहों को एकाधिकृत करने की प्रवृति के कारण निराश हो गए और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुरुषों के बिना और भी बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है (फिलिप्स, 1991–98)। इसके समर्थकों ने नारीवादी आंदोलनों को समर्थन देना जारी रखा, लेकिन उन्होंने इस तथ्य का परीक्षण किया, जिसमें वे अपना समूह बनाकर महिलाओं की सहायता के लिए और बेहतर रास्तों की तलाश करते थे (मेस्सनर, 1997) और वे नारीवादी सम्मेलनों में छुपा समर्थन, जैसे बच्चों की देखभाल करते थे।

नारीवाद की पारिभाषिक विशेषता का परिदृश्य इस बात पर था कि महिलाओं की अधीनता पर सवाल उठाया जाना चाहिए, तथा इसे चुनौती दी जानी चाहिए। इसमें महिलाओं की वर्तमान तथा भूतपूर्व अवस्थाओं की महत्वपूर्ण जांच भी सम्मिलित थी। इसमें उन दमनकारी पितृसत्तात्मक विचारधाराओं को चुनौती देना भी शामिल था, जो महिलाओं की परतंत्रता को प्राकृतिक, सार्वभौमिक और अनिवार्य माने जाने के साथ उस ज्ञान की वकालत करते हैं जो विश्व को पुरुषों के नजरिए से चलाए जाने के लिए सार्वभौमिक बनाता है। यह आवश्यक है कि संसार में महिलाओं की स्थिति को देखा जाए, जिन्हें ज्ञान के उत्पादन से दूर रखा गया है। ऐसे नजरिये अधिक पर्याप्त ज्ञान प्रदान करेंगे, क्योंकि ये वर्तमान पितृसत्तात्मक ज्ञान के द्वारा नहीं पहचाने गए मुद्दों की

व्याख्या करेंगे, जोकि पुरुषों के द्वारा महिलाओं की अधीनता तथा उनके शोषण से संबंधित हैं।

नारीवाद की शुरुआत इस सोच के साथ होती है कि महिलाओं पर अत्याचार होता है और कई लोगों के लिए यह उत्पीड़न एक प्राथमिकता है। नारी आजादी के कार्य पुरुषों की शक्तियों द्वारा सीमित हैं, क्योंकि पुरुषों को महिलाओं की तुलना में अधिक आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक संसाधनों की प्राप्ति है और इस तथ्य को नहीं झुठलाया जा सकता है कि महिलाओं के बीच परतंत्रता और शोषण लिप्त है। जाति और लिंग एक साथ मुखर होकर काली महिलाओं के लिए एक पहचान बन जाती है। बहरहाल, देश की अर्थव्यवस्था और अन्य लोक संस्थान पर समाजशास्त्र का पारंपरिक जोर निजी–संस्थानों, जैसे परिवार और लोक तथा निजी क्षेत्रों में व्यक्तिगत रिश्तों के उत्पीड़न को अनदेखा करने के मुख्य स्रोत पर है।

टिप्पणी

नारीवाद इस बात में विश्वास रखता है कि महिलाओं और पुरुषों को समान रूप से देखना चाहिए तथा उन्हें समान अधिकार मिलने चाहिए। इस बात को कई पुरुषों तथा महिलाओं ने अपनाया है। यह पुरुषों पर अध्ययन से मिलता–जुलता है कि लिंग एक सामाजिक रूप से निर्मित अवधारणा है, जिसके महत्वपूर्ण परिणाम हम सभी के जीवन में देखने को मिलते हैं (क्रैग 1992)। समाजशास्त्री बेन ऐंगर (1993), के अनुसार, "पुरुष नारीवादी हो सकते हैं। पुरुषों और महिलाओं दोनों के पास लिंग असमानता के कारण तथा परिणाम को बेहतर समझ प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ है। पिछले तीन दशकों से, महिलाओं तथा पुरुषों को विशिष्ट रूप से प्रभावित कर रहे कारणों को समझने के लिए बहुत से संगठनों का निर्माण हुआ है, तथा इसमें लिंग समानता को बेहतर समझ पाने में लोगों की सहायता मिली है।"

नारीवादी सिद्धांत

नारीवादी सिद्धांत मानदंडों, भूमिकाओं, संस्थानों और कई भांति उम्मीदों की पहचान करने का प्रयास है, जो महिलाओं के व्यवहार की सीमाओं को रोकते हैं। इसके साथ यह भी दर्शाता है कि शक्तियों की कमियों के बावजूद भी महिलाएं व्यक्तिगत संचालन कैसे करती हैं (स्टीवर्ट, 1994)।

नारीवादी सिद्धांत अन्य सामाजिक सिद्धांतों से कुछ इस प्रकार से अलग है–

1. यह अंतर्अनुशासित समुदाय के द्वारा किए गए कार्य हैं, जिनमें समाजशास्त्रियों के साथ–साथ बहुत अन्य विषयों जैसे– मानवविज्ञान, जीवविज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास, कानून, दर्शन और राजनीतिशास्त्र के विद्वान भी शामिल हैं।
2. अन्य नारीवादी सिद्धांतकारों की तरह नारीवादी समाजशास्त्रियों ने भी अपने प्रयासों से मूल विषयों को विस्तार देने के लिए प्रयास किया है। यह मानवीय समाज में सामाजिक दुनिया को बदलने के इरादे के महत्वपूर्ण विकास की सोच पर केंद्रित है।
3. अधिकांश समाजशास्त्री नारीवादी सिद्धांत को अपने सामाजिक कार्य में सम्मिलित करने से हिचक रहे थे, क्योंकि वह सिद्धांत काफी नया तथा कट्टरपंथी था। वह इसलिए कि उसके बहुत से रचनाकार समाजशास्त्री ना होकर राजनीतिक कार्यकर्ता थे।

टिप्पणी

महिलाओं पर अध्ययन या नारीवादी अध्ययन ऐसे क्षेत्र हैं, जो प्रकृति से अंतःविषय हैं। इसे उस विषय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो महिलाओं के अनुभवों तथा दो लिंगों के बीच संबंधों की प्रकृति पर केंद्रित है। यह क्षेत्र महिलाओं या नारीवादियों के नजरिये से राजनीति, समाज, मीडिया तथा इतिहास की पड़ताल करता है।

अध्ययन का क्षेत्र, लिंग, जाति, वर्ग, लैंगिकता और अन्य सामाजिक असमानताओं के सामाजिक मानदंडों पर शोध और आकलन करता है। यह पितृसतात्मक मानदंडों की भूमिका की जांच महिलाओं की समाज में अधीनस्थ भूमिका को ध्यान में रखते हुए की जाती है। नीरा देसाई के अनुसार, "नारीवादी अध्ययन को महिलाओं के विकास के मंत्र के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए और साथ ही इस विषय का बहुमुखी विकास भी जरूरी है।" इस प्रकार, महिला अध्ययन को न केवल शोध व पढ़ाई के संदर्भ में समझना पड़ता है बल्कि कार्रवाई में भी। महिला अध्ययन के विद्वानों का मानना है कि सभी अनुसंधान प्रकृति में पितृसतात्मक हैं तथा इस प्रकार समाज की एक बेहतर तस्वीर प्राप्त करने के लिए शोध के रूप पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। वे महसूस करते हैं कि शोध न केवल छात्रवृत्ति से महिलाओं को हाशिए पर ला सकता है बल्कि शिक्षा में अध्ययन के सभी क्षेत्रों में पुरुष की बराबरी करने की दिशा में सक्षम हैं।

ऐतिहासिक रूप से, उदार नारीवाद महिलाओं और पुरुषों के लिए समान नागरिकता का अधिकार देने की वकालत करता है। कानून के द्वारा नारीवादी पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार देकर महिलाओं की रक्षा के लिए योजनाएं बनाई जा रही हैं। समानता की औपचारिकता ही केवल पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस कानून को पहचानने व लागू किए जाने की आवश्यकता है, जिससे महिलाओं के खिलाफ भेदभाव कम हो सके और महिलाओं को इस तरह के मातृत्व अवकाश तथा भुगतान के रूप में कार्यस्थल पर अधिकार प्रदान किया जा सके।

हालांकि 'महिलाओं का अध्ययन' शब्द, यूनाइटेड स्टेट्स में 1914 में इस्तेमाल किया गया था, नारीवाद की दूसरी लहर के कारण उत्पन्न राजनीतिक और सामाजिक विक्षोभ के जवाब में तथा छात्रों और अमेरिकी विश्वविद्यालयों में समान रूप से संकाय सदस्यों द्वारा सक्रियता के रूप में अध्ययन का क्षेत्र 1960 के दशक में स्थापित किया गया था। एक अकादमिक शिक्षण के रूप में महिला अध्ययन एफ्रो–अमेरिकन अध्ययनों पर ढला हुआ था जो संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकारों के आंदोलन के कारण 1950 ई. में उभरा था। शुरू में, पुस्तकों या महिलाओं के अध्ययन के लिए एक पाठ्यक्रम संरचना के रूप में कोई मार्गदर्शन नहीं था और इस प्रकार यह एक निर्वात में शुरू हुआ। 1969 ई. में, पहला मान्यताप्राप्त महिला अध्ययन पाठ्यक्रम कॉर्नेल विश्वविद्यालय में आयोजित किया गया था, हालांकि, यह एमोरी विश्वविद्यालय में 1990 में ही किया गया था, तथा महिला अध्ययन में पीएचडी प्रोग्राम को भी स्थापित किया गया था। बीसवीं सदी तक, महिला अध्ययन पाठ्यक्रम दुनिया भर के कई विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में उपलब्ध थे। नारीवाद विचारक कैरोलिन इलियट महिलाओं पर नई जानकारी के रूप में महिलाओं के अध्ययन की सामग्री चेतना के ऊपर उठाने और निजी अनुभवों को जानने और व्यक्तिगत और सामाजिक इतिहास को समझने को संक्षिप्त किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में, महिलाओं के अध्ययन के गठन के मुद्दे पर

आज भी विवाद जारी है। महिलाओं के अध्ययन केंद्र पर बहस की अवधारणा के आसपास यह भी है कि क्या यह लैंगिक अध्ययन, नारीवादी अध्ययन या महिला अध्ययन के नाम से जाना चाहिए? संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत, महिला अध्ययन की अवधारणा भारत में अच्छी तरह से स्थापित है। तथापि, महिलाओं के अध्ययन के गठन की सामग्री पर बहस की जाती है। भारतीय नारीवादी वीणा मजूमदार बताती हैं कि महिला अध्ययन सामाजिक वास्तविकता का और अधिक व्यापक और संतुलित व महत्वपूर्ण समझ है। उनका मानना है कि महिलाओं के अध्ययन के आवश्यक पहलुओं में निम्नलिखित शामिल हैं–

टिप्पणी

- सामाजिक प्रक्रिया के लिए महिलाओं का योगदान
- अपने स्वयं के जीवन के लिए महिलाओं की धारणा
- जड़ें और असमानता की संरचना जो हाशिए, अस्पष्टता और महिलाओं के बहिष्कार के दायरे, दृष्टिकोण और संस्थागत तथा वैचारिक ढांचे तथा सामाजिक क्रिया की ओर जाता है।

भारत में नारी अध्ययन उन समस्याओं के परिणामस्वरूप उपजा है जो भारतीय नारियों को अपने प्रतिदिन के जीवन में सामना करना पड़ता है। हालांकि भारत में महिलाओं का इतिहास के अनुसार दमन किया गया है। वे अन्याय के खिलाफ विरोध करने के लिए अपनी आवाज उठाने में सक्षम नहीं थीं। अजीब सामाजिक संरचना के कारण जो भारत में अस्तित्व में है, 19वीं सदी से महिलाओं के मुद्दों पर भारत में प्रकाश डाला जाने लगा था। उस समय, कई समाज सुधारकों ने सामाजिक बुराइयों जो समाज में खुलेतौर पर और कभी–कभी महिलाओं पर हिंसक अत्याचार के रूप में मौजूद थीं के बारे में पूछताछ करना शुरू कर दिया था। यह सामाजिक बुराइयां सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, शिक्षा के क्षेत्र में भेदभाव तथा साथ ही साथ विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध के रूप में शामिल थीं। ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार तथा कुछ पश्चिमी देशों से शिक्षित भारतीय समाज सुधारकों ने इन प्रथाओं को घृणित माना। हालांकि, भारत में महिलाओं के बारे में दमनकारी सोच रखने वाले लोगों का बहुमत था। इसके अलावा, इन सामाजिक बुराइयों को महिलाओं के लिए कई धार्मिक या सांस्कृतिक कर्तव्य माना गया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी और अन्य लोगों के नेतृत्व में जो सक्रिय रूप से महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया, कई महिलाएं अपने घरों से बाहर आईं न केवल आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए बल्कि सामाजिक अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करने के लिए भी। हालांकि, स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बावजूद कुछ कानूनी सुधार प्रगति में था, भारतीय समाज के सभी सामाजिक ढांचों में पुरुषों के प्रत्यक्ष प्रभुत्व के कारण भारत में महिलाओं के बहुमत के लिए किसी भी स्थिति में बदलाव नहीं किया गया।

नारीवादी आंदोलन की दूसरी लहर के कारण भारत में भी वैश्विक विक्षोभ अच्छी तरह से गूंजा। पूरी दुनिया में महिलाओं से संबंधित मुद्दों के बारे में एक जागृति की लहर उठ चुकी थी, और परिणामस्वरूप 1975 में मेक्सिको में महिलाओं पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन में हुआ। भारत में महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर गौर करने के लिए कई समितियों को निर्धारित किया गया। यह इस संदर्भ में था कि महिलाओं के अध्ययन 1975 में भारत में महिलाओं की स्थिति पर एक रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद एक विषय

के रूप में माना जाने लगा। शुरू में महिलाओं का अध्ययन महिलाओं की शिक्षा के लिए गलत था। भारत में महिलाओं के उत्पीड़न को महिलाओं की शिक्षा से संबंधित मुद्दों के रूप में देखा जाने लगा था। सचमुच में बहुतों ने यह महसूस किया कि महिलाओं के पिछड़े होने की मुख्य वजह उन्हें प्रदान शिक्षा के अवसर की कमी थी। घरेलू के साथ सार्वजनिक जीवन में शक्ति समीकरण कि महिलाओं को संरचनात्मक रूप से एक अधीनस्थ स्थिति नहीं माना जाता था।

टिप्पणी

1981 ई. में मुंबई में, महिलाओं के अध्ययन पर पहला राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया था। हालांकि, इसके बावजूद विश्वविद्यालयों ने महिलाओं के अध्ययन क्षेत्र पर गंभीरता से विचार नहीं किया। यह केवल 1990 के दशक में शुरू किया गया था कि भारतीय विश्वविद्यालयों में महिला अध्ययन जड़ पकड़ने लगा था। आज, कई भारतीय विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संगठनों में महिला अध्ययन पर पाठ्यक्रम और शोध उपलब्ध हैं। यहां तक कि कुछ भारतीय विश्वविद्यालयों में महिलाओं के अध्ययन के लिए अलग विभाग समर्पित है। उनमें से कुछ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में सेंटर फॉर वीमेन्स स्टडीज है, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी में द सेन्टर फॉर विमेंस डेवलपमेंट स्टडीज, महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा में द विमेंस स्टडीज रिसर्च सेन्टर है। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस में एडवांस सेंटर फॉर विमेंस स्टडीज आदि हैं।

1.4.1 लैंगिक अध्ययन : ऐतिहासिक विकास

ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से लैंगिक अध्ययन के अंतर्गत नारीवाद का वैश्विक विचार इस विश्वास को संदर्भित करता है कि पुरुषों और महिलाओं को सभी अवसरों, उपचार, सम्मान और सामाजिक अधिकारों में समान रूप से उन्हें योग्य समझा जाए। साधारणतः नारीवादी वे होते हैं, जो लिंग भेद के आधार पर सामाजिक असमानता को पहचानते हैं और ऐसी घटनाओं को होने से रोकते हैं। नारीवादी यह बताते हैं कि इतिहास की सभी संस्कृतियों में महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अधिक अवसर प्राप्त हुआ है। नारीवाद के कुछ प्रकार हैंः सांस्कृतिक नारीवाद कट्टरपंथी नारीवाद, समाजवादी नारीवाद और उदारवादी नारीवाद।

1870 के दशक से यह प्रत्यक्ष है कि बहुत सारे नारीवादी शोधकर्ता एक ऐसे सिद्धांत का विकास करने में लगे थे, जो महिलाओं के उत्पीड़न की व्याख्या करने में सहायता कर सकता था, जोकि सूचित कर सकता था कि उत्पीड़न का विरोध कैसे किया जा सकता था, तथा उसे चुनौती कैसे दी जा सकती थी? 1880 के दशक के उत्तरार्ध के दौरान, कई शोधकर्ता और सिद्धांतकार सदियों से महिलाओं की अधीनता के स्पष्टीकरण से दूर हो गए और प्रासंगिक जैसे कई विशेष मुद्दों के साथ समस्याओं का विश्लेषण करने लगे थे। ऐसे विश्लेषण या तो नीतिकारों के लिए, नहीं तो कार्यकर्ताओं के लिए थे, लेकिन कभी–कभी यह मुख्य रूप से शैक्षिक दर्शकों की जरूरतों को भी पूरा करता था, जैसा कि हमने भारतीय मामलों में अधिकांशतः देखा है। नारीवाद से संबंधित अनुसंधान और उसके प्रकाशन का काफी विस्तार हुआ और इसके लिए काफी हद तक विभिन्न महिला अध्ययन कार्यक्रमों का सरकार द्वारा भारत के विभिन्न भागों में वित्तपोषित किया गया था। 1880 के दशक तक भारत में कट्टरपंथी नारीवाद ने इस व्यापक श्रेणी में बहुत विभिन्न दिशाओं में फैलाए गए पुरुषों और महिलाओं के बीच मतभेदों पर इस दौरान बहुत जोर दिया गया, तथा पारम्परिक रूप

से महिलाओं से जुड़ी विशेषताओं की सकारात्मक पहलुओं की पहचान पर जोर दिया गया। कुछ कट्टरपंथी नारीवादियों ने नारीवाद की आलोचना को काफी गंभीरता से लिया और नस्लवाद, वर्ग उत्पीड़न और साम्राज्यवाद के मुद्दों को पितृसत्ता के विश्लेषण में शामिल किया।

टिप्पणी

महिलाओं और लैंगिक विकास के कार्य से जुड़े मुद्दे को समझने के लिए लिंग आधारित सैद्धांतिक ढांचे के साथ विकास की सम्पूर्ण समझ आवश्यक है। सैद्धांतिक ढांचे मूलतः मौलिक समस्याओं को सुलझाने का आकार लेते हैं, इसलिए लिंग के अध्ययन और नारीवादी अनुसंधान के लिए एक आवश्यक पहलू हैं। विकास के सिद्धांतों के उल्लेख की शुरुआत पश्चिमी देशों से हुई थी और भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसका परीक्षण नए सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता है। हालांकि, सभी स्तरों पर हिस्सेदारी धारक पर आलोचना तथा बहस की महत्वपूर्ण विधि की शुरुआत करने से पहले हमें मूल सैद्धांतिक ज्ञान की आवश्यकता होनी चाहिए व्यक्तिगत और संगठनीय स्तर पर बहुत से गैर–सरकारी संस्थान लिंग समानता के क्षेत्र में बहुत लम्बे समय से काम करते आ रहे हैं। स्थानीय तथा अंतर्राष्ट्रीय महिला संगठनों की सभी विकासशील देशों में लंबे समय तक मौजूदगी रही है। उनकी मौजूदगी पहले विकास से जुड़े कार्यों से है, जिससे अंर्तराष्ट्रीय नारीवाद की लहरों के साथ संघर्ष के विभिन्न कालों का वर्णन करता है। तीसरी दुनिया के नेताओं के साथ पश्चिमी विकास विशेषज्ञों ने यह धारणा बनाई कि पश्चिम की विकास नीतियां तीसरी दुनिया की नाजुक अर्थव्यवस्थाओं को बेहतर भविष्य की ओर ले जाएंगी। कुछ लोगों ने यह सवाल भी उठाया कि क्या इस समृद्धि से सभी वर्गों, जातियों और लिंग के समूहों के लिए समान रूप से विस्तार होगा?

वे समूह महिलाओं की व्यावहारिक, जरूरतों और उनके रणनीतिक हितों के लिए समय–दर–समय प्रयासरत थे। इनकी वास्तविक आवश्यकताएं घर के दैनिक कार्यों जैसे बच्चों तथा स्वयं की देखभाल से जुडी हैं, जबकि सामरिक लिंग हितों का जुड़ाव बदलते हुए लिंग संबंधों से होता है। यह दृष्टिकोण नारीवादियों के जमीनी संगठनात्मक अनुभवों तथा लेखनों से उभरा है और स्पष्ट रूप से सामाजिक समूहों द्वारा व्यक्त किया गया है। लैंगिक अध्ययन लिंग के संबंध में महिलाओं की स्थिति कक्षा और अध्ययन सामग्री की जांच पर केंद्रित होने के साथ–साथ उन पितृसत्तात्मक ढांचे और अवधारणाओं पर भी केंद्रित है, जो पुरुषों के समक्ष महिलाओं की अधीनता को परिभाषित तथा अनुरक्षण करते हैं। लैंगिक अध्ययन का मुख्य केंद्र ना केवल महिलाओं पर है, बल्कि महिलाओं और पुरुषों के बीच सम्बन्धों के विश्लेषण पर भी है। लिंग सम्बन्ध समाज में महिला प्रतिष्ठा और स्थिति का प्रमुख निर्धारक है। यह केवल प्राकृतिक व्यवस्था के अपरिवर्तनीय प्रतिबिंब के रूप में ही नहीं है, बल्कि व्यावहारिक और सामाजिक रूप से निर्मित प्रतिमान के रूप में भी हैं, जिसमें यदि उस दिशा में कार्य किए जाए, तब लिंग के सामाजिक निर्माण को बदला जा सकता है।

उदारवादी नारीवाद को जिसे समानतावादी या मुख्यधारा नारीवाद भी कहते हैं, नारीवाद की सर्वाधिक सामान्य शाखा समझा जाता है। यह साधारण वाक्य पर आधारित है कि सभी लोग बराबर बनाए गए हैं और लिंग के कारण अवसर की समानता से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि लैंगिकवाद के उन्मूलन से दोनों स्त्री पुरुष लाभ उठाते हैं, पुरुष पंक्ति में समाहित किए जाते हैं। उदार नारीवाद विवेक, शिक्षा, प्राकृतिक अधिकारों के ज्ञानोदय विश्वासों पर आधारित है जो सभी स्त्री पुरुष को बढ़ाता

है। यह जॉन स्टुअर्ट मिल (1869/2002) के 'द सबजेक्शन ऑफ वूमेन' में स्पष्ट रूप से कहा गया कथन है कि 'जो अब नारी का स्वभाव कहा जाता है यह उत्कृष्ट रूप से बनावटी चीज है– कुछ दशा में जबरन उत्पीड़न, दूसरों में अस्वभाविक प्रोत्साहन का परिणाम'। स्त्रियां बहुलवादी व्यवस्था के अंतर्गत एकसाथ कार्य कर सकती हैं और अपने घटकों को सकारात्मक असर डालने एवं लाभकारी सामाजिक बदलाव के लिए संगठित कर सकती हैं। मांग पूरी होगी यदि संघटन प्रभावी हो और दबाव निपुणता से प्रबंध किया गया हो (देक्कार्ड, 1983)।

टिप्पणी

1700 से उदार नारीवाद ने स्त्रियों के नागरिक अधिकारों, शिक्षा, राजनीतिक एवं धार्मिक स्वतंत्रता, व्यक्तिगत पसंद और आत्मनिर्णय पर ध्यान केंद्रित करते हुए उदार राजनीतिक संवाद के अधिकार और कर्तव्य को बढ़ाने के लिए लड़ाई लड़ी है। इसने नागरिक अधिकार कानून में समावेश, शिक्षा तक पहुंच और अवसर की बराबरी अभियान के द्वारा लिंग असमानता को संबोधित किया है। विवेकपूर्ण समझ हर एक के उदार सिद्धांत के लिए निर्धारक विशेषता है। उदारतावाद ने इस प्रकार वंचित लोगों के लिए कानून बनाने, जाति के असमान शक्ति संबंध का संज्ञान, लिंग और स्पर्धा पर ध्यान दिया है जो समाज को बनाती है और समानता के खिलाफ काम करती है।

ऐतिहासिक रूप से उदार नारीवाद स्त्रियों के समान अधिकारों के लिए बहस के लिए चिंतित रहा है– स्त्रियों के लिए पुरुषों की तरह एकसमान नागरिक अधिकार पाना। समान अधिकार नारीवादियों ने उन कानूनों और परंपरा के खिलाफ लड़ा है जो पुरुषों को अधिकार देती हैं और स्त्रियों को नहीं या जो स्त्रियों की रक्षा के लिए बनाई गई हैं, यह जानते हुए कि महज औपचारिक समानता अपर्याप्त है।

उन लोगों ने स्त्री अधिकारों को कार्यस्थल पर जैसे मातृत्व छुट्टी, वेतन के लिए स्त्रियों के खिलाफ विभेद को गैरकानूनी घोषित करने के लिए कानून पारित करने की भी वकालत की है। स्त्रियां पुरुषों की तरह मनुष्य हैं, उनके पास पुरुषों जैसे समान अपरिहार्य प्राकृतिक अधिकार हैं। स्त्री जाति उसकी ऊंचाई के साथ अप्रासंगिक है, स्त्रियां पूर्ण उपयुक्तता में सक्षम होती हैं इसलिए पूर्ण मानव अधिकार की हकदार होती हैं। हालांकि पश्चिमी औद्योगिक समाज में स्त्रियां जाति के आधार पर विभेद की जाती हैं, यही कारण है कि स्त्रियों पर सामूहिक रूप से बगैर उनके व्यक्तिगत इच्छा, हित, योग्यता और जरूरत के कुछ प्रतिबंध लगाए गए हैं। स्त्रियों को पुरुषों के साथ समान अधिकार से वंचित किया जाता है और सामूहिक रूप से पुरुषों को जो अधिकार मिले हैं उनकी आजादी की अनुमति स्त्रियों को सामूहिक रूप से नहीं दी गई हैं। इसके अतिरिक्त जब पुरुषों का आकलन उनकी व्यक्तिगत खूबियों पर किया जाता है, महिलाओं का आकलन उनके स्त्रीय कौशल के रूप में किया जाता है– यही कारण है कि उनके अपने निजी हित के अनुसरण में पुरुषों के समान अधिकारों से वंचित किया जाता है।

समाजशास्त्र में, उदार/सुधारवादी नारीवादियों से सवाल किया गया है कि लिंगों के बीच मतभेद सहज नहीं हैं, लेकिन समाजीकरण का एक परिणाम है, जो "लिंग–भूमिका अनुकूलन" के रूप में जाना जाता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं से अलग ढंग से व्यवहार किया जा रहा हैं और मानव के रूप में अपनी पूरी क्षमता को विकसित करने से महिलाओं को हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। कुछ नारीवादी

शोधकर्ता महिलाएं ऐसी भी हैं, जिन्हें अनुसंधान से बाहर किया गया है और उनके साथ भेदभाव और पुरुषों की अपेक्षा अलग ढंग से बर्ताव किया गया है और इसी बात से समाज में महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति का पता चलता है। महिलाओं को बराबर का हक दिलाने के लिए, यह प्रदर्शित करना आवश्यक है कि पुरुष और महिला पूरी तरह से मानव हैं और क्षमताओं में बराबर हैं। पश्चिमी समाज में पुरुषों और महिलाओं के बीच मतभेद के अलग–अलग प्रकार होते हैं और दोनों लिंगों के साथ सामाजिक अपेक्षाओं से भेदभावपूर्ण कानून होता है।

टिप्पणी

हालांकि, ना ही एक सुधारवादी स्थिति से सामाजिक अनुसंधान महिलाओं का पता लगाने के अनुभवों और ना ही समाज का पता लगाने के लिए विकसित अवधारणाओं और उपकरणों के उपयोग की चुनौती ने, पुरुषों के दृष्टिकोण को बदला है। क्या प्रमुख मुद्दों पर शोध पर्याप्त रूप से पुरुष की विचारधाराओं को चुनौती देता है? यह महिलाओं के समावेश में तर्क है और इस मुद्दे पर अनुसंधान के लिए नींव है, जोकि अनुसंधान के नमूने का मौजूदा सैद्धांतिक दृष्टिकोण होगा। हालांकि, अनुसंधान में महिलाओं को समान अवसर से इनकार किया जा रहा है और उनके साथ भेदभाव और श्रम का विभाजन किया जा रहा है। इस बात की आवश्यकता है कि लिंग भेद को समझा जाए और ऐसे विचारों को चुनौती दी जाए।

सदियों से, उदार नारीवादियों ने शिक्षा और व्यवसायों, संपत्ति के अधिकार, वोट और अन्य सभी अधिकारों का पुरुषों ने आनंद लिया है। इन क्षेत्रों में अपनी बराबर पहुंच बनाने के लिए अपना अभियान चलाया है। उनके पास समान शिक्षा है और समानता के आधार पर महिलाओं की समानता के लिए अनेक तर्क दिए हैं। महिलाएं तर्कसंगत और सार्वजनिक पदों को प्राप्त करने तथा संपत्ति का प्रबंध करने में पुरुषों के बराबर ही सक्षम हैं। इन तर्कों से, उदार नारीवादियों ने अनिवार्य रूप से यह माना है कि महिलाओं और पुरुषों के बीच मतभेद जैविक हैं तथा निर्धारित या सामाजिक रूप से लैंगिकता में अंतर नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हें मानवता के आधार से देखना चाहिए और समाज को इसके प्रति शिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षा और रोजगार के अवसरों में बराबर संघर्ष करने हेतु महिलाओं को पदों पर रह कर बच्चों की देखभाल भी करनी पड़ती है जिससे महिलाओं को उत्पादन संरचनाओं में दोहरी भूमिका निभाना कुछ कठिन कार्य है, केवल संकट के क्षणों में, उदार लोकतंत्र ने ही इस समस्या पर सार्थक ध्यान दिया है।

उदार नारीवादियों ने लैंगिक असमानता की सीमा का निर्धारण करने के लिए निम्नलिखित रणनीतियों का प्रस्ताव दिया है–

- अभिप्रेरण बदलाव के लिए राजनीतिक और कानूनी चैनलों के मौजूदा उपयोग
- समान आर्थिक अवसर
- परिवार, स्कूल और बड़े पैमाने पर मीडिया संदेशों में बदलाव।

इस तरह, उदार नारीवादी समाजीकरण के विभिन्न रूपों के बारे में बात करते हैं, जिसमें लिंग भूमिकाएं बराबर हैं। हर व्यक्ति को लैंगिकता की चुनौती देने की कोशिश करनी चाहिए। उदार नारीवादियों के विचार से, आदर्श लिंग व्यवस्था वह है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए सबसे उपयुक्त जीवनशैली को चुनता है। उदार

नारीवादियों ने समानता के अभ्यास के रूप में इसे आदर्श दिखाने व बढ़ाने का प्रयास किया है।

आलोचना : उदार नारीवाद के क्षेत्र पर आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

- उदार नारीवादी, महिलाओं की समानता तथा संरचनात्मक समस्याओं से निपटने में नाकाम रहे।
- उदार नारीवादी आलोचनाओं को प्रामाणिक चुनौती देने में विफल रहे। अद्वैतवाद, तर्कसंगत संस्थाओं के रूप में मनुष्य को परिभाषित करता है। मानव का जीवन अपने शरीर और भावनाओं की कीमत पर है, जो जीवन को नियंत्रित करने के लिए जरूरी है। महिलाओं का प्रजनन क्षमता पर नियंत्रण है, इसीलिए संरचनात्मक शक्ति संबंध में उन्हें साथ शोषण और कामुकता को छुपा रहना चाहिए।
- उदार नारीवाद के आलोचकों का कहना है कि यह सबसे कमजोर तर्क है कि महिलाओं की कामुकता और प्रजनन शक्ति के अधिकार व्यक्तिगत है।

टिप्पणी

1.4.2 महिला अध्ययन : परिवर्तन एवं निरंतरता

महिला अध्ययन से लैंगिक अध्ययन अचानक ही नहीं हुआ। यह एक यात्रा है, एक प्रक्रिया है। आज हम लैंगिक अध्ययन को जिस रूप में जानते, समझते या पढ़ते हैं उसकी नींव दशकों पहले स्त्रीवादी चिंतकों द्वारा ही रखी हुई है। कुछ ऐसे चिंतक भी थे जो स्त्री को तय ढांचे में ही रखना चाहते थे परंतु स्त्रीवादी चिंतकों ने स्त्री की वास्तविक स्थिति को सबके सामने न केवल उजागर किया बल्कि स्त्री को स्वयं अपनी स्थिति सुधारने के लिए प्रेरित भी किया।

नारीवाद शब्द का प्रयोग 1890 के आसपास होने लगा था। आज हम सब लिंग शब्द से परिचित हैं परंतु लिंग शब्द का प्रयोग 70 के दशक के आस–पास प्रारम्भ हुआ। यह यौनिकता एवं लैंगिकता में भेद को जानने के पश्चात हुआ। यौनिकता एवं लैंगिकता में विभेद को स्पष्ट करने में नारीवाद का बड़ा योगदान रहा। लैंगिक अध्ययन से पूर्व नारीवादी विमर्श की शुरुआत हुई। ये शुरुआत सर्वप्रथम लेखन में स्त्री अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने और बाद में महिला आंदोलनों के रूप में हुई। यदि हम नारीवाद के इतिहास की बात करें तो इसकी शुरुआत मेरी वोल्स्टंक्राफ्ट की पुस्तक "ए विंडीकेशन ऑफ द रायट्स ऑफ वुमेन" से हुई। इस पुस्तक में मेरी वोल्स्टंक्राफ्ट ने उस समय के समाज में महिलाओं की स्थिति को उजागर किया। उन्होंने स्त्रियों के सामाजिक व्यवहार की जांच–पड़ताल बहुत ही गहराई से की और स्त्रियों के व्यवहार पर उनके समाज का प्रभाव बताया। वे इस ओर इशारा करती हैं कि स्त्रियों की नियति उनके आस–पास के परिवेश से प्रभावित होती है।

वे अपनी पुस्तक में उस समय के लेखकों द्वारा गढ़ी गई नारी छवि पर कड़ा प्रहार करती हैं। उन्होंने अपने समकालीन लेखकों की कृतियों में स्त्रियों के चरित्र और शिक्षा पर छदमपूर्ण ढंग से प्रकट की गई धारणाओं का बारीकी से प्रेक्षण करते हुए टिप्पणी की है। वे स्त्री की स्थिति के पीछे के कारणों एवं उनकी ढुलमुल शिक्षा पर भी अपनी चिंता व्यक्त करती हैं। हालांकि स्त्रियों की बात करते हुए वे स्त्री–पुरुष के बीच सामंजस्य की भी बात करती हैं। इसके लिए वे स्त्री एवं पुरुष दोनों को ही साथ–साथ शिक्षा देने का प्रावधान रखने की बात करती हैं। वे लिखती हैं, "दोनों में ही सुधार के

प्रयोजन से उन्हें न केवल निजी परिवारों बल्कि सार्वजनिक विद्यालयों में भी साथ–साथ शिक्षा देनी चाहिए। यदि विवाह संबंध को समाज की नींव बनना है तो समस्त मानव–जाति को उसी आदर्श पर शिक्षा देनी होगी अन्यथा स्त्री–पुरुष के बीच समागम साहचर्य का नाम कभी धारण नहीं कर पाएगा। उनको ठीक उसी प्रकार से पुरुषों से अपने आप को स्वतंत्र होना होगा जिस प्रकार एक पुरुष दूसरे से स्वतंत्र होता है।" उनका मानना है कि यदि बालक एवं बालिकाओं को समान शिक्षा साथ–साथ ग्रहण करने की अनुमति प्राप्त हुई होती तो आरंभ में ही गरिमापूर्ण शिष्टता मन में बैठाई जा सकती है। वे बालिकाओं को केवल सिलाई–कढ़ाई तक सीमित रखने और उनको राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवसाय से बहिष्कृत करने की कठोर निंदा करती हैं क्योंकि वे मानती हैं कि इस प्रकार उनके मस्तिष्क को संकुचित कर उन विशिष्ट कर्तव्यों की पूर्ति के लिए, जो प्रकृति ने उन्हें सौंपे हैं वे अक्षम बना दी जाती हैं।

टिप्पणी

मेरी वोलस्टनक्राफ्ट के इन विचारों का समर्थन जे.एस. मिल (1869) ने अपनी पुस्तक "द सबजेक्शन ऑफ वुमेन" में करते हैं। वे स्त्री एवं पुरुष में अंतर को हालात के अंतर का स्वाभाविक परिणाम मानते हैं और प्राकृतिक अंतर को बहुत कम बताते हैं। वे इस पुस्तक में स्त्री की पराधीनता के कारणों की जांच–पड़ताल करते हैं। उनके अनुसार "सभी स्त्रियां बचपन से ही यह पढ़ते–सीखते हुए बड़ी होने लगीं कि उनके लिए एक आदर्श चरित्र पुरुष के चरित्र के बिल्कुल उलट हैः इच्छाशक्ति का अभाव, अपनी भावनाओं पर नियंत्रण, पुरुष–सत्ता के आगे समर्पण और दूसरों के नियंत्रण अनुसार चलने–जीने वाला आचरण। हर नैतिकता स्त्री से यही कहती फिरती है और आजकल की अतिभावुकता भी यही संदेश देती है कि स्त्री को दूसरों के लिए जीना चाहिए, दूसरों के लिए त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए और उनके प्रेम और स्नेह को ही अपने जीवन का लक्ष्य समझना चाहिए।" मिल ये भी प्रश्न उठाते हैं कि दूसरे सभी मामलों में पुराने युग के विचारों और चलनों को त्यागने के बाद भी स्त्री के मामले में हम अभी भी उन्हें पकड़े बैठे हैं? वे भी स्त्री एवं पुरुष की स्थिति को समझने के लिए उनकी परिस्थितियों को अलग–अलग समझने की हिदायत देते हुए कहते हैं कि "यह कहने से कुछ भी साबित नहीं होता कि दोनों लिंगों के स्वभाव के अनुसार ही उनके वर्तमान कार्य और स्थितियां बंटी हुई हैं, और यही उनके लिए श्रेष्ठ है। आम समझ और मानव–मस्तिष्क की बनावट के आधार पर मैं कह सकता हूं कि कोई भी दोनों लिंगों के स्वभाव को न जान सका है, न जान सकता है, जब तक कि उन्हें अलग–अलग स्थितियों में रख कर देख न लिया जाए। अगर एक समाज सिर्फ पुरुषों का होता और एक समाज सिर्फ स्त्रियों का होता या अगर कोई ऐसा समाज होता जहां स्त्रियां पुरुषों के नियंत्रण में न होतीं, तो शायद दोनों के स्वभाव में निहित मानसिक और नैतिक अंतर के बारे में जरूर कुछ कहा जा सकता था।" मिल यह भी मानते हैं कि दोनों लिंगों के बीच किसी प्रकार का नैतिक एवं बौद्धिक अंतर, चाहे वह कितना ही बड़ा हो या अपरिवर्तनीय प्रतीत होता हो, परंतु वह प्राकृतिक नहीं है। वर्तमान समय में लिंग की अवधारणा के मूल में भी यही है कि स्त्री एवं पुरुष के बीच का अंतर प्राकृतिक नहीं है।

स्त्री स्वतन्त्रता की बात वर्जीनिया वुल्फ अपनी पुस्तक 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' में भी करती हैं। उनका मानना है कि बिना आर्थिक स्वतन्त्रता के स्त्री मुक्ति की बात करना बेमानी होगी इसलिए सबसे पहले स्त्री को आर्थिक रूप से स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर

होना पड़ेगा। वे लिखती हैं कि "संसार की विशालता और विविधता को देखते हुए अगर दो लिंग भी नाकाफी हैं तो फिर केवल एक लिंग से कैसे काम चलेगा? क्या शिक्षा का यह कर्तव्य नहीं होता कि समानताएं पैदा करने की बजाय विभिन्नताओं को पैदा करे और मजबूत बनाए?" वे स्त्री सशक्तीकरण के लिए भौतिक स्वतन्त्रता को आवश्यक मानती हैं और भौतिक स्वतन्त्रता के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता पर जोर देती हैं।

टिप्पणी

यह वह दौर था जब महिला आंदोलन एवं नारीवाद की प्रथम लहर का उदय हो रहा था। इन पुस्तकों के प्रभाव से पूरे विश्व में महिलाओं के अधिकारों की मांग उठ रही थी। इसी बीच 1919 में यू.एस.ए में, 1927 में ब्रिटेन में एवं 1944 में फ्रांस में महिलाओं ने एक लंबी लड़ाई के बाद अपने लिए मताधिकार को प्राप्त किया। इसके बाद प्रथम लहर के आंदोलनों की गति कुछ धीमी हो गई। इसी बीच फ्रेंच की सुप्रसिद्ध लेखिका सिमोन द बोउवार की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' 1949 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने नारी आंदोलनों में फिर से जैसे प्राण फूंक दिए। आरंभ में विद्वानों ने इस पुस्तक का मजाक बनाया और इसका बहिष्कार किया। परंतु आज भी नारीवाद और जेंडर के बारे में समझने और जानने के इच्छुक इस पुस्तक की महत्ता को नकार नहीं सकते। सिमोन ने इस पुस्तक में नारी के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं की व्याख्या की थी। उनका यह वाक्य 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है' लैंगिक अध्ययन के लिए प्रमुख नारा बन गया। अपने इस वाक्य से सिमोन ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि स्त्री की निर्मिति सामाजिक है न कि जैविक इसलिए स्त्री एवं पुरुष में जो भेद है वह समाज द्वारा प्रदत्त है। जैविक भेद केवल कुछ ही हैं जैसे मां बनना, बच्चे को दूध पिलाना आदि। परंतु वह मानती हैं कि अब तक जैविक भेद पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है और उसी आधार पर स्त्री को कमजोर साबित कर दिया गया है। इस संदर्भ में वह लिखती है कि "हम स्त्री–जाति की प्रचारित कमजोरी की अवधारणा को आर्थिक एवं नैतिक कारणों से ही परिभाषित कर सकते हैं। प्रकृति की वास्तविकता मनुष्य के लिए वहीं तक है जहां तक अपने क्रिया कलापों में वह उससे उलझता है। मनुष्य का स्वभाव ही इसी प्रकार निर्मित है। औरत को केवल उसकी उत्पादकता और जनन–क्षमता से ही तौलने पर केवल पुरुष मुख्य निर्णायक सिद्ध होगा। अतः स्त्रियों को कितने बंधनों में रहना पड़ेगा, कितने बच्चे पैदा करने पड़ेंगे या फिर उसे स्वास्थ्य की कौन–कौन सी सुविधाएं प्रदान की जाएंगी– इन सब बातों में पुरुष–समाज एकमात्र नियामक तथ्य हो जाता है। मानव–जाति में व्यक्ति का अस्तित्व और उसकी संभावनाएं आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होती हैं।" इस प्रकार धीरे–धीरे यह तथ्य उजागर हो रहा था कि किसी भी मनुष्य पर उसकी जैविकता से अधिक उसकी सामाजिकता पर अधिक प्रभाव पड़ता है और यही बात स्त्री एवं पुरुष में भेदभाव या असमानता का आधार बनी। इस प्रकार स्त्री अध्ययन एवं स्त्री विमर्श धीरे–धीरे लैंगिक अध्ययन की ओर बढ़ रहा है। वे अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में पितृसत्ता पर भी प्रहार करती हैं। उन्होंने पुरातन काल से चली आ रही स्त्री की स्थिति एवं उसकी भूमिका की जांच पड़ताल की और पाया कि स्त्री हमेशा से एक पोषक की भूमिका में रही न कि एक सर्जक की भूमिका में। उस पर पुरुष का वर्चस्व, पुरुष की सत्ता के लालच में बढ़ता ही चला गया। जिस प्रकार पुरुष ने प्रकृति का शोषण किया उसी प्रकार से स्त्री का भी शोषण किया गया। उसने यह समझ लिया था कि औरत को अपदस्थ करके ही वह अपना आधिपत्य

कायम कर सकता है। पुरुष की ताकत और सत्ता बढ़ने के साथ–साथ औरत कमजोर होती चली गई। "जब पुरुषों को जमीन का स्वामित्व मिला, तब उसने स्त्री को भी अधीनस्थ करना चाहा, जिससे वह उसकी वंश–वृद्धि कर सके। पुरुष स्वयं एक उत्पादक शक्ति था। अतः उसने अपने बच्चों तथा संतति पर समान रूप से स्वामित्व का दावा किया। उसने यह स्थापित किया कि पुरुष उत्पन्न करता है, औरत पोषण करती है।" सिमोन अपनी पुस्तक में एंगेल्स की उस बात से सहमत नजर आती हैं जिसमें वह औरतों की अधीनता एवं हीनतर स्थिति का कारण निजी संपत्ति की अवधारणा को बताते हैं। पितृसत्तात्मक समाज की रचना में निजी संपत्ति का मालिक अपनी संपत्ति को केवल अपनी संतति के हाथों में हस्तांतरित करना चाहता है। वह अपनी सत्ता और संपत्ति के विकास एवं उसकी सुरक्षा के लिए अपने पूर्वजों की पूजा करता है। वह अपने अधिकारों को अपनी पत्नी को कभी नहीं सौंपता। इस प्रकार पितृसत्ता के द्वारा पुरुष, स्त्रियों के अधिकारों का हनन करता है।

टिप्पणी

वे मिल के विचारों से भी सहमत हैं कि स्त्री को किसी भी क्षेत्र में कोई सुविधा नहीं मिलती। हर प्रकार की सत्ता, सारे मूल्य एवं संस्थाओं पर पुरुषों का वर्चस्व है। स्त्री को दिए गए अधिकार इतने अमूर्त हैं कि वे रूढ़ियों एवं पूर्वाग्रहों के कारण व्यावहारिक जगत में लागू नहीं किए जा सकते। स्त्री और पुरुष को समान बताने का ढोंग भर किया जाता है परंतु वास्तविकता बहुत अलग है। विवाह एवं घर–गृहस्थी का पूरा बोझ स्त्री पर ही है। यदि पुरुष को कोई कार्य करने को कहा भी जाता है तो उसके अहं को चोट लगती है। कार्यक्षेत्र की यदि बात की जाए तो महिलाओं को पुरुषों की तुलना में बेहद कम पगार दी जाती है। वह बराबर काम करते हुए भी आर्थिक शोषण की शिकार है और मुख्य रूप से अपने पालन–पोषण एवं सुरक्षा के लिए पुरुषों पर ही निर्भर है। इस संदर्भ में ही सिमोन लिखती हैं कि "अभिभावक अब भी केवल विवाह को ध्येय बनाकर ही लड़की का लालन–पालन करते हैं, उसके व्यक्तित्व का विकास नहीं। लड़की स्वयं विवाहित जीवन में इतनी अधिक सुख–सुविधाएं देखती है कि वह भी इसी की इच्छा रखती है। नतीजा यह होता है कि जीवन में वास्तविक संघर्ष के लिए उसको प्रशिक्षण का वक्त कम मिलता है। अपने भाइयों की तुलना में अपनी स्थितियों का चुनाव एक निम्न स्तर पर वह स्वयं कर लेती है। हीनता का यह दुष्चक्र है, जिससे निकलना प्रायः असंभव हो जाता है और चूंकि अपने पेशे से स्त्री ही है, उसकी रुचि सतही है, इसलिए वह पति की चाह एक रक्षक के रूप में अधिक करने लगती है।"

सिमोन की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' महिला आंदोलन की दूसरी लहर का आधार बनी। द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–1945) के बाद यूरोप व अमेरिका में बढ़ते विकास के कारण तेजी से श्रम की मांग बढ़ी। श्रम की मांग की पूर्ति के लिए महिलाएं, जो पहले घरेलू कार्यों तक सीमित थीं वे भी रोजगार के क्षेत्र में प्रविष्ट हुईं। उनमें नए आत्मविश्वास का जन्म हुआ और उन्होंने अपनी नई पहचान भी बनाई। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात महिलाओं पर यह दवाब बनाया गया कि वह सब कार्य छोड़ कर अपने घरेलू कार्यों की तरफ वापस लौट जाए। परंतु यह बेहद मुश्किल था क्योंकि युद्ध के पश्चात बहुत सारी महिलाएं विधवा हो गई थीं और वे स्वयं अर्जित करके अपना गुजारा कर रही थीं। इसी प्रकार अविवाहित महिलाएं भी अपना गुजारा स्वयं कर रही थीं। ऐसे में उनका घरेलू बनना नामुमकिन था। ये रोजगार के क्षेत्र में डटी रहीं और आने वाली पीढ़ी के लिए मिसाल बनीं। दूसरी लहर के नारी आंदोलन

मुख्यतः महिलाओं के स्वयं के अधिकारों से संबंधित थे। महिलाओं में लैंगिक भेदभाव के प्रति जागरूकता बढ़ी। पहले जो चीजें छिपाई जाती थीं अब वह उजागर होने लगीं। 'पर्सनल इज पॉलिटिकल' का नारा भी दिया गया, जिसका अर्थ था कि महिलाओं पर किसी भी प्रकार का अन्याय व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक है। इसके लिए सार्वजनिक रूप से ही एकजुट होकर कार्य करना होगा। इसी दौरान 1960 में गर्भ निरोधक गोलियों का आविष्कार हुआ जिसने महिलाओं के जीवन को क्रांतिकारी रूप से प्रभावित किया। इस लहर में महिलाओं ने अपनी स्वतन्त्रता पर बल दिया और मुक्ति के लिए पुरुष वर्चस्ववाद, लिंगवाद, पितृसत्ता जैसे मुद्दों पर गहनता से विचार किया।

टिप्पणी

नारीवादी आंदोलनों की इन लहरों के बीच महिला आंदोलनों में आपसी मतों की भिन्नता के कारण एवं समय के साथ–साथ बदलती चुनौतियों के कारण नारीवाद भी विभिन्न विचारधाराओं में बंट गया। इन विचारधाराओं ने अपने–अपने स्तर पर कई महत्वपूर्ण कार्यों में अपना योगदान दिया और नारीवाद को एक नई दिशा प्रदान की। वर्तमान समय में लैंगिक अध्ययन के स्वरूप को इन विचारधाराओं का अध्ययन किए बिना नहीं समझा जा सकता। ये विचारधाराएं थीं उदारवादी, रेडिकल एवं समाजवादी नारीवादी। हालांकि इसके अतिरिक्त भी अन्य नारीवादी विचारधाराएं समय–समय पर अपना प्रभाव दिखाती रहीं। इनमें मनोविश्लेषणवादी नारीवाद, अश्वेत नारीवाद, इको नारीवाद आदि शामिल हैं।

उदारवादी नारीवाद

उदारवादी नारीवाद का उदय 18वीं शताब्दी में हुआ। उदरवादी नारीवादियों ने समानता की अवधारणा एवं स्त्री के वास्तविक जीवन के बीच निहित अंतर्विरोधों को उजागर किया। इन्होंने स्वतन्त्रता एवं समानता के मूल्य एवं स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति एवं उसकी अधीनता के फर्क को रेखांकित किया। साथ ही महिलाओं की इस स्थिति के पीछे दिए जाने वाले तर्कों एवं इससे जुड़ी धारणाओं को सामाजिक संदर्भों एवं सांस्कृतिक मूल्यों की उपज के तौर पर समझने का प्रयास किया। 1792 में मेरी वोलस्टनक्राफ्ट अपनी पुस्तक "A Vindication of the Right of women" में नारी की दोयम दर्जे की स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए स्त्री अधिकारों की जोरदार हिमायत की। मेरी ने अपनी पुस्तक में लड़के एवं लड़कियों को दी जाने वाली शिक्षा के संदर्भ में रूसो के विचारों का खंडन किया। रुसो का मानना था कि लड़कों की शिक्षा इस प्रकार से होनी चाहिए जिससे उनमें स्वतंत्र निर्णय लेने की स्वायत्तता का विकास हो क्योंकि एक अच्छा नागरिक बनने के लिए यह आवश्यक था। इसके विपरीत लड़कियों की शिक्षा के मामले में उनका विचार था कि लड़कियों की शिक्षा इस प्रकार की हो जिससे वह अपने पति को खुश रखने की कला में निपुण बने और वे आज्ञाकारी, पतिव्रता और सदाचारी बने। मेरी ने उनके इन विचारों का जोरदार विरोध किया और कहा कि महिलाओं को राजनीति से वंचित रखने का कोई तार्किक आधार नहीं है। उन्होंने महिलाओं की हीन स्थिति का कारण सदियों से उनकी की जाने वाली उपेक्षा को बताया।

इसके पश्चात मिल ने भी स्त्री मुक्ति एवं उसके अधिकारों की चर्चा अपनी पुस्तक 'The Subjection of Woman' में की। दोनों ही चिंतकों ने नारी को भी समान अधिकार देने और उसकी स्वतन्त्रता के पक्ष में अपने तर्क दिए और उन आरोपों का खंडन किया

जिनमें नारी को बुद्धिहीन एवं कमजोर बताया गया था। दोनों ने ही यह माना कि महिलाएं तार्किक विचार में उतनी ही सक्षम होती हैं जितने कि पुरुष, इसलिए उनको भी पुरुषों की तरह ही समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। वे महिलाओं को राजनीतिक समानता दिलाने के पक्ष में थे। मिल ने तो स्त्री की तुलना उन गुलामों से की थी जिसकी मुक्ति की संभावना बहुत कम है। उन्होंने उन पारिवारिक रचनाओं एवं परम्पराओं पर प्रश्न खड़े किए जो महिलाओं को घर तक सीमित करके उनके सार्वजनिक क्षेत्रों में प्रवेश को प्रतिबंधित करती है और साथ ही उनको निर्णय लेने और चयन करने के अधिकार से भी वंचित करती हैं। इन सब विचारों से प्रभावित उदारवादी नारीवाद का प्रमुख लक्ष्य था पुरुषों पर महिलाओं की निर्भरता की समाप्ति, उनको शिक्षा के अवसर प्रदान करना और ऐसी नीतियां एवं कानूनों का निर्माण किया जाए जो महिलाओं के समान दर्जे को सुनिश्चित करें।

टिप्पणी

मालती सुब्रहमण्यम (2011) के अनुसार, "मेरी वोलस्टनक्राफ्ट की यह दलील आमतौर पर उपेक्षा का शिकार हुई कि सुख की प्राप्ति के लिए राजनीतिक समानता और आजादी का दार्शनिक औचित्य पुरुषों के साथ महिलाओं पर भी लागू होता है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में जब तक महिलाओं के लिए मताधिकार के आंदोलन में तेजी आई और वंचित समूह के नाते गुलामों की मुक्ति की अमरीकी दासता विरोधियों की मांग आगे नहीं बढ़ी तथा मेहनतकश वर्ग को मतदान का अधिकार देने की मांग ने इंग्लैंड में जोर नहीं पकड़ा तब तक किसी भी प्रमुख दार्शनिक ने आजादी और समानता की प्रचलित धारणाओं में महिलाओं को भी शामिल किए जाने के मसले को गंभीरता से नहीं लिया।" यही कारण रहा कि महिलाओं को उनके मतदान के अधिकार जैसे मुद्दे को प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही पूरा किया जा सका। महिलाओं को मताधिकार देने के जे. एस मिल के विचारों को इतना अधिक विरोध का सामना करना पड़ा कि इस वजह से ही इन अधिकारों को प्रदान करने में इतना अधिक विलंब हुआ। उदारवादी विचारधारा महिलाओं की समाज में असमानता एवं उनको समान अधिकारों से वंचित किए जाने के प्रतिरोध का प्रतिफल थी। उदारवादी नारीवादियों का प्रमुख लक्ष्य स्त्रियों के लिए स्वतन्त्रता, अधिकार एवं न्यायिक बराबरी दिलाना था। ये व्यक्तिगत मूल्यों में परिवर्तन करके एवं समाज के विचारों की पुनर्रचना करके समानता को स्थापित करना चाहते थे। उदारवादी नारीवादी उस समय समाज में पुरुषों को प्राप्त सभी अधिकारों को महिलाओं के लिए सुनिश्चित करके स्त्री एवं पुरुष समानता हासिल करना चाहते थे। इनके मुख्य लक्ष्य में महिलाओं की पुरुषों पर किसी भी प्रकार की निर्भरता (सामाजिक, आर्थिक आदि) को समाप्त करना, उनकी शिक्षा के लिए उनको बेहतर अवसर प्रदान करवाना, कानून एवं नीतियों में महिलाओं को प्रमुखता से स्थान दिलवाना और उनके लिए अवसर की समानता को सुनिश्चित करना आदि थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि स्त्रियां अपने साथ हो रही असमानता को पहचाने और प्रतिरोध करे। स्त्रियों में ये चेतना पैदा करना उदारवादी नारीवादियों की महत्वपूर्ण देन थी, क्योंकि परिवर्तन की शुरुआत उत्पीड़न की पहचान के बाद ही संभव है। इस प्रकार की चेतना द्वारा ही एक अधिक उन्मुक्त समाज एवं समतामूलक लैंगिक संबंधों को जन्म देगी। इसके लिए पुरुषों को प्राप्त अधिकारों एवं हासिल विशेषाधिकारों को महिलाओं तक विस्तार करने का प्रयास किया गया। उन्हें अवसर उपलब्ध करवाने का प्रयास किया गया, विशेष विद्यालयों की स्थापना की गई। धीरे–धीरे स्त्रियों ने अपने संगठन बनाने प्रारम्भ कर दिए। इन

संगठनों का प्रमुख कार्य सार्वजनिक क्षेत्र में सरकार पर दवाब डालकर व्यवस्था को चुनौती देना था। इस प्रकार की रणनीति असरदार साबित होती थी और सरकार कानून एवं नीतियों में परिवर्तन भी करती थी। इसी चेतना से ओतप्रोत विभिन्न देशों में अपने लिए मताधिकार की मांग की जिसको पाने में वह कामयाब भी हुई।

टिप्पणी

मूल्यांकन

समाज में महिलाओं की दोयम दर्जे की स्थिति को पहली बार उदारवादी नारीवादियों ने इतने बड़े स्तर पर न केवल उजागर किया बल्कि स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए भी बहुत प्रयास किए गए। हालांकि उदारवादी नारीवादियों ने महिलाओं की असमानता एवं अधीनता के कारणों की जड़ तक पहुंचने और उस पर गहराई से विश्लेषण नहीं किया। परिवार में महिलाओं के स्थान एवं उनके शोषण एवं उत्पीड़न को उदारवादी नारीवाद ने संबोधित नहीं किया। उदारवादी सामाजिक कल्याण की नीति पर अधिक बल देते हैं और समान अवसर एवं समाज सुधार के सिद्धांत पर जोर देते हैं। वे कानूनों एवं नीतिगत बदलावों के द्वारा समाज में परिवर्तन लाने पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस दृष्टि से महिलाओं के प्राकृतिक अधिकारों को महिलाओं तक पहुंचाना, कानूनी तौर पर महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन के लिए प्रयास करना, तलाक कानूनों को सरल बनाना, महिलाओं को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अवसर प्रदान करवाना, विभिन्न व्यवसायों तक महिलाओं की पहुंच को बढ़ाना ये सभी मुद्दे उदारवादी आंदोलनों का हिस्सा रहे हैं। इसके जरिये महिलाओं की चेतना में प्रसार हुआ और उनको अवसरों की प्राप्ति हुई। ये सब अपने आप में उस समय की काफी बड़ी उपलब्धि है। हालांकि इन सबका फायदा बड़े स्तर पर महिलाओं को नहीं मिल पाया। उदारवादी नारीवाद घर की निजी दुनिया के भीतर की समस्याओं को भी संबोधित नहीं करता है। इसका नतीजा यह रहा कि उदारवादी आंदोलनों ने स्त्री को आर्थिक स्वतन्त्रता एवं अवसर तो प्रदान करवाए परंतु घर में उसकी मां, पत्नी एवं बेटी के रूप में पारंपरिक भूमिका जारी रही। इससे जुड़े अन्य मुद्दों को बाद में आई नारीवादी विचारधाराओं ने उठाया।

रेडिकल नारीवाद

उदारवादी नारीवाद, नारीवादी आंदोलन की बेहतरीन शुरुआत थी परंतु इस आंदोलन में कुछ कमियां थीं। सर्वप्रथम इस पर कुछ नारीवादियों ने आरोप लगाया कि यह स्त्री उत्पीड़न के स्रोतों की गहराई से पहचान नहीं कर पाया है। केवल सार्वजनिक अधिकारों की मांग करने में स्त्रियों की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं होगा, अपितु उनके व्यक्तिगत जीवन में परिवर्तन लाने का प्रयास करना होगा। दूसरा यह आरोप लगाया गया कि यह विचारधारा केवल श्वेत मध्यम वर्गीय स्त्रियों तक ही सीमित है। यह अन्य नारियों की समस्याओं की पहचान नहीं कर पाए हैं। इसलिए उदारवादी नारीवादियों से असहमत नारीवादी लोगों ने एक नए आंदोलन का निर्माण किया जिसको रेडिकल नारीवाद का नाम दिया गया। रेडिकल नारीवाद की विचारधारा बहुत प्रसिद्ध हुई। इसका उदय 1960–70 के दशक के आसपास हुआ। इनका नारा 'पर्सनल इज पॉलिटिकल' बहुत प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने नारी के शोषण एवं उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को अनुभव के माध्यम से लोगों के सामने प्रस्तुत किया। रेडिकल नारीवादियों ने छोटे–छोटे संगठन बनाए और इन संगठनों के माध्यम से ही अपने अनुभवों को सार्वजनिक किया। इन सभी संगठनों के सदस्यों के अनुभवों से एक बात स्पष्ट थी कि

नारी की सच्ची मुक्ति के लिए समाज को पितृसत्ता से मुक्त करना बेहद आवश्यक था। रेडिकल नारीवादियों ने ही लिंग और सेक्स के भेद को उजागर किया। इन्होनें पुरुष वर्चस्व वाले समाजों में नारी नियंत्रण रखने के लिए कठोर यौन संबंधी वर्जनाओं की घोर आलोचना की और उसको पितृसत्ता का षड्यंत्र बताया। इनके अनुसार स्त्री को अपनी यौनिकता संबंधी निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार एवं स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। इनका मानना है कि महिलाओं के ऊपर पुरुष के इतने कठोर वर्चस्व के कारण ही महिलाओं के साथ बलात्कार, यौन हिंसा जैसी क्रूरताएं होती हैं और उनको वेश्यावृत्ति में भी धकेल दिया जाता है। नारी की इन समस्याओं के समाधान के रूप में ये समलैंगिकता का समर्थन करती हैं।

टिप्पणी

रेडिकल नारीवाद को पोषित करने में मुख्यतः तीन पुस्तकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें पहली पुस्तक सिमोन द बोउवार की 1949 में फ्रेंच में प्रकाशित पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' थी जो 1953 में अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने नारीवाद को नया आयाम प्रदान किया। उनका मानना था कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है'। उन्होंने यह माना कि महिलाओं की प्रजनन क्षमता एक ऐसी चीज है जो स्त्री एवं पुरुष में अनिवार्य फर्क को जन्म देती है। परंतु इससे महिलाओं के दर्जे को कम आंका जाए यह तर्कहीन है। उन्होंने महिला एवं पुरुषों को लैंगिक संरचना को बदलने का सुझाव भी दिया जिससे समानता की स्थापना हो सके। अन्य दो पुस्तकें 70 के दशक में प्रकाशित हुईं। इनमें केट मिलेट की पुस्तक 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' जिसमें अंग्रेजी एवं फ्रेंच साहित्य में वर्णित यौन संबंधों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने अपने अध्ययन में यह दर्शाया कि किस प्रकार पुरुष अपने लेखन द्वारा भी अपनी सत्ता को कायम करने का प्रयास करते हैं। वे यह भी मानती हैं कि पितृसत्ता का निर्माण पुरुषों द्वारा किया गया और उसके अनुसार ही लड़कियों को ऐसे पाला–पोसा जाता है कि पितृसत्ता को स्वाभाविक मान लिया जाता है। उस पर किसी प्रकार का प्रश्न चिह्न लगाना तो दूर उसको पहचानना भी मुश्किल हो जाता है। लड़कियों का प्रशिक्षण ही इस प्रकार से किया जाता है कि वे किताबों में निहित प्रेम चित्रण या अन्य चित्रण के जरिए अपनी–अपनी लैंगिक भूमिकाओं को स्वीकृत कर सके।

रेडिकल नारीवादी मातृत्व को उनकी प्राकृतिक भूमिका मानते हैं और स्त्री के बच्चा जनने के अधिकार को महत्वपूर्ण मानते हैं। परंतु वे इसको महिमामंडित करके इसकी आड़ में स्त्री के दमन का कड़ा विरोध करते हैं। इस समय की प्रमुख नारीवादी केट मिलेट (1970) ने अपने अध्ययन में स्त्री की यौनिकता और सत्ता सम्बन्धों को उजागर किया है। शुलामिथ फायरस्टोन (1970) ने महिलाओं की जैविक संरचना को उनकी अधीनता का कारण बताया था। उनके अनुसार गर्भ धारण करने एवं बच्चे को जन्म देने में और उसके बाद उनका पालन–पोषण करने में महिलाओं की बहुत सी ऊर्जा नष्ट हो जाती है। वे उस ऊर्जा का प्रयोग अपनी पहचान बनाने और स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कर सकती हैं। परंतु वे ऐसा नहीं कर पातीं और उनको पुरुषों पर निर्भर होना पड़ता है। महिलाओं को अक्सर मां बनने के लिए मजबूर किया जाता है। गर्भनिरोधक उपायों की जानकारी का अभाव उनके लिए मुसीबत बन जाता है। उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका गर्भपात भी करवाया जाता है। स्त्री के मातृत्व के अधिकार पर भी पुरुषों का ही वर्चस्व है। वे ही निर्णय लेते हैं कि बच्चा पैदा कब किया जाए, कितने किए जाए, कब गर्भपात करवाना है आदि जैसे निर्णय लेने में स्त्री का कोई

टिप्पणी

योगदान नहीं होता। सीमा दास (2011) के अनुसार "इन संरचनाओं में निहित है रोमांटिक प्रेम और आदर्श विवाह के मिथक और वह 'पुरुष संस्कृति' जो महिलाओं को निष्क्रिय बनाती है और यौन आकर्षण बनाए रखने की न पूरी होने वाली मांगों के लिए लगातार प्रयास करने के लिए मजबूर करती है।" इस उत्पीड़न को समाप्त करने के लिए फायरस्टोन प्रजनन में स्त्री की भूमिका को बिलकुल समाप्त करने का प्रस्ताव भी देती हैं। उनका कहना है कि इस 'लिंग वर्ग' प्रणाली के उत्पीड़न का खात्मा एक तकनीकी क्रांति के जरिए संभव हो सकता है।

रेडिकल नारीवादी पुरुषों के इस वर्चस्व एवं इस विचारधारा का विरोध करते हैं कि स्त्री केवल मां बनकर ही पूर्ण बन सकती है। रेडिकल नारीवादी विवाह नामक संस्था पर विश्वास नहीं रखते। उनके अनुसार विवाह सामाजिक बंधनों का पिंजरा है जिससे आजाद होना बहुत मुश्किल है।

दरअसल रेडिकल नारीवाद का उद्देश्य स्त्री एवं पुरुष के बीच व्याप्त उन सभी भेदों का उद्घाटन करते हैं जो कानून एवं रोजगार जैसे क्षेत्रों तक ही नहीं बल्कि घर के भीतर तक हमारे व्यक्तिगत सम्बन्धों पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। अक्सर पुरुष एवं स्त्रियों के न केवल पहनावे में भिन्नता होती है बल्कि उनके खाने पीने के ढंग, काम की जगह पर, अलग–अलग गतिविधियों में संलिप्त होते हैं। धीरे–धीरे यह बात स्थापित हुई कि स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है और रेडिकल नारीवाद इस दृष्टि को गहराई तक ले गया तथा नारी उत्पीड़न की जड़ों को पहचानने का महत्वपूर्ण कार्य रेडिकल नारीवादियों द्वारा किया गया। नारीवाद की सभी विचारधाराएं पितृसत्ता के विरोध पर एकमत हैं। लिंग पर आधारित विभाजन प्राकृतिक नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाया गया है। आमतौर पर पुरुष को सकारात्मक, ओजस्वी, आक्रामक, प्रभुत्वशाली, मजबूत एवं महिलाओं को कमजोर, निष्क्रिय, भावुक, रहस्यमय, गैर–जिम्मेदार माना जाता है। पुरुष संस्कृति महिलाओं के इन सब गुणों को महिमामंडित करती है। रेडिकल नारीवादी यह मानते हैं कि पितृसत्ता के कारण ही महिलाएं स्वयं भी इन सब गुणों को ही स्वीकार करने लगती हैं। "रेडिकल नारीवाद पुरुष संस्कृति के मूल्यों को चुनौती देता है। वह नहीं चाहता कि महिलाएं पुरुषों का अनुसरण करें। इसके बजाय वह महिलाओं की पारंपरिक संस्कृति पर आधारित नए मूल्यों का सृजन चाहता है। नारी संस्कृति के उन सभी पहलुओं का वह निषेध करता है जो महिलाओं को पराधीन रखते हों जैसे कि अकर्मण्यता, आत्मत्याग आदि।

रेडिकल नारीवाद महिला उत्पीड़न का विश्लेषण करते हुए महिलाओं एवं पुरुषों के बीच के विनाशकारी सम्बन्धों को उजागर करता है। पितृसत्तात्मक विचारधारा महिलाओं को पुरुषों की काम पूर्ति का साधन समझती है और उनका कार्य केवल संतानों को पैदा करना और उनके पालन–पोषण करने तक को सीमित समझते हैं। पितृसत्ता महिलाओं में स्वाभाविक मातृत्व को मानती है जबकि रेडिकल नारीवादी ये मानते हैं कि पितृसत्ता के तहत महिलाएं जबरन थोपे गए मातृत्व और यौन गुलामी का शिकार होती हैं। उनके अनुसार महिलाओं को जबर्दस्ती मां बनने के लिए मजबूर किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पितृसत्ता महिलाओं को गर्भ निरोधक की जानकारी से वंचित रखती है। अधिकांश गर्भ निरोधक असुविधाजनक और खर्चीले भी होते हैं। यहां तक कि गर्भपात को भी पितृसत्ता नियंत्रित करती है। केवल मां बन सकने वाली महिलाओं को ही सम्मान योग्य एवं सम्पूर्ण समझा जाता है जबकि वे महिलाएं जो

संतान उत्पन्न करने में सक्षम नहीं हैं उन्हें स्वार्थी एवं अस्वाभाविक समझा जाता है। यहां तक कि रेडिकल नारीवादी मां बनने को जबरन करवाया गया श्रम कहते हैं।

"पुरुष ही इस बात को तय करते हैं कि संतान पैदा की जाए या नहीं, उनका पालन–पोषण किस हालात में किया जाए और एक सफल लालन–पालन किसे कहा जा सकता है। महिलाओं पर बस इस प्रक्रिया के दैनंदिन कार्यों की जिम्मेदारी होती है जिसका समग्र पुरुष नियंत्रित होता है। रेडिकल नारीवादी पितृसत्ता के हर उस चिह्न का विरोध करते हैं जो महिलाओं की स्वतन्त्रता में बाधक है, जैसे पर्दा करना, सौन्दर्य प्रतियोगिताएं, पोर्नोग्राफी आदि।

टिप्पणी

रेडिकल नारीवाद पितृसत्ता और पुरुष वर्चस्व को चुनौती देता है। वह पारंपरिक रूढ़ियों का त्याग कर महिलाओं को अपनी संस्कृति स्वयं बनाने पर बल देता है। ये एक ऐसा समाज बनाने पर बल देते हैं जहां महिलाएं पुरुषों की दखलअंदाजी से स्वतंत्र हो। जहां महिलाएं एक–दूसरे की मदद करें। जहां वह अपनी पहचान को गढ़ सकें और अपनी शक्तियों का विकास कर सकें।

ये महिलाओं को जबरन मातृत्व एवं यौन गुलामी के घेरे से मुक्त करवाना चाहता है। रेडिकल नारीवाद का मुख्य उद्देश्य ही महिलाओं का उनके शरीर पर स्वयं नियंत्रण कायम करवाना है। यह एक ऐसा समाज चाहता है जो रेडिकल नारीवाद के मूल्यों पर आधारित हो, जहां महिलाएं स्वतंत्र हो, पुरुषों की दखलंदाजी न हो, जहां स्वयं महिलाएं ही एक दूसरे का विकास कर सके। इसलिए रेडिकल नारीवाद समलैंगिकता को नारीवादी मूल्यों की स्थापना करने का एक जरिया मानता है जहां पर महिलाएं अपने आत्मीय सम्बन्धों की पुनर्रचना कर सकें।

मूल्यांकन

रेडिकल नारीवादी अपना सारा ध्यान पितृसत्ता के विभिन्न रूपों को उजागर करने पर केन्द्रित करते हैं परंतु इसका अंत कैसे होगा ये नहीं बताते। ये नारी मुक्ति की कोई स्पष्ट राह नहीं दिखाते। एलिसन जैगर रेडिकल नारीवादियों पर सवाल उठाते हुए यह पूछती है कि पुरुषों ने आखिर इन संस्थाओं का निर्माण क्यों किया और वे अब तक उन्हें क्यों बनाए हुए हैं? इस प्रश्न के उत्तर के लिए समाज एवं मानवीय स्वभाव की विस्तृत जांच पड़ताल होनी चाहिए। एलिसन जैगर मानती हैं कि स्त्रियों को अपने शरीर पर नियंत्रण जैसे लक्ष्य से कहीं बेहतर स्त्री का अपने सम्पूर्ण जीवन पर नियंत्रण होगा। अतः रेडिकल नारीवादियों को इस पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए था। इसके बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि रेडिकल नारीवाद ने नारीवाद के सिद्धांत को सबसे अधिक प्रभावित किया है। यह बहुत ही बेबाकी से अपने विचारों को रखता रहा है। और इसने महिलाओं की स्थिति का यथार्थ विश्लेषण बहुत ही गहराई से किया है।

समाजवादी नारीवाद/मार्क्सवादी नारीवाद

रेडिकल नारीवादी पितृसत्ता की कड़ी आलोचना करते हैं एवं इसके तौर–तरीकों को चुनौती देते हैं परंतु पितृसत्ता किस तरह खत्म होगी इस बारे में कोई बात नहीं करते। समाजवादी विचारधारा का उदय भी रेडिकल नारीवाद के साथ–साथ ही दूसरी लहर के साथ ही हुआ। यह विचारधारा मार्क्सवाद से प्रभावित थी। इनके अनुसार स्त्री के शोषण की जड़ें पूंजीवाद में छिपी हैं। इन्होंने स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति का विशेषण आर्थिक आधारों पर किया। सर्वप्रथम ये विचार एंगेल्स (1884) ने दिया था कि स्त्रियों

टिप्पणी

के उत्पीड़न की वजह उत्पादन के साधनों पर पुरुषों का एकाधिकार होना है। एंगेल्स (1984) का मानना था महिलाओं की गुलामी के कारण को केवल जीवविज्ञान के द्वारा नहीं समझा जा सकता बल्कि इसके लिए इसके इतिहास को समझना होगा। उसके अनुसार "भौतिकवादी अवधारणाओं के अनुसार, अंतिम तौर पर इतिहास का निर्धारक तत्त्व, जीवन के उत्पादन और पुनरुत्पादन में निहित होता है। लेकिन यह दो पहलुओं से गठित होता है। एक तरफ जीवनयापन, अन्न, कपड़ा और आश्रय के लिए साधन निर्मित करने का प्रश्न होता है तो दूसरी तरफ मनुष्य मात्र की स्वयं की उत्पत्ति का प्रश्न, उसकी प्रजाति के आगे बढ़ाने का प्रश्न होता है। लोग जिन सामाजिक संस्थाओं के तहत जीते हैं वे दोनों किस्म के उत्पादनों से–जिसमें एक तरफ श्रम के विकास की अवस्था तो दूसरी तरफ परिवार के विकास की अवस्था का प्रश्न शामिल होता है–निर्धारित होती है। श्रम का विकास जितना कम होगा और उसके उत्पादन की मात्रा उतनी सीमित होगी लिहाजा उसकी कुल संपत्ति भी सीमित होगी वहां सामाजिक प्रणालियां ज्यादा तौर पर लिंग/यौन सम्बन्धों के हिसाब से निर्धारित होती दिखेंगी।" पहले के समाजों में महिलाएं घर के भीतर के साधनों पर और पुरुष घर के बाहर के साधनों पर अपना नियंत्रण रखते थे। समय बीतने के साथ–साथ घर के बाहर के साधनों में वृद्धि होती चली गई और इसलिए पुरुष वर्चस्व बढ़ता गया और मातृसत्तात्मक समाज, पितृसत्तात्मक समाज में तबदील होता चला गया। इसलिए यह विचारधारा ये मानती है कि स्त्री की मुक्ति तब तक संभव नहीं है जब तक वे अपनी घरेलू भूमिका का त्याग कर उत्पादन के क्षेत्र में कदम नहीं रखतीं। धीरे–धीरे उत्पादन के क्षेत्र में अपनी भागीदारी तो निभाने लगीं परंतु उनकी भूमिका बेहद ही सीमित थी। उत्पादन की नई–नई तकनीकों ने भी महिलाओं को कार्य क्षेत्र से बाहर निकलने का अवसर दिया। समाज इस धारणा पर चलने लगा कि महिलाओं की आय तो पूरक आय होती है। घर का मुख्य कर्ता–धर्ता पुरुष ही है जो घर एवं परिवार के लिए जीविका जुटाता है। इस प्रकार जैसे–जैसे औद्योगिकीकरण बढ़ता चला गया वैसे–वैसे महिलाएं घरों तक ही सीमित होती चली गई।

मार्क्सवादी पूंजीवादियों का ये भी मानना था कि पूंजीवाद, पितृसत्ता की जड़ों को मजबूत करता है। हालांकि पितृसत्ता का उदय पूंजीवाद से पहले का माना जाता है परंतु पूंजीवाद के हस्तक्षेप ने पितृसत्ता की जड़ों को मजबूत किया है इसमें कोई दो राय नहीं है। समाजवादी नारीवादियों ने ये प्रश्न उठाया कि स्त्रियों को बाहर कार्य करने का अधिकार क्यों नहीं है? साथ ही महिलाएं यदि कमाती हैं तो उनकी आय को पूरक आय समझा जाता है, घर की मुख्य आय का स्रोत पुरुष की आय को ही माना जाता है। कार्य का विभाजन लिंग के आधार पर किया जाता है और स्त्रियों द्वारा किए गए कार्य को हीं माना जाता है।

कई जगह समाजवादी नारीवादी, मार्क्सवादी नारीवादियों से सहमत नजर नहीं आते। वे पूंजीवादियों की इस बात से बिलकुल भी सहमत नहीं थे कि महिलाओं को पूंजी संचय के लिए उत्पादन के क्षेत्र में श्रम करना चाहिए। समाजवादी मानते थे कि पूंजीवादी महिलाओं की स्थिति को लेकर अधिक चिंतित नहीं है। उनका सारा ध्यान सिर्फ पूंजी पर ही केन्द्रित है जबकि महिलाएं घरों में श्रम करके अपना महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। छोटे बच्चों वाली महिलाओं के लिए तो घर में और अधिक काम होता है। इतना सारा काम करने के बावजूद उनको इस श्रम के लिए किसी भी प्रकार का

वेतन नहीं दिया जाता। यह भी एक प्रकार का शोषण ही है। इस प्रकार समाजवादियों ने महिला घरेलू श्रम को लेकर एक नई एवं सार्थक बहस को जन्म दिया।

समाजवादी नारीवादियों ने पूंजीवाद से आगे बढ़कर महिलाओं की स्थिति पर विचार किया। उन्होंने इस बात को उजागर किया कि विवाह उपरांत पत्नी पर पति की सम्पूर्ण सत्ता होती है। वह पत्नी के ऊपर शारीरिक, मानसिक रूप से अपना वर्चस्व स्थापित करता है और उसके विभिन्न कार्यों पर भी नियंत्रण रखता है। उसका इस तरह से अपनी सत्ता स्थापित करना ही उत्पीड़न है। "वैवाहिक सम्बन्धों की संरचना को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि जब कोई महिला पत्नी बनती है, वह अपने समूचे व्यक्तित्व एवं सेवाएं पति को अर्पण करती है। समस्या महज यह नहीं होती कि पत्नी एक बिना उजरती श्रमिक होती है बल्कि उसका समूचा व्यक्तित्व इसमें उसका शारीरिक वजूद और उसकी क्षमताएं शामिल हैं, वे सभी विवाहकाल के दौरान पति की सेवा में हाजिर रहती हैं। पति की सत्ता इसी बात में अंतर्निहित होती है कि वह पत्नी के व्यक्तित्व और उसके घर व काम सभी पर नियंत्रण रखता है। जाहिर सी बात है ऐसी स्थिति में घरेलू हिंसा और वैवाहिक बलात्कार जैसी चीजों के खिलाफ कोई कानूनी या अन्य किस्म का प्रभावी उपाय ढूंढ़ा नहीं जा सका है।" (झा, 2011)। महिलाएं यदि बाहर जाकर कार्य करती हैं तो उनको अधीनता एवं शोषण या फिर अलगाव का सामना करना पड़ता है। उनको अक्सर अच्छे ओहदे से दूर रखा जाता है। मजदूरी भी कम दी जाती है। कार्यस्थल पर यौन शोषण भी होता है। वे घर एवं बाहर दोनों स्थान पर पूरी लगन के साथ कार्य करती हैं परंतु उनके कार्य को कहीं भी गरिमापूर्ण सम्मान नहीं मिलता। इन सभी समस्याओं को समाजवादी नारीवादियों ने न केवल हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया अपितु मजदूर वर्ग की महिलाओं के अनेक संगठन बनाए और उनके हक में आवाज भी उठाई।

टिप्पणी

समाजवादी नारीवादियों ने ही पहली बार घर से बाहर कार्य करने वाली महिलाओं की समस्याओं को पहचाना और उस मुद्दे पर महिलाओं को जाग्रत करने के लिए संगठन बनाए। कैरोल पेटमन (1988) के अनुसार "चूंकि तनख्वाह या मजदूरी को पारिवारिक वेतन समझने की धारणा रही है, लिहाजा महिलाओं की आय को पति की आय के पूरक के तौर पर ही माना जाता रहा है। महिलाओं को पत्नियों के रूप में ही देखा गया है जिसका मतलब है कि पत्नियां अपने पति पर आर्थिक तौर पर निर्भर समझी जाएंगी जिन्हें घरेलू काम के बदले जीवन निर्वाह के साधन मिलेंगे। इस तरह वेतन का मसला लैंगिक आधारों पर विभेदीकरण का होता है। महिला श्रमिकों को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है और इस तरह महिलाएं पत्नियां बन सकें इसका एक आर्थिक आकर्षण भी बनाए रखा जाता है...पारिवारिक वेतन पर जोर की रणनीति के जरिए पुरुष उजरती काम के विभिन्न क्षेत्रों से महिलाओं को अलग–थलग करने में और घर के अंदर मालिक के तौर पर पुरुष की स्थिति को मजबूत करने में सफल हो सके।"

घर से बाहर कार्य करने वाली महिलाओं के घर एवं बाहर के कार्य और घर से बाहर कार्य करने वाले पुरुष के घर एवं बाहर के कार्यों की एक सूची बनाइए। क्या आपको कोई अंतर नजर आता है? कक्षा में इस अंतर एवं इसके कारणों पर चर्चा कीजिए।

टिप्पणी

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह विचारधारा उन सभी प्रवृत्तियों को खंडन करती है जो पितृसत्ता को अपना आधार बनाकर चलते हैं। यह मजदूर वर्ग और गरीब महिलाओं के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित करता है। उनके घरेलू श्रम की पहचान करता है और उनको इस दृष्टिकोण से एक सम्मान प्रदत्त करता है। साथ ही इन्होंने घर–घर कार्य करने वाली महिलाओं एवं उत्पादन में अपना योगदान देने वाली महिलाओं को संगठित करने का प्रयास भी किया है। खेती करने वाली महिलाओं के लिए उनकी अपनी जमीन के लिए भी आवाज उठाई है।

मनोविश्लेषणवादी नारीवाद

मनोविश्लेषणवादी नारीवाद मुख्यतः फ्रायडीय मनोविश्लेषण का विरोध करता है। फ्रायड को स्त्री विरोधी कहा जाता है। वे स्त्रियों के मस्तिष्क को हार्मोन्स से संचालित बताते हैं और स्त्रियों को पुरुष की पूर्णता एवं लिंग से ईर्ष्यालु (पेनिस एनवी) बताते हैं। वे यह भी कहते हैं कि आखिर स्त्रियां चाहती क्या हैं? फ्रायड के अनुसार बच्चे विपरीत लिंग के अभिभावकों के प्रति आकर्षण महसूस करते हैं और समलिंगी अभिभावक के प्रति प्रतिद्वंद्विता। जैसे–जैसे वे बड़े होते हैं, वे सामंजस्य स्थापित करने लगते हैं। लड़कियां मां की तरह और लड़के अपने पिता की तरह व्यवहार करने लगते हैं। यह एक प्रकार की सोशल कंडिशनिंग है। पुल्लिंग होने का बोध होते ही पुरुषों में बचपन से उत्पन्न मातृमोह से मुक्त होने की कठिन प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस कारण वे अपने आप से संघर्ष करते हैं और यह प्रक्रिया उनको आत्मनिर्भर, सामाजिक, बहिर्मुखी, अनुशासनप्रिय एवं निर्णायक बनने में मदद करती है। चूंकि स्त्रियों को इस प्रक्रिया से नहीं गुजरना पड़ता इसलिए वे अंतर्मुखी, कोमल और कमजोर रह जाती हैं। फ्रायड के इस कथन का नारीवादियों ने बहुत विरोध किया। नारीवादियों का मानना था कि स्त्रियों में बहुत गहरे से किसी के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े रहने की क्षमता अधिक होती है और उनका यही भावनात्मक समर्पण भाव उनकी स्वतंत्र अस्मिता के निर्माण में सहायक है। इस प्रकार मनोविश्लेषणवादी नारीवादियों ने फ्रायड का विरोध करके उसके विचारों का खंडन किया।

पर्यावरणीय नारीवाद

पर्यावरणीय नारीवाद को रेडिकल नारीवाद का ही विकसित रूप माना गया। इस विचारधारा के अनुसार स्त्रियों में प्रकृतिक रूप से कुछ गुण निहित हैं जैसे–प्रकृति से निकटता, पालन–पोषण करने के गुण, शांति बनाए रखने की भावना आदि और इसी प्रकार पुरुषों में कुछ गुण प्राकृतिक रूप से निहित हैं जैसे–हिंसा करना या दूसरों पर हावी होना। स्त्री को प्रकृति के अधिक करीब माना गया जबकि पुरुष को संस्कृति के। चूंकि संस्कृति हमेशा प्रकृति पर हावी रही है इसलिए पुरुष भी स्त्रियों पर वर्चस्व कायम करते रहे हैं।

वर्तमान समय में पर्यावरण के क्षय के कारण सबसे अधिक स्त्रियों की स्थिति दयनीय हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को ईंधन, चारा और पानी की खोज में दूर–दूर तक भटकना पड़ता है और कई–कई किलोमीटर तक पैदल चलके जाना पड़ता है। इससे उनका समय और शक्ति दोनों ही नष्ट होते हैं। गरीबी में ईंधन की

कमी और खराब हालत में खाना बनाने और खराब पानी के कारण स्त्रियों एवं उसके परिवार के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन सब खामियों का ये परिणाम रहा कि महिलाओं ने पर्यावरण से संबधित आंदोलनों में बढ़–चढ़ कर भाग लिया। पर्यावरण को बचाने के लिए महिलाओं का एक लंबा संघर्ष रहा है। इनमें 1930 में टेहरी गढवाल के राजा द्वारा बनाए गए वन कानून के विरोध में किया गया संघर्ष उल्लेखनीय है। इसके बाद 1973 का चिपको आंदोलन चमोली जिले के पहाड़ी कस्बे के वनों को बचाने के लिए प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में केवल पुरुष ही इस आंदोलन से जुड़े थे, परंतु बाद में महिलाओं ने भी इस आंदोलन में बढ़–चढ़ कर भाग लिया और पेड़ काटने आए ठेकेदारों को वापस लौटने के लिए विवश कर दिया। इसमें महिलाएं पेड़ों को काटने से बचाने के लिए पेड़ों से चिपक गईं इसलिए इसका नाम चिपको आंदोलन पड़ा। उत्तराखंड के अल्मोड़ा में खनन कार्य के विरुद्ध भी महिलाओं ने ही मोर्चा खोला। इस प्रकार महिलाओं की पर्यावरण सक्रियतावाद का एक पुराना इतिहास रहा है।

टिप्पणी

इस विचारधारा के अनुसार प्रकृति एवं नारी के सामंजस्य से ही समानता स्थापित हो सकती है। पर्यावरण और नारीवादी आंदोलन दोनों ही समानता की वकालत करते हैं जिसमें कोई बड़ा या छोटा नहीं है। दोनों की मंजिल एक है इसलिए जरुरत है कि दोनों ने साथ मिलकर एक समान परिप्रेक्ष्य एवं सिद्धान्त को विकसित किया। इन नारीवादियों ने पर्यावरण को बचाने में अपना बहुमूल्य योगदान देकर महिला सशक्तीकरण की नई मिसाल कायम की।

वंदना शिवा एक पर्यावरण कार्यकर्ता एवं पर्यावरण नारीवादी लेखिका हैं। देहारादून में जन्मी वंदना को बचपन से ही प्रकृति से बहुत लगाव था। 1970 में वंदना शिवा 'चिपको आंदोलन' से जुड़ी थीं। उसके बाद से ही उन्होंने पर्यावरण संरक्षण को ही अपने जीवन का पर्याय मान लिया। 1979 में अपनी पीएच.डी. को पूरा करने के बाद 1982 में उन्होंने रिसर्च फाउंडेशन फॉर साइन्स टेक्नोलॉजी एंड ईकोलॉजी की स्थापना की। वंदना शिवा को भारत में कई जैविक अभियान प्रारम्भ करने का श्रेय जाता है। इन्होंने मूल बीज को बचाने और जैविक कृषि को प्रोत्साहित करने के लिए 1987 में नवधान्य नामक संगठन की स्थापना की।

अश्वेत नारीवाद

अश्वेत नारीवाद वर्ग, नस्ल और लैंगिक शोषण को एक–दूसरे से संबंधित मानता है। कई वर्षों से नारीवाद की बात तो होती रही है परंतु नस्ल एवं वर्ग को लगातार नजरअंदाज किया जाता रहा। मुख्यतः नारीवाद की दूसरी लहर के बाद नारीवादियों पर ये आरोप लगने लगे कि नारीवाद अश्वेत महिलाओं की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम नहीं है। इसके बाद इन नारीवादियों ने स्वयं संगठन का निर्माण करके अश्वेत स्त्री के अनुभवों और उसके विचारों को शामिल करते हुए उनकी समानता के लिए लड़ाई लड़ी।

भारतीय संदर्भ में नारीवाद

यदि हम भारत के संदर्भ में बात करें तो यहां नारीवाद का इतिहास बहुत पुराना है। इसका प्रारम्भ समाज–सुधारक आंदोलनों से माना जा सकता है। यह प्रक्रिया उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई। भारत में ब्रिटिश शासन था और भारत उसका एक उपनिवेश

टिप्पणी

था। ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपने पांव फैलाने के लिए यहां अपनी शिक्षा का प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया था। इस शिक्षा का एक सकारात्मक पहलू यह हुआ कि इस शिक्षा को ग्रहण करने वालों ने भारत में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों एवं असमानताओं को पहचानना शुरू कर दिया। वे इन प्रथाओं को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगे और इनका मूल्यांकन करने लगे। इन सामाजिक कुरीतियों में सती प्रथा, बाल–विवाह, पर्दा प्रथा जैसी भयंकर प्रथाएं शामिल थीं। सती प्रथा के विरोध में अपनी आवाज बुलंद करने और इसको समाप्त करवाने का श्रेय बंगाल के राजा राममोहन राय को जाता है। वे अपने भाई की पत्नी को जबरन सती करने की बात से इतने व्यथित हुए कि उन्होंने इस क्रूर प्रथा के खिलाफ आवाज उठाने का निर्णय लिया।

"स्त्रियों के सरोकारों से संबंधित ऐसे अनेक मुद्दे जो उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में नारी आंदोलन का आधार बने, उनमें से दो प्रारम्भिक आंदोलन समान विचारों वाले लोगों द्वारा शुरू किए गए परंतु वे अलग–अलग तरह से विकसित हुए। स्त्रियों को शिक्षित करने के महत्व पर सबसे पहली सार्वजनिक बहस राममोहन राय द्वारा 1815 में स्थापित आत्मीय सभा द्वारा बंगाल में छेड़ी गई। उसी वर्ष उन्होंने एक भारतीय भाषा (बंगाली) में सती पर हमला बोलते हुए पहला लेख लिखा।" (कुमार, 2002)

1818 में उन्होंने कुछ शिक्षित लोगों के साथ मिलकर 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। इन्होंने लोगों को इस प्रथा के खिलाफ जाग्रत करना शुरू कर दिया और एक नए कानून की मांग करने लगे परंतु ब्रिटिश संसद ने सती के मुद्दे पर कुछ भी करने से यह कहकर इंकार कर दिया कि यह हिन्दू धर्म का मामला है। अंततः समय की मांग को देखते हुए 1818 में बंगाल के गवर्नर ने उस प्रांत में रोक लगा दी जबकि पूरे भारत में इस पर रोक लगाने में 11 वर्ष का समय और लगा। 1829 में वह इस प्रथा को रोकने के लिए कानून बनवाने में सफल रहे। 1829 में जब विलियम बैंटिक भारत के गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने इस क्रूर प्रथा पर पूरी तरह रोक लगा दी। ऐसे और भी लोग थे जो उस समय समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति लड़ रहे थे। इनमें ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन जैसे लोग शामिल थे जो बाल–विवाह एवं विधवा पुनर्विवाह के लिए लड़ रहे थे। उस समय बहुत कम उम्र में (रजस्वला होने से पूर्व) लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। ऐसे में वे जल्दी मां भी बनती थीं जिसके दुष्परिणाम उनके शरीर को झेलने पड़ते थे। इसके अलावा यदि कोई लड़की जल्दी विधवा हो जाती थी तो उसका जीवन यातनाओं से भर जाता था। इन सब में सुधार लाने के भरसक प्रयास किए गए।

लगभग उसी समय महाराष्ट्र में 'प्रार्थना सभा' की स्थापना हुई जिसके प्रमुख महादेव गोविंद रानाडे थे। इसकी स्थापना मुख्यतः स्त्री शिक्षा, बालविवाह का विरोध करने एवं विधवा विवाह का समर्थन करने के लिए की गई थी। उत्तर भारत की तरफ सामाजिक सुधार आंदोलनों की शुरुआत दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना करके की। हर तरफ इन कुप्रथाओं के खिलाफ चेतना का प्रसार किया जा रहा था। इन्होंने सक्रिय रूप बाल–विवाह का विरोध और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। नई चेतना एवं जागृति का वातावरण बन रहा था। ये सभी आंदोलन स्त्री शिक्षा के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे थे। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा फुले एवं उनकी पत्नी सावित्री फुले का योगदान अतुलनीय है। इन दोनों ने ही समाज में फैली छुआछूत जैसी

असमानता पर ध्यान दिया और समाज में निम्न माने जाने वाले वर्ग की कन्याओं के लिए पाठशालाएं खोलीं। जिस समय समाज में स्त्री शिक्षा और विशेषतः दलित स्त्रियों की शिक्षा निषेध थी, ज्योतिबा फुले ने अपनी पत्नी को शिक्षित किया और उनको कन्या विद्यालय का दायित्व सौंपा। अपने इस कार्य के लिए दोनों को ही सवर्ण एवं दलित समाज के विरोध का सामना करना पड़ा था। परंतु उन्होंने अपने प्रयासों को जारी रखा।

टिप्पणी

स्त्री शिक्षा के लिए ईसाई मिशनरियों ने भी बड़े पैमाने पर स्कूल खोले परंतु भारतीयों को यह डर था कि वे इन स्कूलों में ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं। इसी वजह से स्त्री शिक्षा के लिए विभिन्न भारतीय संगठनों ने स्कूल खोले। इन स्कूलों में भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जाती थी।

स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुआ तो उन्होंने स्वयं भी अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। चाहे वह कारखानों में कार्य करने के घंटे हो या फिर विवाह की न्यूनतम उम्र हो इन सबके लिए ही आंदोलन चलाया गया। आर्य समाज द्वारा चलाए गए आंदोलन में लड़कियों के विवाह की न्यूनतम उम्र को 16 वर्ष करने का प्रस्ताव रखा गया। इतने प्रयासों के बाद भी 1891 में विवाह की न्यूनतम आयु जो पहले 10 वर्ष थी उसको 12 वर्ष कर दिया गया। बहुत सारे लोगों ने इस फैसले का विरोध भी किया परंतु स्त्री को सशक्त बनाने एवं समाज के कल्याण के लिए यह एक आवश्यक कदम था।

जिस प्रकार पश्चिम में नारीवाद के उदय के लिए स्त्री साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण रही है उसी प्रकार भारतीय संदर्भ में भी स्त्रियों ने स्त्रियों की स्थिति के बारे में लिखा है। ये बात अलग है कि उनके लिखे हुए को पश्चिमी साहित्य जैसी लोकप्रियता नहीं मिल पाई। तारा बाई शिंदे ने 1882 में अपनी पुस्तक 'स्त्री–पुरुष तुलना' में स्त्री के प्रति समाज में होने वाले अन्याय एवं उनके प्रति समाज में फैले भेदभाव की घोर आलोचना की है। वे अपनी इस पुस्तक में स्त्री को भी पुरुष के समान गुणी बताती हैं। उनके अनुसार स्त्री एवं पुरुष में समान योग्यताएं होती हैं। परंतु स्त्री को कमतर आंका जाता है और उनका उत्पीड़न किया जाता है। इसी प्रकार एक अज्ञात हिन्दू औरत (1882) द्वारा लिखी गई पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' हमें उस समय चारदीवारी में बंद समाज में स्त्री की स्थिति का आभास कराती है। यहां स्वयं लेखिका का अपने नाम के स्थान पर 'एक अज्ञात औरत' लिखना भी उस समय के समाज में महिलाओं का दर्जा एवं उनके भय को दर्शाता है। लगभग उसी काल में बहुत सी बंगाली महिलाओं ने भी अपनी आत्मकथाओं में उस समय के सामाजिक जीवन एवं उसमें स्त्री की स्थिति को रेखांकित किया है जो नारीवादी दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। महादेवी वर्मा (1938) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'शृंखला की कड़ियां' में भारतीय स्त्री जीवन के अनेक पहलुओं को उजागर करती हैं। वे स्त्री के प्रति हो रहे अन्याय को एवं उसकी विषम परिस्थितियों को अनेक बिन्दुओं से देखती और परखती हैं। वे स्त्री और पुरुष जीवन की तुलना करते हुए स्त्री को वह सब अधिकार देने की मांग करती हैं जिनसे स्त्री आजतक वंचित रही है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही इन सभी समाज सुधारक आंदोलनों का प्रभाव नजर आने लगा था। इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना भी इसी काल में हुई। इस काल में सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट जैसी कई

टिप्पणी

महिलाएं सक्रिय थीं और उनका समाज में प्रभाव था। इनके प्रभाव एवं राष्ट्रीय आंदोलनों की लहर तेज होने के कारण अब महिलाएं भी इन आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगीं। जैसे–जैसे स्वतन्त्रता आंदोलन तेज होने लगा, वैसे–वैसे विभिन्न आंदोलनों एवं संगठनों में उनकी उपस्थिति में इजाफा होने लगा। वे महिलाएं जो पहले कभी घर की दहलीज से बाहर भी नहीं निकली थीं, वे भी इन आंदोलनों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रही थीं। अब घर के पारंपरिक वातावरण को त्यागकर हर वर्ग की स्त्रियां धरने एवं जुलूस का हिस्सा बन रही थीं। वे गिरफ्तारी से भी नहीं हिचकिचाती थीं।

न केवल पारंपरिक स्त्रियों ने बल्कि पढ़ी–लिखी शिक्षित स्त्रियों ने भी स्वतन्त्रता आंदोलन में अपनी भूमिका खूब निभाई। इन्होंने समाज में फैली कुरीतियों जैसे बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जादू टोना, अशिक्षा आदि के खिलाफ महिलाओं को जागरूक करने का काम किया साथ ही अपने लेखन से राष्ट्रीय आंदोलन में अधिक से अधिक महिलाओं को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित भी किया। सरोजिनी नायडू ने अपने एक भाषण में कहा था कि 'पालना झुलाने वाले हाथ ही विश्व पर शासन करते हैं।' स्त्रियों को विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के लिए बहुत से महिला संगठन मदद कर रहे थे। इनमें देश सेविका संघ, नारी सत्याग्रह समिति, महिला राष्ट्रीय संघ, स्त्री स्वराज्य संघ आदि शामिल थे। (कुमार, 2002)

इस काल में स्त्री चेतना का सबसे बड़ा श्रेय महात्मा गांधी को जाता है। उन्होंने स्त्री शक्ति को पहचाना और देश में स्त्रियों को अपना योगदान देने के लिए आगे आने को कहा। उन्होंने स्त्रियों की क्षमता को दक्षिण अफ्रीका में रहकर पहचाना। यहां उन्होंने महसूस किया कि उनके राजनीतिक विचारों को सबसे अधिक समर्थन महिलाओं द्वारा ही मिला है। गांधी जी के नेतृत्व में खूब महिलाएं जेल गईं और कठोर से कठोर सजा भुगती परंतु उन्होंने उफ़ तक नहीं किया। दक्षिण अफ्रीका के उनके सत्याग्रह आंदोलन में उनकी पत्नी कस्तूरबा एवं वहां की अश्वेत महिलाओं ने उनका पूरा साथ दिया। सत्याग्रह आंदोलन से ही महिलाओं की आत्मबलिदान की क्षमता का उनको ज्ञान हुआ।

हालांकि गांधी जी द्वारा स्त्रियों की आत्मबलिदान की क्षमता को पहचानना कोई नई बात बात नहीं थी क्योंकि भारत के समाज सुधारक पहले ही उनकी इस क्षमता की प्रशंसा कर चुके थे। गांधी जी के अनुसार, "स्त्री–पुरुष के मध्य जैविक भिन्नता जहां उनके पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व का निर्माण करती है, वहीं इसका आशय यह भी है कि दोनों अलग–अलग भूमिकाओं के लिए पैदा हुए हैं। ये भूमिकाएं सदिच्छात्मक एवं समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। पुरुष की भूमिका जहां जीविकोपार्जन की थी वहीं स्त्री की भूमिका गृहिणी एवं मां के रूप में थी। पहले से जारी मातृत्व के गुणों और भूमिकाओं की बहस और उसके नियमों का गांधी ने यहां फिर पुनः रूपायन किया।" (कुमार, 2002)

गांधी जी पर लिखे अपने लेख में मधु किश्वर उस बात का उल्लेख करती हैं कि उन्होंने सार्वजनिक जीवन में महिलाओं में आत्मविश्वास जगाकर उनको ऊंचा स्थान प्राप्त करवाया। 1920 में गांधी जी ने महिलाओं से अपने घर से निकल कर सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने को कहा और उनसे विदेशी दवाओं, शराब की दुकानों आदि की घेराबंदी करने को कहा गया। उनके नमक सत्याग्रह वाले आंदोलन (1930) में लाखों महिलाओं ने भाग लिया था जो इस बात का संकेत था कि स्त्री अब घर की

बेड़ियां तोड़कर बाहर निकाल रही हैं और एक नए राष्ट्र के निर्माण के लिए अपना योगदान दे रही हैं। इसी प्रकार स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन, शराबबंदी आंदोलन जैसे विभिन्न आंदोलनों में उनकी भूमिका अग्रणी रही। एक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों का इस तरह बाहर निकल कर आंदोलनों में भाग लेना एवं जेल जाना कोई छोटी बात नहीं थी।

टिप्पणी

15 अगस्त, 1947 को देश स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही महिलाओं की आंदोलनकारी भूमिका समाप्त हो गई। अब स्त्रियां पुनः अपने घरों तक ही सिमट गईं। समाज की संकुचित सोच फिर से स्त्री जीवन पर हावी हो गई। इसलिए महिला सशक्तीकरण के लिए बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता थी। स्त्रियों की साक्षरता दर बहुत कम थी। वे या तो स्कूल जाती ही नहीं थीं या फिर बीच में ही उनको अपनी पढ़ाई छोड़ देनी पड़ती थी। देश के आर्थिक ढांचे में भी महिलाओं का योगदान बहुत कम था, वे केवल घरेलू कार्यों एवं भूमिका तक सीमित हो गई थीं। पुरुषों का वर्चस्व समाज में कायम था। यह भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा था। लैंगिक आधार पर असमानता का कोई वजूद था ही नहीं। स्वतन्त्रता के बाद 'तेलंगाना आंदोलन' में स्त्रियों की भागीदारी फिर से दिखाई दी वहां भूमि सुधारों एवं पुनर्वितरण को लेकर हो रहे आंदोलनों में हजारों की संख्या में स्त्रियों ने भाग लिया। इसी प्रकार स्त्रियों की महत्वपूर्ण उपस्थिति उत्तराखंड के जंगल के वृक्षों को काटने से बचाने के लिए नजर आई। यहीं से ईको–नारीवाद का भी प्रारम्भ हुआ। ये महिलाएं हजारों की संख्या में पेड़ों को काटने से बचाने के लिए उनसे जाकर चिपक गईं और इस तरह पर्यावरण संरक्षण के लिए अपनी जान को भी जोखिम में डालने से नहीं कतराईं।

सातवें एवं आठवें दशक में शराबबंदी एक मुख्य मुद्दा रहा जिसके लिए महिलाओं ने जगह–जगह आंदोलन प्रारम्भ किए। वैसे तो ये आंदोलन उन जगहों पर अधिक थे जहां महिलाएं घर–बाहर दोनों संभालती थीं और पुरुष केवल शराब का सेवन करते थे। इन महिलाओं ने अपने परिवार की सुख–शांति और समृद्धि के लिए इन आंदोलनों का रुख किया क्योंकि उनका मानना था कि शराब ही उनके सुखी परिवार को बाधित कर रही है और उनके साथ होने वाली हिंसा का कारण भी यह शराब ही है।

90 के दशक से स्त्री आन्दोलनों का मुख्य मुद्दा 'बलात्कार' बना। ऐसी बहुत सी घटनाएं हुईं जिनकी आवाज पूरे समाज तक पहुंची और समाज में न्याय की मांग उठने लगी। इनमें हैदराबाद में पुलिस द्वारा पहले रिक्शा चालक की पत्नी का बलात्कार एवं उसके बाद रिक्शा चालक की हत्या के खिलाफ पूरे हैदराबाद में उग्र प्रदर्शन हुआ। परंतु पर्याप्त सबूतों के अभाव में किसी को सजा नहीं हो पाई।

1972 का मथुरा बलात्कार के खिलाफ भी पूरे देश की महिलाओं ने एकजुट होकर प्रदर्शन किए थे। यह कुकृत्य भी पुलिस द्वारा ही किया गया था। इसमें पुलिस वालों की गिरफ्तारी भी हुई परंतु न्यायालय ने उनको यह कारण देकर छोड़ दिया कि मथुरा के पहले से ही अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध हैं। यह घटना हमारे देश की न्याय प्रणाली में व्याप्त पुरुष सत्ता को दर्शाती है जिसके अनुसार यदि किसी लड़की के अन्य लड़के से संबंध हो तो बाकी पुरुषों को भी उसके ऊपर अधिकार मिल जाता है। इस केस ने पूरे देश में हलचल मचा दी। विभिन्न नारीवादियों ने यौन अपराध के प्रति

न्यायिक व्यवस्था एवं समाज के दृष्टिकोण में बदलाव की मांग की। इसके अतिरिक्त रूपकुंवर के सती होने की घटना ने भी सनसनी मचा दी। राजस्थान में एक पढ़ी–लिखी लड़की रूपकुंवर को उसके पति की मृत्यु होने के बाद सती होने के लिए बाध्य किया गया। इसके विरोध में खूब प्रदर्शन हुए।

टिप्पणी

इसी प्रकार भंवरी देवी केस ने कानून में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में अपनी भूमिका अदा की। राजस्थान में बालविवाह के विरुद्ध लड़ने वाली भंवरी देवी गांव के कुछ दबंगों की बुरी नीयत का शिकार हुई और उसका सामूहिक बलात्कार किया गया। इसके विरोध में खूब उग्र प्रदर्शन हुए और मदद के लिए कई महिला संगठन आगे आए। परंतु सभी आरोपी हाई कोर्ट से छूट गए क्योंकि ये समाज के सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। इस निर्णय के बाद 'विशाखा' नामक संगठन सामने आया और इस केस को फिर से उठाया गया। एक लंबी लड़ाई के बाद कामकाजी महिलाओं के लिए कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने के लिए जारी की गई 'विशाखा गाइडलाइन' का पालन करना अनिवार्य कर दिया। अब प्रत्येक कार्यस्थल पर चाहे वह सरकारी हो या निजी, एक आंतरिक शिकायत निवारण कमेटी बनाने का आदेश दिया गया। यह स्त्री यौन उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने वाले सभी संगठनों की जीत थी।

इसी प्रकार का एक केस दिसम्बर 2012 में हुआ जिसे हम सब 'निर्भया केस' के नाम से जानते हैं। चलती बस में निर्भया का अमानुषिक ढंग से बलात्कार की घटना ने पूरे देश को एक कर दिया था। इसके खिलाफ पूरे देश में तो प्रदर्शन हुए ही साथ ही वैश्विक स्तर पर नारीवादियों ने इसकी निंदा की। इस केस के लिए जस्टिस वर्मा कमेटी नियुक्त की गई जिसने इस घटना को देखते हुए यौन हिंसा के विरुद्ध कानूनों में काफी बदलाव करने का सुझाव दिया। इसके अधिकतर सुझावों को मान लिया गया केवल वैवाहिक बलात्कार जैसी अवधारणा को खारिज कर दिया गया।

इसी प्रकार लक्ष्मी अग्रवाल के साथ एसिड अटैक की दुर्घटना हुई थी और फिर उसके द्वारा लड़ी गई कानूनी लड़ाई के कारण ही एसिड अटैक को जघन्य एवं घिनौने अपराध की श्रेणी में रखा गया और सजा के प्रावधान में भी बदलाव लाया गया।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत सारी ऐसी समस्याएं हैं जिनका सामना आज की पीढ़ी कर रही है। इनमें कन्या भ्रूण हत्या, दहेज, बाल–बलात्कार, वैवाहिक बलात्कार, दुगना कार्यभार संभालती स्त्री, यौन शोषण, हिंसा, आनर किलिंग, जातिगत बलात्कार जैसी दुर्लभ समस्याएं हैं। इसके अतिरिक्त मामला केवल स्त्री–पुरुष का ही नहीं है बल्कि इसमें थर्ड जेंडर को भी शामिल किया जाना आवश्यक है। वे अपनी पहचान के संकट के साथ–साथ, अपनी जीविका के संकट के लिए भी जूझ रहे हैं। शिक्षा में उनकी हिस्सेदारी न के बराबर है। सिर्फ एक हिजड़ा 'लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी' के कुछ बन जाने से समाज में इनका स्थान सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। अन्य हजारों हिजड़े अंधे कुएं में हैं जिनको समाज में पहचान दिलाने की जरूरत है। वास्तव में अपनी पहचान बनाने की क्षमता तो हर व्यक्ति रखता है परंतु उसके अवसर प्रदान करना पूरे समाज का दायित्व है। ये दायित्व तभी पूरा हो सकेगा जब हमारे सामने इनकी परिस्थितियां उजागर होंगी। इनके जीवन को जानने–समझने के लिए इनके बारे में लिखे गए साहित्य का अध्ययन करना कारगर सिद्ध होगा।

दरअसल स्त्री को अपने सशक्तीकरण के लिए एक लंबी दूरी तय करनी है। कुछ समस्याओं के समाधान कानून करता है तो कुछ समस्याओं का समाधान समाज करता है। स्त्री प्रश्नों की एक लंबी सूची आज भी मौजूद है। कुछ समस्याएं बदली हैं और कुछ समस्याओं का स्वरूप बदला है परंतु समस्या समाप्ति की कोई दिशा नहीं दिखाई देती। नारीवादियों के आपसी मतभेदों ने स्त्री एकता को तोड़कर नारीवाद का बहुत नुकसान किया है। साथ ही ये बात भी समझनी होगी कि सिर्फ स्त्री को साथ लेकर समानता की स्थापना नहीं की जा सकती। स्त्री एवं पुरुष दोनों को ही इस दिशा में कदम उठाने होंगे। वर्तमान समस्याओं और परिस्थितियों को देखकर यह लगता है कि स्त्रियों को अपनी स्थिति से अवगत करवाने के साथ–साथ पुरुषों को भी इस दिशा में संवेदनशील बनाने की जरूरत है। ऐसा महसूस किया गया इसलिए हर विश्वविद्यालय में लैंगिक अध्ययन विभाग की स्थापना की गई है। नारीवाद केवल स्त्रियों की समस्याओं के बारे में ही विचार करता है, जबकि लैंगिक अध्ययन स्त्री, पुरुष एवं अन्य लिंगों की भी बात करता है। केवल नारीवाद और स्त्रियों की भागीदारी से लैंगिक भेदभाव, रूढ़िबद्धता एवं पितृसत्ता से मुक्ति नहीं मिल सकती इसलिए लैंगिक का अध्ययन ही हमको एक दिशा प्रदान करता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. नारीवाद शब्द का प्रयोग कब प्रचलन में आया?

   (क) 1890 (ख) 1910

   (ग) 1920 (घ) 1930

6. 1981 में महिलाओं के अध्ययन पर पहला राष्ट्रीय सम्मेलन कहां बुलाया गया था?

   (क) नागपुर (ख) मुंबई

   (ग) कोलकाता (घ) रांची

1.5 लैंगिकता और संस्कृति

समाज के प्रमुख अंगों में लैंगिकता, संस्कृति और इनमें संबंधित संस्थाएं प्रमुख हैं। लैंगिकता के विषय में हम अभी तक अध्ययन कर चुके हैं। संस्कृति और सांस्कृतिक संस्थाएं किस प्रकार लैंगिकता को या लैंगिक असमानता के अभ्यास को पोषित करती हैं, इसे विस्तार से समझते हैं।

1.5.1 भारतीय संस्कृति में लैंगिक धारणा

संस्कृति शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। समाज शब्द की तरह ही हम संस्कृति शब्द का प्रयोग बेहद सामान्य रूप से करते हैं। सामान्यतः संस्कृति शब्द को भिन्न–भिन्न व्यक्ति भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित करते हैं। कुछ लोग इसका संबंध शास्त्रीय संगीत, नृत्य, चित्रकला, पारंपरिक वेशभूषा आदि से मानते हैं। तब ये प्रश्न उठता है कि क्या जिन व्यक्तियों या समूहों में इनका अभाव पाया जाता है, क्या

वे संस्कृति विहीन है? प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे (1993) के अनुसार "सीखे हुए व्यवहार–प्रकारों की उस समग्रता को, जो किसी समूह को वैशिष्ट्य प्रदान करती है, संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, किसी समूह के ऐतिहासिक विकास में जीवनयापन के जो विशिष्ट स्वरूप विकसित हो जाते हैं, वे ही उस समूह की संस्कृति हैं।"

टिप्पणी

इस परिभाषा से संस्कृति के बारे में कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। पहली तो ये कि संस्कृति मानव निर्मित होती है और मनुष्य इसको सीखकर अपनाता है। दूसरा, संस्कृति का विस्तार व्यापक और सामाजिक होता है। यह एक विशाल समूह द्वारा अपनाए गए व्यवहार–प्रकार हैं, न कि केवल कुछ व्यक्तियों द्वारा। टी. एस. इलियट के अनुसार "शिष्ट व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं के आस्वादन इत्यादि के अतिरिक्त किसी जाति की अथवा वे समस्त राष्ट्रीय क्रियाएं एवं कार्य–कलाप, जो उसे विशिष्टता प्रदान करते हैं, संस्कृति के अंग हैं।" अंग्रेज़ विद्वान एडवर्ड टायलर, संस्कृति की परिभाषा देते है "संस्कृति या सभ्यता अपने व्यापक नृजातीय अर्थ में एक जटिल समग्र है, जिसमें ज्ञान, आस्था, कला, नैतिकता, कानून प्रथा तथा मनुष्य के समाज के सदस्य के रूप में होने के फलस्वरूप प्राप्त अन्य क्षमताएं तथा आदतें शामिल हैं।" टायलर ने संस्कृति के मूल तत्वों में (1) मानव क्षमता एवं प्रौद्यगिकी (2) मानव के सृजन (3) कानून, ज्ञान, विश्वास एवं नैतिकता को शामिल किया है। संस्कृति परिवर्तनशील है, यह जड़ एवं स्थिर नहीं होती। यह समय दर समय होने वाले परिवर्तनों को अपने अंदर आत्मसात कर लेती है।

ब्रिटिश समाजशास्त्री एंथनी गिडेन्स ने सही कहा है कि समाजशास्त्र में संस्कृति एवं समाज सबसे प्रचलित धारणाएं हैं। गिडेन्स ने कहा कि संस्कृति में मूल्य होते हैं जिन्हें लोग स्वीकार करते हैं, जिनका लोग पालन करते हैं। एवं संस्कृति में भौतिक वस्तुएं होती हैं जिन्हें लोग गढ़ते हैं तथा प्रयोग करते हैं। एम.जे हर्सकोविट्स ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड हिज वर्क्स' में संस्कृति की विशद चर्चा की। उनके अनुसार मानव के सही कार्य एवं कृतियां संस्कृति हैं। हर्सकोविट्स ने कहा है कि पर्यावरण का मानव निर्मिति अंश संस्कृति है जिनसे मानव अपनी बौद्धिक एवं जैविक आवश्यकताओं को पूरा करता है। मैलीनोवस्की ने संस्कृति को मनुष्य की व्यापकतम कृति कहा है जो एक साधन है, जिससे वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने संस्कृति के संदर्भ में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि "संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आंतरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, पारंपरिक सद्व्यवहार है और एक दूसरे को समझने की शक्ति है।" वस्तुतः संस्कृति से आशय मानव की मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं कलात्मक जीवन की समस्त उपलब्धियों की समग्रता से है। संस्कृति वास्तव में सामूहिक जीवन का ढंग है, जो सामूहिक जीवन के सांझे अनुभवों के फलस्वरूप विकसित होती है। राम गोपाल सिंह के अनुसार, "संस्कृति से हमारा आशय सामूहिक जीवन के विविध पक्षों से संबंधित मान्यताओं, मूल्यों और विचार प्रणालियों से है, जिसमें ज्ञान और प्रविधि, विचार और विश्वास, कला और आचार सन्निहित है जो किसी समूह विशेष के लोगों के सामान्य कार्य व्यवहार, नित्यप्रति के आदान–प्रदान

तथा उनके साहित्य, कला, शिक्षण और मनोरंजन में उनकी सामान्य प्रकृति को अभिव्यक्ति करती है।" इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कोई भी समाज संस्कृतिविहीन समाज नहीं हो सकता, इनकी संस्कृतियों में विभिन्नताएं अवश्य हो सकती हैं। रॉबर्ट रेडफील्ड ने संस्कृति को पारंपरिक समझदारी की एक संगठित इकाई कहा है जो शिल्प में उजागर होती है और परम्पराओं से चलती रहती है एवं जो मानव समाज का लक्षण है।

टिप्पणी

वर्तमान समय में समाजशास्त्रीय विमर्श में संस्कृति की अधिक ठोस और विशिष्ट धारणा अपनाई जाती है। संस्कृति में नियम, मूल्य, सृजन, साहित्य, संगीत, प्रतीक चिह्न, विश्वास एवं विचार सम्मिलित किए जाते हैं। संस्कृति समाज की धरोहर है, परंतु यह उसके अभौतिक पक्षों से अधिक जुड़ी है। संस्कृति को हम एक समाज विशेष की जटिल, सामूहिक, ग्रहण की जाने वाली कृतियों को एकीकृत धरोहर कह सकते हैं जिसमें भौतिक, आर्थिक, नियामक, विश्वास संबंधी चिह्न एवं प्रतीक संबंधी तथा ज्ञान, विचार एवं विचारधारा के तत्व शामिल होते हैं।

इस प्रकार संस्कृति को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

संस्कृति....
सोचने, अनुभव करने तथा विश्वास करने का तरीका है।
लोगों के जीने का सम्पूर्ण तरीका है।
व्यवहार का सारांश है।
सीखा हुआ व्यवहार है।
सीखी हुई चीज़ों का एक भंडार है।
सामाजिक धरोहर है जोकि व्यक्ति अपने समूह से प्राप्त करता है।
बार–बार घट रही समस्याओं के लिए मानकीकृत दिशाओं का एक समुच्चय है।
व्यवहार के मानकीय नियमितीकरण हेतु एक साधन है।

संस्था

संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है संस्था। 'संस्था' का अभिप्राय उन पद्धतियों का संग्रह है जिन्हें नियमों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, जिसका एक नाम होता है, जो किसी–न–किसी सामाजिक उद्देश्य से जुड़ा होता है। जिसके साथ चिह्न या प्रतीक जुड़े होते हैं जिसके कारण प्रतिष्ठा मिलती है एवं व्यक्ति और समूह को संपूर्णता मिलती है (जैसे–विवाह, संपत्ति, मीडिया, दलीय प्रणाली इत्यादि) एंथनी गिडेन्स ने कहा कि संस्थाएं सामाजिक जीवन का सीमेंट हैं, जिन्हें मानव ने एक दूसरे के साथ संपर्क एवं व्यवहार से विकसित किया है एवं जिसके द्वारा पीढ़ियों में निरंतरता बहाल की जाती है। गिडेन्स ने इस परिभाषा में यह सही कहा है कि संस्थाएं लंबे समय तक चलती हैं एवं उनके द्वारा समाज के अलग–अलग पक्षों को एक साथ जोड़ा जाता है। संस्था वास्तव में बहुत व्यवस्थित है और साथ ही साथ इसे समाज के सदस्यों की स्वीकृति होती है। यह स्वीकृति गंभीर होती है। गिडेन्स का

कथन उचित है कि संस्थाएं लोगों के व्यवहार और आपसी संपर्क से विकसित की जाती हैं। गिडेन्स वेबर के दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं, इसलिए सामाजिक क्रिया और अंतर्क्रिया पर बल देते हुए संपर्क और व्यवहार को महत्वपूर्ण मानते हैं। संस्था के कुछ लक्षण इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

- **बाह्यता** : संस्था एक बाहरी सच है जो हमारे बाहर रहते हुए भी हमें तथा हमारे व्यवहार को नियंत्रित करती है। इस प्रकार यह एक बाहरी सच है जो हमारे बाहर रहते हुए अपनी मौजूदगी का एहसास कराता है। संस्थाओं का बाहर होकर हमें प्रभावित करना एक महत्वपूर्ण विशेषता है। उदाहरण के लिए भाषा को ही संस्था के रूप में देखा जा सकता है जो हमारे बाहर होते हुए भी हमारी क्रियाओं को प्रभावित करती है।
- **वस्तुनिष्ठता** : संस्था वस्तुनिष्ठ तरीके से हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। यह वस्तुनिष्ठ इसलिए हो जाती है क्योंकि इसके इस स्वरूप को हम सभी वास्तविक रूप में स्वीकार करते हैं। भाषागत व्यवहार को ही अगर उदाहरण माना जाए तो यह कहा जा सकता है कि कब हम भाषा की गलती करते हैं और कब गलती नहीं कर रहे होते हैं, इसका वस्तुनिष्ठ तरीके से आकलन किया जा सकता है। स्विस बाल मनोवैज्ञानिक जिन पिआजे ने प्रयोग द्वारा यह बताया कि एक बच्चे से पूछा गया कि क्या सूर्य को कुछ और शब्द द्वारा संबोधित किया जा सकता है। उसका उत्तर था नहीं! बच्चे को इसकी जानकारी कैसे मिली। यह बच्चे के लिए भी पहेली से कुछ कम नहीं था। परंतु उसने सूर्य की तरफ इशारा करते हुए बताया कि यह सूर्य है। इस प्रकार जो निरीक्षण के द्वारा भी बताया जा सके उस प्रकार के वस्तुनिष्ठ गुण संस्थाओं की एक खास पहचान होती है।
- **बाह्य दबाव** : संस्थाओं का एक बाहरी दबाव भी होता है जिसे व्यक्ति चाहकर भी अपने चेतन मन से नहीं हटा सकता। संभव है व्यक्ति अपने कार्य की व्यस्तता के कारण भूल जाए और अगर ऐसा होता है तो अपनी इस गलती का एहसास जनमत के एतराज जताने से तुरन्त हो जाता है। उदाहरण के लिए मंदिर में प्रवेश अगर हम जूता पहन कर करें तो यह गलती चाहे अनजाने में ही क्यों न हुई हो मंदिर में मौजूद लोग विरोध प्रदर्शित करेंगे और हमारी गलती का एहसास दिला देते हैं। इस प्रकार किसी औपचारिक सभा में बिना अनुमति लिए बोलना भी गलत माना जाता है। अर्थात् संस्थाओं का अपना एक अलग तरीका होता है जिसके द्वारा व्यक्ति पर ये संस्थाएं अपना दबाव डालती हैं।
- **नैतिक बल** : प्रत्येक संस्था का एक नैतिक बल होता है जिसके द्वारा संस्थाएं अपना दबाव मनुष्य पर सदैव बनाए रखती हैं। संस्थाओं की वैधानिकता को चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि इन संस्थाओं को ऊर्जा उसमें निहित नैतिक बल से मिला होता है। इसका उल्लंघन करने वाले को इसकी सजा दी जाती है। झारखंड के आदिवासी समूह संस्थाओं में बिटलाहा जैसी संस्था का प्रावधान है जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को उनके समाज के नियमों का उल्लंघन करने की छूट नहीं दी गई है। उनके विवाह के नियम का प्रावधान ऐसा है जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को अपने आदिवासी समाज से बाहर शादी करने की इजाजत नहीं दी जाती है। और अगर कोई व्यक्ति इसका उल्लंघन करता है तो

उसे उस गांव तथा अपने समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है–उसके घर को विशेषकर रसोई को ध्वस्त कर दिया जाता है। इस प्रकार संस्थाओं का अपना एक अलग नैतिक बल होता है जिसके कारण समाज के नियमों की मर्यादा बनी रहती है।

- **ऐतिहासिक स्वरूप** : संस्थाओं का अपना एक अलग ऐतिहासिक स्वरूप भी होता है जिसके कारण संस्थाएं न केवल एक सच्चाई के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखती हैं बल्कि वे अपनी एक अलग पहचान ऐतिहासिक भूमिका के कारण भी बनाकर रखती हैं। संस्थाओं का अर्थ अचानक ही नहीं बना होता है बल्कि इसके पीछे एक ऐतिहासिक सोच और परंपरा भी जुड़ी होती है। इस दृष्टिकोण से यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि संस्थाओं के नियम व्यक्ति के जन्म लेने से पहले ही बने होते हैं। व्यक्ति उन संस्थागत नियमों का सिर्फ पालन करना अपना फर्ज समझता है।

टिप्पणी

संस्था की धारणा अलग–अलग दृष्टिकोणों से परिभाषित होती आई है। हर्बर्ट स्पेंसर ने समाजशास्त्र में संस्था शब्द का प्रयोग किया। प्रकार्यवादी विद्वान स्पेंसर को प्रकार्यवाद का जनक मानते हैं। स्पेंसर ने संस्थाओं को सामाजिक संरचना का अंग कहा है। उन्होंने समर्थनकारी संस्था, नियंत्रणकारी संस्था जैसे शब्दों का प्रयोग किया। एमिल दुर्खाइम ने और आगे चलकर पार्सन्स ने प्रकार्यवादी दृष्टिकोण से संस्थाओं की चर्चा की। समाजशास्त्रियों ने संस्थाओं के अध्ययन में पांच प्रकार की प्रमुख संस्थाओं का वर्णन व्यापक रूप से किया है। ये संस्थाएं निम्नलिखित हैं–

(क) **आर्थिक संस्थाएं** : इनके द्वारा उत्पादन, वितरण और उपभोग जैसी क्रियाओं का वर्णन किया जाता है।

(ख) **राजनीतिक संस्थाएं** : इनके द्वारा सत्ता का नियंत्रण किस प्रकार होता है–इसे समझने में मदद मिलती है।

(ग) **स्तरीकरण** : इसके द्वारा किस प्रकार समाज के वर्ग अपनी स्थिति के आधार पर बंटे होते हैं। उन प्रक्रियाओं को समझा जा सकता है।

(घ) **स्वजन संस्थाएं** : इन संस्थाओं से विवाह, परिवार और बच्चों के समाजीकरण की क्रिया को समझा जा सकता है।

(ङ) **सांस्कृतिक संस्थाएं** : ये संस्थाएं, धार्मिक, वैज्ञानिक तथा कला के क्षेत्र में संस्थाओं की क्या भूमिका है उसे समझने में मदद करती हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र में संस्थाओं का व्यापक अध्ययन होता है जिसके आधार पर संस्थाओं की भूमिका का अध्ययन होता है।

संस्था का महत्व– मानवशास्त्री मैलीनोवस्की संस्कृति को सम्पूर्ण यथार्थ मानते हैं। उन्होंने कहा कि संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व संस्था है। उनके अनुसार संस्थाएं मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने की स्वीकृत शैलियां हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुसार आवश्यकता को पूरा नहीं करता है बल्कि जो स्वीकृत तरीके हैं, उसी के आधार पर आवश्यकताओं को पूरा करता है। विवाह एक संस्था है जो यौन संबंध एवं बच्चों के जन्म से जुड़ी है। यह संस्कृति स्वीकृत है। मैलीनोवस्की ने कहा है कि संस्थाएं, संस्कृति का प्रथम तत्व है।

लैंगिक भूमिकाओं को प्रभावित करने वाली प्रमुख संस्थाएं

लैंगिक भूमिकाओं को विभिन्न संस्थाएं भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। हालांकि सामाजिक संस्थाओं का दायरा काफी विस्तृत है। हम यहां लैंगिक भूमिकाओं को प्रभावित करने वाली प्रमुख सामाजिक संस्थाओं का लैंगिकता के संदर्भ में विश्लेषण करेंगे। इन सामाजिक संस्थाओं में मुख्यतः जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्र आदि आते हैं।

टिप्पणी

लैंगिकता एवं जाति

जाति एक प्राचीन संस्था है जो कि हजारों वर्षों से हमारी संस्कृति एवं भारत के इतिहास का एक हिस्सा रही है। परंतु यह केवल इतिहास का हिस्सा का नहीं है अपितु वर्तमान में भी जाति हमारे समाज का हिस्सा बनी हुई है। जाति के सही रूप को समझने के हमें इसके इतिहास को भी समझना होगा। आज जिस रूप में हम जाति देखते हैं ये प्रारम्भ से उस रूप में नहीं थी। जाति हर समाज में पाई जाती है। इसके स्वरूप भिन्न–भिन्न समाजों में भिन्न हो सकते हैं। भारत में यह हिन्दू समाज की संस्थागत विशेषता है पर इसका प्रचलन अन्य धार्मिक समुदायों में भी फैला हुआ है खासकर मुसलमानों, ईसाइयों और सिखों में।

अंग्रेजी शब्द कास्ट की उत्पत्ति पुर्तगाली मूल के शब्द कास्टा से हुई है। कास्टा का अर्थ है विशुद्ध नस्ल। कास्ट शब्द का अर्थ एक विस्तृत संस्थागत व्यवस्था से है जिसको भारत में दो विभिन्न शब्दों– वर्ण एवं जाति के अर्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है। समाज की चार श्रेणियों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजन को वर्ण कहा जाता है। वर्ण को एक विशाल भारतीय सामूहिक वर्गीकरण के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत जाति एक व्यापक शब्द है जो किसी भी चीज़ के प्रकार या किस्म को संबोधित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। भारतीय भाषाओं में जाति शब्द का प्रयोग सामान्यतः जाति संस्था के संदर्भ में ही किया जाता है। जाति को क्षेत्रीय या स्थानीय उप–वर्गीकरण के रूप में समझा जा सकता है जिसमें सैकड़ों या हजारों जतियों एवं उप–जातियों से बनी बेहद जटिल व्यवस्था शामिल होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जहां चार वर्णों का वर्गीकरण पूरे भारत में है वहीं जाति अधिक्रम के वर्गीकरण क्षेत्रीय हैं जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलते रहते हैं। जाति व्यवस्था की उत्पत्ति कब हुई यह कहना मुश्किल है। वैदिक काल में तो समाज में वर्ण व्यवस्था ही मानी जाती है इसलिए इसकी उत्पत्ति उसके बाद ही हुई है।

जाति की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- जाति का निर्धारण जन्म से ही किया जाता है। एक बच्चा अपने माता–पिता की जाति में ही जन्म लेता है। जाति कभी भी चुनाव का विषय नहीं होता। इसको न तो बदला जा सकता है और न ही कभी छोड़ा जा सकता है। हम इस बात का चुनाव भी नहीं कर सकते कि हम जाति में शामिल होना चाहते हैं या नहीं। हालांकि, ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां एक व्यक्ति उसकी जाति से निकाल दिया जाता है।
- यदि कोई किसी जाति से संबंधित होता है तो उस पर विवाह संबंधी कठोर नियम भी लागू होते हैं। जाति समूह 'सजातीय' होते हैं अर्थात विवाह समूह के सदस्यों या केवल अपनी जाति में ही हो सकते हैं।

- जाति में खाना खाने और खाना बांटने के बारे में भी नियम शामिल होते हैं। किस प्रकार का खाना खा सकते हैं और किस प्रकार का नहीं खा सकते यह पहले से ही निर्धारित होता है और किसके साथ खाना बांटकर खाया जा सकता है यह भी पूर्व निर्धारित होता है और जाति में शामिल सब सदस्यों को इन नियमों का पालन करना पड़ता है।
- जाति में श्रेणी एवं स्थिति के एक अधिक्रम (Hierarchy) में संयोजित अनेक जातियों की एक व्यवस्था शामिल होती है। सैद्धांतिक तौर पर, हर व्यक्ति की एक जाति होती है और हर जाति का सभी जातियों के अधिक्रम में एक निर्धारित स्थान होता है जहां अनेक जातियों की अधिक्रम स्थिति, विशेषकर मध्यक्रम की श्रेणियों में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदल सकती है पर अधिक्रम हमेशा पाया जाता है।
- जातियों में आपसी उप–विभाजन भी होता है अर्थात जातियों में हमेशा उप–जातियां होती हैं और कभी–कभी तो उप–जतियों में भी उप–जातियां होती हैं।
- पारंपरिक तौर पर जातियां व्यवसाय से जुड़ी होती थीं। एक जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति उस जाति से जुड़े व्यवसाय को ही अपना सकता था, इसलिए वे सब व्यवसाय वंशानुगत थे, मतलब यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते थे। दूसरी तरफ एक विशेष व्यवसाय को किसी जाति से जुड़े होने की वजह से उसी जाति के लोग अपना सकते थे, किसी दूसरी जाति के सदस्य वह काम नहीं कर सकते थे।

टिप्पणी

गेल ओमवेट जाति को इस प्रकार परिभाषित करते हैं–

"जाति जमीनी हकीकत है, इसकी बुनियाद जमीनी है। यह केवल एक स्वरूप (फॉर्म) भर नहीं, बल्कि ठोस वस्तु (कंटेंट) है। इसने भारतीय समाज के आधार को रूप–आकार प्रदान किया है और आज भी आर्थिक स्तर पर यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।"

चूंकि प्रत्येक जाति से यह अपेक्षित होता था कि वह अन्य जाति से भिन्न हों इसलिए वह प्रत्येक जाति से कठोरता से अलग होती है और इसलिए ही हर जाति के नियमों की रूपरेखा जातियों को मिश्रित होने से बचाने के लिए बनाई गई है। इन नियमों में विवाह, खान–पान, एवं सामाजिक अंतःक्रिया से लेकर व्यवसाय तक के नियम शामिल हैं। वहीं दूसरी तरह यह सामाजिक संपूर्णता या व्यवस्था समानतावादी व्यवस्था होने के बजाय अधिक्रमित व्यवस्था है। प्रत्येक जाति का समाज में एक विशिष्ट स्थान होने के साथ–साथ एक क्रम श्रेणी भी होती है। एक सीढ़ीनुमा व्यवस्था जो ऊपर से नीचे जाती है, में प्रत्येक जाति का एक विशिष्ट स्थान होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जब जाति जन्म द्वारा निर्धारित हो जाती है तो उसके बाद कोई भी व्यक्ति सैद्धांतिक तौर पर उसकी जीवन स्थिति नहीं बदल सकता। चाहे उच्च जाति के लोग उच्च स्तर के लायक हों न हों, उनका स्तर हमेशा ही उच्च रहता था और निम्न जाति के लोगों का हमेशा निम्न रहता था।

जाति आधारित व्यवस्था एवं पितृसत्ता दो ऐसे कारक हैं जो महिलाओं की स्थिति को हीन बनाए हुए हैं। प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका एवं समाजशास्त्री उमा चक्रवर्ती (2011) 'ब्राह्मणवादी पितृसत्ता' का वर्णन इस प्रकार करती हैं– "यह वस्तुतः नियमों और संस्थानों का ऐसा पुंज है जिसमें जाति और लिंग एक दूसरे से गुंथे हुए हैं, वे एक–दूसरे का

टिप्पणी

स्वरूप तय करते हैं और जिसमें स्त्री जातियों के बीच का विभाजन बनाए रखने के लिए बतौर साधन इस्तेमाल होती है। इसने ऐसे नियम बना रखे हैं कि सीमाबद्ध विवाह वृतों की पदानुक्रमता का उल्लंघन हुए बिना जाति व्यवस्था का पुनरोत्पादन होता रहे। इसके साथ ही, स्त्रियों के लिए प्रस्तावित ब्राह्मणवादी नियम जातियों की स्थिति के सापेक्ष हैं यानी जातियों के पदानुक्रम में किसी जाति की जो स्थिति है और उससे उसकी जो हैसियत बनती है उसी के अनुसार उसके स्त्रियों के लिए ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ने नियम निश्चित कर रखे हैं। इसमें स्त्रियों की यौनिकता पर कठोर नियंत्रण का अधिकार ऊंची जातियों के पास है। यह पतिव्रता और साध्वी स्त्रियों का महिमामंडन करता है और नियमों और संस्थानों के माध्यम से सहमति अथवा दमन के आधार पर जाति की पदानुक्रमता और लिंग–असमानता बनाए रखता है।" इस प्रकार वह जाति व्यवस्था के कारण पनप रहे स्त्री शोषण एवं सामाजिक असमानता की व्याख्या करती हैं।

सावित्री बाई फुले (1831–1897)

बालिका शिक्षा के लिए किए गए संघर्षों में सावित्री बाई फुले का नाम अग्रणीय है। इनका जन्म 1831 में महाराष्ट्र स्थित सतारा के नायगांव में हुआ था। इन्होंने न सिर्फ महिला शिक्षा के लिए कार्य किया बल्कि कन्या शिशु की हत्या रोकने के लिए भी पहल की। उनका विवाह 9 वर्ष की उम्र में ज्योतिबा फुले से हुआ। ज्योतिबा स्त्रियों की शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने सावित्री को पढ़ाया। दोनों पति–पत्नी ने महिलाओं एवं दलितों के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। भारत के पुणे में बालिकाओं के लिए बने पहले विद्यालय की पहली प्रधानाध्यापिका सावित्री बाई फुले ही थीं। जब वे विद्यालय में लड़कियों को पढ़ाने के लिए जाती थीं तो रास्ते में लोग उन पर गंदगी, कीचड़ आदि फेंकते थे। सावित्री विद्यालय पहुंचकर अपने कपड़े बदलकर लड़कियों को पढ़ाने लग जाती थीं। लड़कियों की शिक्षा के प्रति उनकी निष्ठा का परिणाम यह निकला कि लड़कियों की शिक्षा के प्रति समाज में धीरे–धीरे जागरूकता बढ़ गई थी। इसके लिए उन्होंने समाज में बहुत संघर्ष किया। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन शूद्रों एवं अति–शूद्रों की शिक्षा के लिए अर्पित कर दिया।

भारतीय समाज में, जो अनिवार्य एवं ऐतिहासिक रूप से जातीय समाज पर संरचित है, जहां सामाजिक असमानताएं प्राथमिक तौर पर जातीय आधार पर बनती और नए सिरे से पनपती रहती हैं। आर्थिक साधनों, सामाजिक हैसियत, राजनीतिक भागीदारी और शैक्षिक अवसरों के संदर्भ में कुछ जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त हैं और कुछ जातियों को ये अधिकार प्राप्त नहीं हैं। अनुसूचित जतियां, जो विशेषाधिकारों से वंचित हैं, वे परंपरागत पेशेवर वर्गीकरण के सबसे निचले पायदान पर हैं और उन्हें विशेषकर ग्रामीण समाज में आमतौर पर समाज की स्थानिक एवं सामाजिक सीमाओं से भी दूर रखा जाता है। इसी तरह मोटे तौर पर भारतीय समाज में हाशिए पर रहा एक अन्य वर्ग अनुसूचित जनजातियां हैं, जो भौगोलिक रूप से अलग–थलग, तथाकथित 'व्यवस्थित', 'मुख्यधारा', 'सभ्य' समाज से दूर जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम इलाकों में अपनी अनोखी संस्कृतियों, धार्मिक पद्धतियों, भाषाओं और भिन्न जीवन शैलियों के साथ रहती हैं। जहां एक ओर इन वर्गों का जीवन भारतीय समाज के अन्य सामाजिक वर्गों से भिन्न है, वहीं उनके जीवन में आस–पास की प्रकृति के साथ एक अनोखी समकालिकता भी है। हालांकि भौगोलिक अलगाव के कारण विकसित समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में इन वर्गों की भागीदारी भी असमान रही है।

इन सबके परिणामस्वरूप ये जातियां और जनजातियां कई दशकों और सदियों तक सामाजिक–आर्थिक विकास के हाशिए पर रही हैं और पराधीन व वंचित जीवन बिताने को बाध्य रही हैं। हालांकि स्वतन्त्रता के पश्चात, भारत को लोकतान्त्रिक समाज बनाने, सभी नागरिकों को उनकी सामाजिक पहचान और उनके वर्ग की परवाह किए बगैर, समान अधिकार प्रदान करने से, ज़ाहिर तौर पर शिक्षा सहित समाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी की स्थिति में सचमुच बदलाव तो आया है। हालांकि ऐतिहासिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की तुलना में समाज और शैक्षिक क्षेत्र में इन वर्गों की समावेशिता का स्तर निम्न ही रहा है।

टिप्पणी

इस प्रकार यदि देखा जाए तो जाति प्रथा समाज में गहन असमानता का कारण बनती है और यदि इस तथ्य का शैक्षिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए तो यह पता चलता है कि जाति से शिक्षा के आंकड़े कैसे प्रभावित होते हैं। हालांकि वर्तमान समय में स्थिति पहले से बेहतर हुई है। नामांकन दर में पहले की तुलना में काफी वृद्धि हुई है। उदाहरण के तौर पर, वर्ष 2014 में राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (NUEPA) द्वारा प्रकाशित भारत सरकार की रिपोर्ट 'सबके लिए शिक्षाः गुणवत्ता और समानता की ओर' दर्शाती है कि वर्ष 2000–01 और 2013–14 के दौरान प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जाति के बच्चों की संख्या 2 करोड़ 13 लाख से बढ़कर 2 करोड़ 30 लाख हो गई, इस प्रकार महज एक दशक में 24.1 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ की गई। इसी तरह, इसी दशक में प्राथमिक शिक्षा में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की संख्या 33.6 प्रतिशत वृद्धि दर्ज़ करते हुए एक करोड़ 10 लाख से बढ़कर एक करोड़ 47 लाख हो गई। उच्च–प्राथमिक स्तर पर भी वर्ष 2000–01 और 2013–14 के दौरान अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों दोनों ने महत्वपूर्ण प्रगति (अनुसूचित जाति में 67 लाख से एक करोड़ 29 लाख और अनुसूचित जनजातियों में 31 लाख से 65 लाख) दर्ज की।

समूची प्राथमिक शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात के संदर्भ में, अनुसूचित जातियों के मामले में वर्ष 2000–01 में 86.8 प्रतिशत से लेकर वर्ष 2013–14 के दौरान 107.7 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के मामले में वर्ष 2000–01 में 88 प्रतिशत से लेकर वर्ष 2013–14 के दौरान 105.52 प्रतिशत की अत्याधिक वृद्धि देखी गई।

हालांकि प्राथमिक अवस्था पर, स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की संख्या पर गौर करें, तो दाखिलों में वृद्धि का उत्साह धूमिल पड़ने लगता है। बच्चों की सभी श्रेणियों में स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वाले बच्चों की दर वर्ष 2008–09 में 42.3 प्रतिशत थी। अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए यह दर 47.9 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए यह 58.3 प्रतिशत थी। इसका आशय है कि प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर दाखिला लेने वाले लगभग 50 प्रतिशत अथवा उससे अधिक बच्चे शिक्षा की इस खास अवस्था को पूरी करने से पहले ही पढ़ाई छोड़ चुके होते हैं।

इसका कारण यह है कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से आने वाले बच्चे ज़्यादातर ऐसे परिवारों से हैं, जो निरक्षर अथवा बहुत कम पढे–लिखे होते हैं और इस तरह वे शिक्षा और देश में हो रहे विकास से लाभान्वित होने के संदर्भ में हाशिए पर अथवा सुविधाहीन स्थिति में बने रहेंगे। नीचे तालिका में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति में कुल नामांकन प्रतिशत की तुलना में लड़कियों के नामांकन

का प्रतिशत दिया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि 2013–14 के नामांकन अनुपात में 2000–01 की तुलना में वृद्धि हुई है। परंतु कुल नामांकन की तुलना में यह अनुपात आधा भी नहीं है।

Table : SC/ST Girls enrolled as percentage of total SC/ST enrolment in primary (Classes I-V), upper primary (Classes VI-VIII) and elementary (Classes I-VIII) education (2000-01 to 2013-14)

टिप्पणी

Year	SC Girls enrolled as percentage of total SC enrolment			ST Girls enrolled as percentage of total ST enrolment		
	Primary	Upper primary	Elementary	Primary	Upper primary	Elementary
2000-01	42.9	38.8	41.9	42.7	38.7	41.8
2001-02	43.3	38.7	41.9	42.7	35.1	41.7
2002-03	44.7	41.3	44.0	45.8	40.6	44.7
2003-04	45.0	40.7	43.9	45.6	41.7	44.7
2004-05	44.4	41.4	43.6	46.7	42.9	45.6
2005-06	44.7	41.8	43.9	47.2	44.4	46.5
2006-07	45.0	41.9	44.2	47.2	43.5	46.3
2007-08	47.7	46.5	47.4	47.9	44.7	45.7
2008-09	47.9	46.7	47.3	48.0	46.0	47.5
2009-10	47.9	46.8	47.6	48.0	45.1	47.3
2010-11	48.0	46.9	47.7	48.3	48.1	48.3
2011-12	48.4	48.7	48.5	48.4	49.2	48.6
2012-13	48.4	49.2	48.6	48.7	48.4	48.6
2013-14	48.3	48.8	48.5	48.3	49.2	48.3

Source: Statistics of School Education. 2007-08; MHRD, GoI: Educational Statistics at a Glance. 2011. MHRD. GoI: Statistics of School Education. 2010-11, MHRD, GoI; U-DISE, NUEPA

नामांकन के संदर्भ में ही 2015–16 के आंकड़े नीचे दी गई तालिका में दिए गए है–

Table: *Level-wise Enrolment in school: 2015-16 (in Thousand)*

	All		SC		ST	
	Male	**Female**	**Male**	**Female**	**Male**	**Female**
1^{st}-5^{th}	66873	62250	13274	12469	7102	6636
6^{th}-8^{th}	34720	32874	6750	6427	3416	3215
1^{st}-8^{th}	**101593**	**95124**	**20024**	**18896**	**10518**	**9851**
9^{th}-10^{th}	20547	18598	3824	3487	1710	1614
1^{st}-10^{th}	**122140**	**113722**	**23848**	**22383**	**12228**	**11465**
11^{th}-12^{th}	13002	11733	2240	2047	876	799
1^{st}-12^{th}	**135142**	**12545**	**26088**	**24430**	**13104**	**12264**

Data Source: National Institute of Educational Planning and Administration, New Delhi

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सभी वर्गों की तुलना में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के वर्ग के छात्रों की संख्या काफी कम है। उसमें भी लड़कियों की संख्या लड़कों की तुलना में काफी कम है। वैसे तो लड़कियों का स्तर हर वर्ग में लड़कों की तुलना में कम ही मिलता है परंतु अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों में ये अंतर अधिक है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि जो वर्ग सामाजिक रूप से अधिक पिछड़े हुए होते हैं वहां लड़कियों का विकास नहीं हो पाता क्योंकि वहां सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं का पालन किया जाता है एवं पूर्णतः सामाजिक समावेश न होने के कारण आर्थिक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है। साधन सीमित होने के कारण सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं। इस वजह से शिक्षा की दृष्टि से लैंगिक भेदभाव और गहराता चला जाता है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों को साथ जोड़ने और उनकी स्कूल तक पहुंच संभव बनाने के लिए विशेष प्रयास करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है, क्योंकि अपने वर्ग के लड़कों की तुलना में ये लड़कियां जाति/जनजाति, लैंगिक और सामाजिक वर्ग के संदर्भ में दोगुना या तीन गुना ज़्यादा सुविधाहीन हैं। इन समुदायों की लड़कियां जाति/जनजाति और सामाजिक वर्ग के संदर्भ में सुविधाहीन हैं, जिससे उनका शिक्षा से बहिष्कृत रहना और ज़्यादा बढ़ जाता है। इसलिए परिवर्तन की किसी की प्रक्रिया को मिश्रित प्रयासों या जाति/जनजाति, लैंगिक और सामाजिक वर्ग की अंतर–वर्गीयता पर सावधानी से गौर करना होगा। दलित और जनजातीय दोनों के लड़कों व लड़कियों के लिए, स्कूल ऐसा होना चाहिए, जो उन्हें किसी समुदाय विशेष में जन्म लेने की वजह से मिले अभावों से मुक्ति दिलाए। स्कूल और समाज, दोनों को इन समुदायों के बच्चों के प्रति ज़्यादा समावेशी, न्यायोचित और निष्पक्ष रवैया अपनाने की आवश्यकता है, ताकि भारतीय समाज सही मायनों में ऐसा लोकतांत्रिक समाज होने का दावा कर सके, जहां सभी नागरिकों से बराबरी का व्यवहार होता है।

टिप्पणी

लैंगिकता एवं धर्म

धर्म लगभग हर समाज में मौजूद है। हालांकि धार्मिक विश्वास एवं व्यवहार हर समाज एवं संस्कृति में एक जैसे नहीं होते। परंतु सभी धर्मों की कुछ समान विशेषताएं हैं–

- हर धर्म में कुछ प्रतीक होते हैं जिनका सम्मान किया जाता है।
- हर धर्म के अपने कुछ समारोह एवं अनुष्ठान होते हैं।
- हर धर्म को मानने वाले विश्वासकर्ताओं का एक समूह भी होता है।

धर्म एवं लैंगिकता कैसे एक दूसरे से संबंधित हैं? लैंगिक असमानता का एक महत्वपूर्ण कारण धर्म भी है। लगभग सभी धर्मों में पुरुषों को स्त्रियों से सर्वश्रेष्ठ माना गया है। विश्व के सभी धर्मों का प्रवर्तक पुरुषों को ही माना गया है। कोई स्त्री किसी भी धर्म में उच्च पद पर नहीं मिलती। लगभग सभी धर्मों में स्त्री को पुरुषों के अधीन रहने का निर्देश दिया गया है। अधिकांश अनुष्ठान एवं नियम स्त्रियों द्वारा ही निभाए जाते हैं। संपत्तियों के अधिकार पर भी सभी धर्मों में भेदभाव देखने को मिलता है। इस संबंध में रमणिका गुप्ता (2014) कहती हैं– "जहां तक संपत्ति के अधिकारों की बात है, तो ईसाई धर्म या हिन्दू धर्म में बेटियों को संपत्ति नहीं दी जाती थी। कुछ वर्ष पहले भारत में एक ईसाई स्त्री ने सुप्रीम कोर्ट में केस करके स्त्री को संपत्ति में हिस्सेदार होने का मुक़द्दमा जीता। इस्लाम में स्त्रियों को संपत्ति तो दी जाती है, पर बराबर–बराबर नहीं।"

धार्मिक आधार पर सामाजिक असमानता को बढ़ावा मिलता है। और इसी सामाजिक असमानता के कारण शिक्षा में भी बहुत अंतर पाया जाता है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण है इन धर्मों की सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं का अलग होना।

धार्मिक मान्यताओं का प्रभाव, उस समाज की शैक्षिक स्थिति पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि किसी धर्म में लड़कियों का विवाह कम उम्र में ही करने का प्रचलन है तो उस धर्म में लड़कियों की साक्षरता दर अपेक्षाकृत कम ही मिलेगी। चूंकि धार्मिक मान्यताएं एवं विश्वास भी हमारे समाजीकरण का एक हिस्सा हैं, इसलिए लैंगिक असमानताओं को बढ़ाने में इनका पूरा योगदान है।

बेगम रुकैया सखावत हुसैन

टिप्पणी

बेगम रुकैया सखावत हुसैन का जन्म 1880 में उत्तरी बंगाल के रंगपुर जिले के पैराबंद इलाके में हुआ था। उस काल में केवल मुस्लिम मर्दों को ही तालीम दी जाती थी, स्त्रियों को नहीं। केवल अमीर मुसलमानों के घर में ही स्त्रियों को मजहबी तालीम दी जाती थी। रुकैया ने उसके बड़े भाई द्वारा छिप–छिपकर अंग्रेजी, बांग्ला और उर्दू की शिक्षा हासिल की। अपने विवाह के दौरान वह खूब लिखती थी। पति की मृत्यु के बाद 1909 में उन्होंने बिहार के भागलपुर शहर में मुसलमान लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला। उनके परिवार वालों ने उनके इस काम का बहुत विरोध हुआ इसलिए उन्होंने इस स्कूल को बंद कर दिया। 1911 में उन्होंने कलकत्ता में 'सखावत मेमोरियल गर्ल्स स्कूल' खोला। जेरल्डीन फोब्स (1996) लिखती है कि "अपनी पाठ्यचर्या तथा पर्दा संबंधी बंदिशों के मामले में बेगम रुकैया का स्कूल पंजाब और संयुक्त प्रांत के मुसलमान बालिका स्कूलों से मिलता जुलता था। उन्होंने अपने स्कूल की पाठ्यचर्या में साक्षरता तथा हस्तकला, गृहविज्ञान और बागवानी जैसे व्यावहारिक विषयों पर जोर दिया था। पाठ्यचर्या में शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रशिक्षण भी शामिल थे। हालांकि यह विषय शैक्षिक कार्यक्रम की रचना लड़कियों को पति की संगिनी व सहयोगी तथा बच्चों की शिक्षिका के रूप में विकसित करने वाली थी।" उनकी लिखी कहानी 'सुल्ताना ड्रीम' बहुत ही लोकप्रिय हुई। यह एक कल्पनात्मक कहानी थी जिसमें स्त्रियां दुनियाभर में भाग–दौड़ रही हैं और पुरुष घर के अंदर रहते हैं।

लैंगिकता एवं वर्ग

वर्ग का संबंध उस स्तरीकरण से है जो समाज में आर्थिक आधार पर बनाया जाता है। वर्ग और लैंगिकता का आपस में गहरा संबंध है। समाज में जितनी गहन वर्ग असमानता होगी उतनी ही गहरी लैंगिक असमानता होगी। आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवारों में सामान्यतः लड़कों एवं लड़कियों को शिक्षा के समान अवसर मिल पाते हैं। हालांकि ऐसा आवश्यक नहीं है क्योंकि कई बार आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवार भी अपनी पुरानी सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण लड़कों की शिक्षा को लड़कियों की शिक्षा की तुलना में अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

किसी भी व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उस व्यक्ति का धर्म, जाति, आर्थिक आर्थिक स्तर, रहन–सहन, क्षेत्रीयता आदि शामिल होती है। और ये सभी तत्त्व मिलकर शिक्षा को प्रभावित करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1966) के अनुसार "यह शिक्षा व्यवस्था की ज़िम्मेदारी है कि वह विभिन्न सामाजिक श्रेणियों और समूहों को पास लाए और एक समतावादी और समाकलित समाज का सृजन हो। लेकिन ऐसा करने की बजाय वर्तमान में शिक्षा खुद सामाजिक अलगाव की ओर अग्रसर है और श्रेणी विभाजन को बढ़ावा दे रही है। इसलिए यह स्थिति अलोकतांत्रिक है और समतावादी समाज की कल्पना से उसका सामंजस्य नहीं है। आम आदमी के बच्चे निचली कोटि की शिक्षा पाने को बाध्य हैं... जबकि आर्थिक रूप से सम्पन्न अभिभावक अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा खरीद लेते हैं। यह स्थिति केवल गरीब बच्चों के लिए ही नहीं बल्कि धनाढ्य परिवारों के बच्चों के लिए भी ठीक नहीं है। यह विभाजन अमीर वर्ग के बच्चों को कुछ अल्पकालिक फायदा

दे पाता है जब तक कि वह अपनी स्थिति को मजबूत कर पाए... धनाढ्य परिवार अपने बच्चों को पृथक करके गरीब बच्चों के जीवन की सच्चाई के संपर्क में नहीं आ पाते। सामाजिक संसाधन तो कमजोर होता ही है साथ ही अमीर वर्ग के बच्चों की शिक्षा भी अधूरी और अपूर्ण होती है।"

टिप्पणी

दरअसल यह अमीर गरीब का विभाजन शिक्षा में विषमता के साथ–साथ शिक्षा प्रणाली को भी दो भागों में बांट देता है। एक तरफ सरकार द्वारा प्रदान की गई शिक्षा है जिसमें सरकारी स्कूलों (केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, एमसीडी विद्यालय, सर्वोदय विद्यालय, प्रतिभा विकास विद्यालय, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय आदि) के अलावा अन्य शिक्षा के केंद्र, वैकल्पिक विद्यालय आदि शामिल हैं। दूसरी तरफ महंगे इंटरनेशनल स्कूल हैं जहां सिर्फ अमीर वर्ग के बच्चे ही पढ़ने के लिए जा पाते हैं। इन विद्यालयों में आधारभूत ढांचे के साथ साथ, तकनीक के प्रयोग, शैक्षिक विधियों, पाठ्यसहगामी क्रियाओं, शैक्षिक अवसरों एवं अन्य सुविधाओं में भी काफी अंतर होता है। समृद्ध वर्ग इन महंगे विद्यालयों में ही अपने बच्चों को पढ़ाने पर बल देते हैं जबकि गरीब वर्ग सरकारी विद्यालयों में जाता है। उच्च वर्ग अच्छी शिक्षा प्राप्त करके अपने लिए अच्छे भविष्य का निर्माण करता है जबकि गरीब वर्ग विभिन्न आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हुए जैसे–तैसे अपनी शिक्षा ग्रहण करता है, वो भी कभी–कभी अधूरी ही रह जाती है। अधूरी शिक्षा, अधूरे भविष्य का निर्माण करती हैं। अच्छी शिक्षा के अभाव में भविष्य में नौकरियों के अच्छे अवसर भी नहीं मिलते जिससे आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्ति गरीबी में ही जीने को मजबूर हो जाता है।

अधिकांशतः आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों में, यदि वे किसी को पढ़ाने में सक्षम होते हैं तो उनकी पहली प्राथमिकता लड़के को पढ़ाना होता है लड़की को नहीं। क्योंकि समाज की मानसिकता है कि लड़की विवाह करके अपने घर (ससुराल) चली जाएगी, जबकि लड़का बुढ़ापे में मां–बाप की सेवा करेगा। इस मानसिकता के चलते लड़कियों को शिक्षा के अवसर नहीं दिए जाते। गरीब परिवार होने के कारण घर में मां–बाप दोनों को ही जीविका के लिए जूझना पड़ता है। ऐसे में घर संभालने की ज़िम्मेदारी लड़कियों पर ही आती हैं। वे अपने छोटे भाई–बहनों को भी संभालती हैं और घर का काम–काज भी करती हैं। ये सब कारक उनको शिक्षा से वंचित करते हैं।

वर्ग असमानता को कम करने का सबसे बेहतर उपाय है शिक्षा को पूर्णतः मुफ्त कर देना। हालांकि वर्तमान में सरकारी विद्यालयों में मुफ्त शिक्षा, यूनिफार्म, पुस्तकें, मिड–डे–मील आदि की व्यवस्था की गई है, परंतु यह सिर्फ 8वीं कक्षा या 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए है। विद्यालयों की कमी है। बालिका विद्यालयों की संख्या काफी कम है। इसके अतिरिक्त समाज की मानसिकता को बदलना होगा। यह भरोसा दिलाना होगा कि लड़कियां भी पढ़–लिख कर घर में आर्थिक योगदान दे सकती हैं। सरकार को अधिक से अधिक आंगनवाड़ियों की स्थापना करनी होगी जिससे लड़कियां अपने भाई–बहनों को संभालने की ज़िम्मेदारी से मुक्त हो सकें। लड़कियों के लिए अधिक से अधिक छात्रवृत्तियां प्रदान की जाएं। उनके पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल किए जाए और उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम एव आत्मनिर्भर बनने में मदद करने के लिए रोजगार के अवसर मुहैया करवाए जाएं।

लैंगिकता एवं क्षेत्र

टिप्पणी

क्षेत्रीयता एवं लैंगिकता की अवधारणा का गहरा संबंध है। लैंगिकता के बारे में हम पढ़ ही चुके हैं कि लैंगिकता का स्वरूप हर जगह एक जैसा नहीं होता। यह स्थान के अनुसार बदलता रहता है। इसका अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि भारत के अलग–अलग राज्यों में लिंग–अनुपात भी काफी अलग–अलग है जो इस बात का संकेत करता है कि भारत में लड़के एवं लड़कियों की स्थिति एवं समाज में उनका स्थान एक जैसा नहीं है। जिन राज्यों में लिंग–अनुपात काफी कम है वहां पर लड़कियों के प्रति क्राइम दर काफी अधिक है जो यह इंगित करता है कि उन राज्यों में लैंगिक असमानता अधिक है। यह लैंगिक असमानता हमें न सिर्फ लिंग अनुपात और क्राइम दर में मिलती है बल्कि शिक्षा में भी क्षेत्रीय आधार पर बहुत असमानता है। क्षेत्रीय आधार पर शिक्षा में लैंगिक असमानता यह दर्शाती है कि हमारे भारत में विकास की अवधारणा सब जगह के लिए समान नहीं है। क्षेत्रीय भिन्नता में सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता, अलग–अलग रीति रिवाज, रहन–सहन आदि शामिल होते हैं। चूंकि लड़कियों की शिक्षा बड़े स्तर पर सामाजिक–सांस्कृतिक तौर पर प्रभावित होती है इसलिए अलग–अलग क्षेत्रों की अलग–अलग सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि शिक्षा में लैंगिक असमानता को बढ़ावा देती है। नीचे एक तालिका दी गई है जिसमें विद्यालय में नामांकित बच्चों की संख्या दी गई है।

Table: *Level-wise Enrolment in school & Higher Education: (in Thousand)*

Level	All Categories			ST		
	Male	**Female**	**Total**	**Male**	**Female**	**Total**
1^{st}-5^{th}	66873	62250	129123	7102	6636	13739
6^{th}-8^{th}	34720	32874	67594	3416	3215	6631
1^{st}-8^{th}	**101593**	**95124**	**196717**	**10518**	**9851**	**20370**
9^{th}-10^{th}	20547	18598	39145	1710	1614	3323
1^{st}-10^{th}	**122140**	**113722**	**235862**	**12228**	**11465**	**23693**
11^{th}-12^{th}	13002	11733	24735	876	799	1675
1^{st}-12^{th}	**135142**	**125455**	**260597**	**13104**	**12264**	**25368**

Data Source: National Institute of Educational Planning and Administration, New Delhi

तालिका में अनुसूचित जनजाति के बच्चों की नामांकन संख्या को देखिए। अनुसूचित जनजाति वह वर्ग है जो भौगोलिक रूप से अलग क्षेत्रों में रह रहे हैं। जिनका समाज एवं संस्कृति भिन्न है और जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं। इनके आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े हुए होने के कारण ही ये शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए होते हैं। तालिका से स्पष्ट है कि कुल नामांकन की तुलना में इनका नामांकन बहुत ही कम है और लड़कियों का नामांकन लड़कों की तुलना में काफी कम है जो ये दर्शाता है कि इन अलग क्षेत्रों में भी लैंगिक असमानता मौजूद है।

Table: Literacy Rates

Age	Literacy Rate (%)								
	Rural			Urban			Rural & Urban		
	Male	Female	Total	Male	Female	Total	Male	Female	Total
5&above	80.3	62.4	71.4	91	80.9	86.1	83.6	68.1	76
7&above	79.8	61.3	70.8	91.1	80.8	85.9	83.2	67.1	75.4
15&above	75	53.1	64.1	89.7	77.9	84	79.8	60.8	70.5
All above	72.3	56.8	64.7	83.7	74.8	79.5	75.7	62	69.1

Data Source: National Sample Survey Office

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की साक्षरता दर में काफी अंतर है। और लड़कियों की साक्षरता दर तो दोनों ही क्षेत्रों में कम है परंतु यहां भी ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर शहरी क्षेत्रों की साक्षरता दर से काफी अधिक कम है।

दरअसल अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग सामाजिक–सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ वहां पर उपलब्ध संसाधन भी शिक्षा दर को प्रभावित करते हैं। इनमें विद्यालयों की उपलब्धता, विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं का होना, विद्यालय घर के पास होना या विद्यालय तक पहुंचने के लिए यातायात के उचित साधन होना, विद्यालयों का समय स्थान विशेष के अनूकूल होना, शिक्षकों की उपलब्धता होना, पठन–सामग्री की उपलब्धता आदि जैसे मुद्दे हैं जो किसी क्षेत्र में शिक्षा दर एवं उसमें भी लैंगिक असमानता को प्रभावित करते हैं।

1.5.2 लैंगिक निर्माण में संस्कृति की भूमिका

लैंगिक अवधारणा प्रायः समाज में जैविक रूप से भिन्न स्त्री, पुरुष, उभयलिंगी और अन्य लिंगों का सामाजिक संबोधन है। लैंगिक अवधारणा से तात्पर्य एक व्यक्ति के जैविक लिंग (स्त्री–पुरुष) और समाज में उसकी लैंगिक अस्मिता के बोधन के बीच के जटिल संबंधों से है। एक व्यक्ति के व्यवहारों का प्रस्तुतिकरण उसके द्वारा निभाई जानेवाली लैंगिक भूमिकाओं से जुड़ा होता है।

लैंगिक निर्माण अपने आप में एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक–सांस्कृतिक प्रकिया है। लैंगिक निर्माण को लेकर लिंग योजना सिद्धांत का मानना है कि एक व्यक्ति का सामाजिक रूप से स्त्री, पुरुष, उभयलिंगी और अन्य होने की अस्मिता उसके सामाजिक अधिगम और संज्ञानात्मक विकास की संबद्धता का परिणाम है, जिसके अंतर्गत समाज में लैंगिक रूप से प्रचलित मान्यताएं, पूर्वाग्रह व भूमिकाएं आदि शामिल होती हैं।

लैंगिक निर्माण की प्रक्रिया को संयोजित और व्यापक रूप में समझने के लिए आवश्यक है कि पारिवारिक संरचनाओं के भीतर समाजीकरण की प्रक्रिया को ध्यान में रखा जाए। भारतीय परिवारों में 'स्त्री–पुरुष' के रूप में बड़े होने के अनुभव अधिकांशतः भिन्न होते हैं। प्रायः परिवारों में व्यवहार, भूमिकाओं व कार्यों को लेकर लड़का और एक लड़की होने का एहसास और अनुभव दोनों भिन्न होते हैं।

लैंगिक निर्माण प्रायः परिवारों में जन्म के साथ ही शुरू हो जाता है। इस शुरुआत में एक नव जन्मा/जन्मी शिशु को सर्वप्रथम यह बोध कराया जाता है कि वह 'लड़की

टिप्पणी

टिप्पणी

है', 'लड़का है' या 'अन्य'। 'लड़के', 'लड़की' व 'अन्य' होने का यह बोध परिवार की दैनिक क्रियाओं में कई स्तरों पर शामिल होता है। जैसे– घर में किए जाने वाले कार्यों का विभाजन, जिम्मेदारियां व शिक्षा आदि। जन्म के उपरांत एक बच्चा किसी–न–किसी रूप में परिवार को प्राप्त करता है। भारतीय परिवारों में एक प्रकार का वर्चस्व कायम रहता है वह है– पितृसत्ता। कुछ अपवादों को छोड़कर भारतीय समाज की विशेषता है पितृसत्ता। इस पितृसत्ता में 'लड़के' व 'लड़की' का बचपन समान नहीं होता। असमानता की यह प्रक्रिया भाषागत संबोधनों से लेकर उठने–बैठने, आचार–विचार, व्यवहार, पहनावा, कामकाज और कार्य क्षेत्र तक फैली होती है। भारतीय समाज में भूमिका निर्धारण के संदर्भ में 'पुरुष के कार्य' और 'स्त्रियों के कार्य' में भेद किया गया है। गृहस्थी के प्रबंधन का काम स्पष्ट रूप से स्त्री के कार्य क्षेत्र में आता है। यदि ये घरेलू कामकाज में हाथ बंटाने के लिए कोई सेवक रख नहीं पाती हैं तो उन्हें ही घर के सारे कामकाज करने पड़ते हैं, जैसे– पानी भरना, खाना पकाना, घर की सफाई, अपने और घर के पुरुषों और बच्चों के कपड़े धोना तथा बच्चों की देखभाल। पुरुष यदि इनमें से कोई काम करते हैं तो उनका उपहास किया जाता है। पुरुष ये काम तभी कर सकते हैं यदि पत्नी घर पर न हो या अस्वस्थ हो तथा उसका काम संभालने वाली कोई अन्य स्त्री घर में न हो। यह धारणा इतने गहरे जमी हुई है कि व्यवसायों में कार्यरत तथा पूर्णकालिक सेवारत स्त्रियों से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वे इसके अतिरिक्त गृहस्थी के काम–काज भी देखती रहें। स्त्री–पुरुष की भूमिकाएं संबंधों के सम्मुचय के भीतर कल्पित व अभिनीत होती हैं और सीखी जाती हैं। इस प्रक्रिया को समझने के लिए परिवार की संरचना जिसमें परिवार सन्निहित रहता है, को समझना जरूरी है। परिवार की संरचना तथा नातेदारी के रूप जाति संस्था से बंधे हैं। जाति व्यवस्था में अलग–अलग समूहों की सदस्यता जन्म से परिभाषित रहती है। इसी कारण विवाह तथा यौन संबंधों पर नियंत्रण व सीमाएं बनाए रखना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

इस तरह लैंगिक निर्माण की प्रक्रिया बच्चे के जन्म से ही उसके सामाजिक परिवेश में शुरू हो जाती है जहां कुछ तय मानक व पैटर्न होते हैं जिनके अनुसार एक बच्चे का लालन–पालन होता है।

हममें से अधिकांश व्यक्तियों ने लड़के व लड़कियों के बीच असमानता और लैंगिक व्यवहारों को अपने आस–पास व परिवारों में सुना या महसूस किया होगा। शाब्दिक और व्यावहारिक रूप से प्रयोग किए जाने वाले व्यवहार बच्चे अपने परिवार में प्राथमिक समाजीकरण द्वारा जानते हैं और सीखते हैं। यही व्यवहार उनकी लैंगिक पहचान और भूमिकाओं को निर्धारित करते हैं। प्रायः घरों में प्रयोग की जाने वाली भाषा, समारोह, रीति–रिवाजों व वैवाहिक कर्मकांडों के गीतों के प्रतीक माध्यम से स्त्री–पुरुष की असमान छवि गढ़ी जाती है जो लैंगिकता को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संस्कृति के माध्यम से लिंग की भूमिकाओं पर विचार करने से पहले संस्कृति शब्द के व्यापक अर्थ को समझ लेना अति आवश्यक है। कारण, तभी हम अपने विषय को सही तरीके से समझ पाने में सक्षम हो सकेंगे।

संस्कृत भाषा में सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द की उत्पत्ति हुई मानी गई है। इस दृष्टि से संस्कृति शब्द 'परिष्कर्त कार्य' अथवा उत्तम स्थिति का बोध कराता है। परन्तु इस शब्द का भावार्थ बहुत ही व्यापक है। देखा

जाए तो यह शब्द मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों और परिष्कार का द्योतक है।

प्रत्येक राष्ट्र के आचार–विचार में भिन्नता पाई जाती है और निरंतर परिष्कार (सुधार) की दृष्टि भी भिन्न ही होती है। संस्कृति शब्द से पृथ्वी के किसी भी विशिष्ट भूखण्ड की मानसिक क्षमता एवं प्रगति के एक दीर्घकालिक इतिहास का पता चलता है। व्यक्ति के मन, शरीर तथा आत्मा से सम्बद्ध नैसर्गिक शक्तियां संस्कृति से ही परिवर्द्धित एवं परिष्कृत होती हैं। इसे यूं भी स्पष्ट कर सकते हैं, प्रकृति प्रदत्त शक्तियों का सामूहिक विकास और परिष्कार संस्कृति का मूलाधार माना जा सकता है। निरंतर सत्य की खोज करते हैं। चिरन्तन सौंदर्य और मानव प्रेम के मूल तत्त्वों को अनुप्राणित करते रहने से ही संस्कृति फलती–फूलती रहती है, अपनी मंजिल तय करती रहती है। वस्तुतः सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अभिलाषा एवं संरक्षण ही संस्कृति का मूल तत्त्व माना जा सकता है। इसी के चलते किसी भी मनुष्य के सुव्यवस्थित, उदात्त तथा शोभा सम्पन्न आचरण के कारण उसे सुसंस्कृत मनुष्य माना जाता है। मनुष्य मन और आत्मा की तृप्ति के लिए जो विकास करता है, उन्नति करता है वह सम्पूर्ण रूपेण संस्कृति के ही अन्तर्गत आता है। इस बात से यह स्पष्ट है कि मानसिक क्षेत्र में मनुष्य की प्रत्येक 'सम्यक्कृति' संस्कृति का ही अंग बन जाती है।

टिप्पणी

अनेकानेक विद्वानों ने 'संस्कृति' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है–

'मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है। पर जिन कामों से किसी देश विशेष के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े, वही स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशिला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रासाद निर्मित होता है।' –डॉ. सम्पूर्णानन्द

'संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी तरह व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग–युगान्तर में होता है।'

–रामधारी सिंह दिनकर

'संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है जिसमें समस्त ज्ञान, विश्वास, कलाएं, नीति, विधि, रीति–रिवाज तथा वे अन्य योग्यताएं समाहित हैं जिन्हें मनुष्य किसी समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित करता है।' –ई.बी. टायलर

'विश्व में जो कुछ उत्तमोत्तम कहा गया या जाना गया है उससे स्वयं को भिज्ञ कराना ही संस्कृति है।' –मैथ्यू आर्नोल्ड

संस्कृति शब्द के साथ प्रायः एक और शब्द–'सभ्यता' का भी प्रयोग प्राप्त होता है। इस दृष्टि से सभ्यता शब्द का प्रधान अर्थ सामाजिकता है। सभ्यता सामाजिक प्रतिबन्धों (विधि निषेधों) तथा कर्तव्यों पर बल देती है। शिष्टाचारगत नियमों के साथ–साथ सामजिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिक आचरण भी सभ्यता के द्वारा निर्दिष्ट होता है। सभ्यता का संबंध मूर्त एवं भौतिक पदार्थों से है जो हमें उत्तराधिकार में भले ही प्राप्त नहीं हों, अपनी आवश्यकता के अनुसार हम इनका निर्माण कर लेते हैं। अतः सभ्यता के द्वारा मनुष्य की भौतिक सुख समृद्धि तथा तदन्तर्गत व्यवहार का परिज्ञान होता है। इसी आधार पर जो राष्ट्र भौतिक दृष्टि से अधिक प्रगतिशील हैं, वे स्वयं को दूसरे राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक सभ्य समझते हैं।

टिप्पणी

संस्कृति एवं सभ्यता के अन्तर को निम्नलिखित कतिपय बिन्दुओं से अधिक स्पष्टतया से समझा जा सकता है–

1. इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति नितान्त भिन्न होने के कारण इनका शब्दार्थ भी भिन्न–भिन्न है। किन्तु आजकल इन्हें प्रायः पर्याय रूप में प्रयोग कर लिया जाता है।
2. संस्कृति आंतरिक उन्नति है और सभ्यता से बाह्य (भौतिक) उन्नति सूचित होती है। यही कारण है कि संस्कृति का अनुकरण नहीं किया जा सकता है। उसे अपनाना होता है। किन्तु सभ्यता का अनुकरण सरलता से किया जा सकता है।
3. संस्कृति को माप सकने का कोई भी मानदण्ड नहीं है किन्तु सभ्यता को मापने का मानदण्ड उपयोगिता है।
4. संस्कृति विकसित नहीं होती किन्तु सभ्यता का निश्चय ही विकास होता है। किसी अद्यतन संस्कृति के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह प्राचीनकाल की अपेक्षा अधिक विकसित है किन्तु प्रत्येक देश की सभ्यता का विकास स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृति एवं सभ्यता ये दो शब्द व्युत्पत्ति तथा भाव–दोनों ही दृष्टियों से नितान्त भिन्न हैं। भारत के प्राचीन साहित्य में भारतीय मनीषियों ने संस्कृति शब्द के लिए 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया था, और सभ्यता शब्द का अन्तर्भाव 'अर्थ' शब्द में हो जाता था। किन्तु समय की गति में धर्म और अर्थ शब्दों का अभिप्राय अत्यन्त संकुचित होता गया। आज के युग में अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए संस्कृति एवं सभ्यता शब्दों का प्रयोग ही समीचीन है। ये दोनों शब्द परस्पर भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से बहुत जुड़े भी हैं। इन दोनों में जो पारस्परिक संबंध है, उसके कारण इनको एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। जैसे व्यक्ति और समाज अलग–अलग होकर भी एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक दूसरे के पूरक हैं; वही स्थिति संस्कृति और सभ्यता की है।

संस्कृति के बिना कोई देश/जाति सभ्य नहीं कहला सकती और सभ्यता के बिना संस्कृति की कल्पना कर पाना भी कठिन है। सभ्यता से यदि व्यक्ति के शारीरिक और भौतिक विकास की सूचना मिलती है, तो संस्कृति शब्द बौद्धिक और मानसिक प्रगति को परिलक्षित कराता है। सांस्कृतिक विचारधारा का बाह्य क्रियात्मक रूप ही सभ्यता बन जाता है। फिर भी संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। वस्तुतः देखा जाए तो, मानव का युग–युगीन समस्त आंतरिक परिष्कार संस्कृति शब्द से ही प्रकट होता है।

संस्कृति मानव को मानव बना देने वाले कतिपय विशिष्ट तत्त्वों में अन्यतम है। वे सारी अभिव्यक्तियां ही संस्कृति हैं, जो मनुष्य को मानसिक, आत्मिक एवं बौद्धिक विशिष्टता प्रदान करती हैं। किन्तु यह संस्कृति किसी एक व्यक्ति के कुछ समय के अथवा सम्पूर्ण जीवन के कार्यों से निर्मित नहीं होती। यह संस्कृति तो किसी भी देश के ज्ञात अथवा अज्ञात असंख्य व्यक्तियों के दीर्घकालीन एवं कष्टसाध्य प्रयत्नों के परिणाम से पल्लवित एवं पुष्पित होती है। देश की परम्परागत सम्पूर्ण मानसिक निधि ही संस्कृति शब्द में समाहित हो जाती है। समय की निर्बाध गति में सभी अपनी–अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार अपने देश के संस्कृति निर्माण में योगदान देते जाते हैं।

हरिदत्त वेदालंकार ने संस्कृति–निर्माण की इस प्रक्रिया के लिए अत्यन्त सुन्दर उपमान प्रस्तुत किया है, देखें–''संस्कृति की तुलना आस्ट्रेलिया के निकट समुद्र में पाई जाने वाली मूंगे की भीमकाय चट्टानों से की जा सकती है। मूंगे के असंख्य कीड़े अपने छोटे घर बनाकर समाप्त हो गए, फिर नए कीड़ों ने घर बनाए, उनका भी अन्त हो गया। इसके बाद उनकी अगली पीढ़ी ने भी यही किया, और यह क्रम हजारों वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। आज उन सब मूंगों के नन्हे–नन्हे घरों ने परस्पर जुड़ते हुए विशाल चट्टानों का रूप धारण कर लिया है। संस्कृति का भी इसी प्रकार धीरे–धीरे निर्माण होता है और उसके निर्माण में हजारों वर्ष लगते हैं। मनुष्य विभिन्न स्थानों पर रहते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण, संस्थाओं, प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धर्म, दर्शन, लिपि, भाषा तथा कलाओं का विकास करके अपनी विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करते हैं। भारतीय संस्कृति की भी इसी प्रकार रचना हुई है।''

टिप्पणी

किसी भी देश की संस्कृति उसके विभिन्न युगों के आचारों एवं विचारों की परम्परा से उत्पन्न एक भूषणयुक्त परिष्कृत स्थिति की द्योतक होती है। विश्व में प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक संस्कृतियां हैं, किन्तु उन सबमें भारतीय संस्कृति का स्थान अनुपम एवं सर्वोच्च है। भारतीय संस्कृति के अनूठे महत्व को पाश्चात्य अथवा पौरस्त्य सभी मनीषियों ने एक स्वर से स्वीकार किया है।

आज जो संस्कृति भारतीय नाम से अभिहित है, उस संस्कृति का किस विशिष्ट भूखण्ड से सदैव संबंध रहा? इस प्रश्न के उत्तर में भारत की भौगोलिक स्थिति अथवा भौगोलिक विस्तार को भी तनिक समझ लेना अधिक उत्तम होगा। भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष की एक सुदृढ़ इकाई है। पुराणों तथा स्मृतियों में भारतवर्ष की भौगोलिक सीमाओं का अनेकशः कथन किया गया है।

प्राचीन काल में भारत के लिए आर्यावर्त नाम अत्यधिक प्रचलित रहा। मनुस्मृतिकार ने इस आर्यावर्त की भौगोलिक सीमा का बहुत विस्तृत एवं सुन्दर वर्णन किया है–'जो सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के मध्य में है, देव–निर्मित वह देश 'ब्रह्मावर्त' कहलाता है। उस देश का परम्परागत आचरण ही भिन्न–भिन्न शाखाओं सहित वर्णों के लिए सदाचार है। कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल, शूरसेन आदि से मिलकर ब्रह्मर्षि देश बनता है। यह ब्रह्मावर्त के पश्चात् है। इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से पृथ्वी के सभी जनों को अपना चरित्र सीखना चाहिए। हिमालय तथा विन्ध्याचल के मध्य में, विनशन के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम में स्थित देश मध्यदेश कहलाता है। पूर्वी समुद्र से दक्षिणी समुद्र तक हिमालय एवं विन्ध्य पर्वतों के मध्य जो देश है, वह विद्वानों के द्वारा आर्यावर्त नाम से जाना जाता है।'

'काव्यमीमांसा' में राजशेखर ने भी भौगोलिक दृष्टि से भारत के विभिन्न भागों का वर्णन इस प्रकार किया है–'यह भगवान् मेरु प्रथम वर्ष पर्वत है। उसके चारों ओर 'इलावृत्त वर्ष' है। उसके उत्तर में श्वेत, नील तथा श्रृंगवान् नामक तीन वर्ष हैं। उनके देश रम्यक, हिरण्यमय, उत्तर–कुरु आदि हैं। दक्षिण में भी निषध, हेमकूट तथा हिमवान् तीन पर्वत हैं। इनके भी हरिवर्ष, किम्पुरुष, भारत आदि तीन देश हैं। उनमें यह भारतवर्ष है और इसके नौ भेद (विभाग) हैं यथा–इन्द्रद्वीप, कसेरुमान, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण तथा कुमारी। हिमालय तथा विन्ध्याचल एवं पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के मध्य आर्यावर्त है। वहीं पर चतुराश्रम तथा चार वर्ण पाए जाते हैं। वहीं पर सदाचार की जड़ भी है।'

टिप्पणी

हमारे प्राचीन ऋषियों अथवा विद्वानों ने भारतवर्ष की जिस भौगोलिक सीमा का वर्णन किया है, उस भारत भू–खण्ड के उपर्युक्त विवरण से भारतीय महाद्वीप की आकारगत विशालता का सहज ही अनुमान हो जाता है। उत्तर दिशा में भारत की सीमा हिमालय पर्वत के गगनचुम्बी हिमधवल शिखरों तक है; तो दक्षिण में निचले पठारी मैदान हैं जिनका अन्त एक ओर बंगाल की खाड़ी समुद्र में और दूसरी ओर अरब सागर के नीले जल में होता है। पश्चिम में राजस्थान के वे नितान्त शुष्क मरुस्थल हैं जहां कोसों दूर तक वृक्ष तो क्या, तृण भी नहीं दिखाई देते; और पूर्व में बंग प्रदेश की शस्यश्यामला उर्वर भूमि है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में भिन्न–भिन्न स्थानों पर प्रायः सभी प्रकार की जलवायु उपलब्ध हो जाती है। ऐसी भौगोलिक विभिन्नता वाले देश में जातियों, धर्मों, भाषाओं, आचार और विचारों की भी बहुत भिन्नता दीख पड़ती है। किन्तु जाति, धर्म, भूगोल, भाषा आदि की ऐसी विषमताएं पाई जाने पर भी सम्पूर्ण देश में एक ऐसी मौलिक अखण्ड एकता अन्तर्निहित है, जिसे कोई भी नकार नहीं पाता। सर हर्बर्ट रिज़ली ने भारत में व्याप्त इसी मौलिक एकता को परिलक्षित करके कहा–'भारत में दर्शक को भौतिक क्षेत्र में और सामाजिक रूप में भाषा, आचार, धर्म में जो विविधता दिखाई देती है, उसकी तह में हिमालय से कन्याकुमारी तक एक आंतरिक एकता है। सम्पूर्ण भारत की आंतरिक एकता का सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास है। देश में स्वाधीनता से अनुप्राणित राष्ट्रीय चेतना का जागरण होते ही कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा बंगाल से राजस्थान तक सम्पूर्ण भू–खण्ड में मानो एक ज्वाला धधक उठी थी।

इतने विराट देश में व्याप्त उस मौलिक एकता के कुछ कारक तत्त्व भी होने चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर हमारे सम्मुख निम्नांकित अनेक पहलू स्वतः उद्घाटित होते चले जाते हैं–

(अ) भौगोलिक एकता– जलवायु और वनस्पति आदि की दृष्टि से भारतवर्ष के सम्पूर्ण विस्तार में जितनी विविधता दृष्टिगोचर होती है, उतनी संभवतः अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती। इस विशाल देश की ऊपरी सीमाएं शीत कटिबन्ध में होने के कारण कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश कई मास तक हिमाच्छादित ही रहते हैं। भारतवर्ष का मध्य भाग शीतोष्ण कटिबन्ध है। दक्षिणी भाग विषवत रेखा से अधिक दूर न होने के कारण वहां अधिक गर्मी पड़ती है। इसी कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में जलवायु के अनुकूल ही भिन्न–भिन्न प्रकार की वनस्पति भी उत्पन्न होती हैं।

किन्तु इस भिन्नता में भी सुदृढ़ भौगोलिक एकता पाए जाने का कारण यही है कि प्रकृति ने भारत की रचना एक सुरक्षित दुर्ग के समान की है। यह एक ऐसी सुदृढ़ प्राकृतिक इकाई है जिसके तीन ओर समुद्र और एक ओर अनुलंघनीय पर्वत सुरक्षित सीमाओं के रूप में अवस्थित हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत भू–खण्ड का अपना अलग अस्तित्व है। भारत के आंतरिक भौगोलिक विभाजन नगण्य हैं। यह भौगोलिक एकता केवल भौतिक धरातल मात्र पर स्थित नहीं है अपितु भारतीयों की बौद्धिक चेतना तथा हृदयगत भावों में भी पूर्णतया उपस्थित है। इसीलिए यहां के दर्शन ग्रन्थों अथवा काव्य ग्रन्थों में भारत की यह भौगोलिक अखण्डता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। जिन प्रारम्भिक सम्राटों अथवा बादशाहों ने इस भौगोलिक इकाई में राजनैतिक एकता स्थापित करने के प्रयत्न किए थे उनकी सर्वत्र प्रशंसा की गई।

(ब) राजनैतिक एकता– इस विशाल भारत भूखण्ड में विकेन्द्रीकरण की शक्तियां निरन्तर कार्यरत रहने के कारण देश में राजनैतिक एकता का प्रायः अभाव रहा। पर्वतों और नदियों के कारण अनुलंघनीय बने हुए इस देश के विभिन्न भागों में जब आवागमन के साधन बहुत कम थे, तब सम्पूर्ण भारत को एक राजनैतिक सूत्र में बांध पाना असम्भव ही था। किन्तु फिर भी प्राचीन भारतवासी इस एकता से परिचित अवश्य थे। भारतीय इतिहास में सदैव ही सारे देश को राजनैतिक एकता में बांधने के प्रयास होते ही रहे। प्रतापी नरेशों की सदैव यही कामना रहती थी कि पूरे देश पर एकछत्र राज्य करके वे महाराजाधिराज, एकराट्, अधिराज आदि कहला सकें। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए वे अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञ किया करते थे।

टिप्पणी

पौराणिक क्या ऐतिहासिक सभी सम्राट दिग्विजय की आकांक्षा करते थे। चाणक्य ने चक्रवर्ती सम्राट्, स्पष्टतया उसी राजा को कहा जो हिमालय से समुद्र तक अपना राज्य विस्तृत कर सके। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक महान, समुद्रगुप्त तथा हर्ष ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में राजनैतिक एकता स्थापित करने का लक्ष्य रखा था। इन सम्राटों के समय देश के शासन का संचालन केन्द्र से ही होता था। एक महान् सम्राट होता था और अन्य राजा उसके अधीनस्थ रहकर शासन करते थे और कर (टैक्स) दिया करते थे। वर्तमान काल में ब्रिटिश संघ ने सम्पूर्ण भारत में अपना शासन स्थापित किया था, किन्तु तब भी लगभग 700 देशी राज्य अपनी भिन्न शासन व्यवस्था रख कर ब्रिटिश संघ को कर (टैक्स) दिया करते थे।

भारतीय राष्ट्रीयता आंदोलन के साथ ही भारत की राजनैतिक एकता का स्वरूप मुखर होता गया। सम्पूर्ण भारत की जनता ने एकजुट होकर देश को स्वतंत्र किया और एक भारत राष्ट्र एक भारतीयता तथा एक राजनैतिक एकता का सुदृढ़ सूत्रपात हो गया। सर यदुनाथ सरकार ने सच ही लिखा–''केवल निरंकुश आज्ञाओं तथा जनता के सिर पर एक शासन व्यवस्था के लादने से ही उसमें एकता नहीं उत्पन्न होती। कम से कम ऐसी एकता स्वाभाविक नहीं कही जा सकती और न अधिक दिनों तक चल सकती है। सबसे अच्छी राजनैतिक एकता वह है जिसे जनता ने स्वयं अपने प्रयत्नों से उत्पन्न किया हो, जिसमें जनता ने एक शासन व्यवस्था का निर्माण किया हो और उसकी सफलता या विफलता का भोग किया हो; क्योंकि यह उसी के प्रयत्नों की उत्पत्ति है।''

(स) सांस्कृतिक एकता– भारत की अखण्ड मौलिक एकता इसके सांस्कृतिक स्वरूप में, सर्वाधिक अभिव्यक्त हुई है। समय–समय पर भारत में बाह्य शक्तियों–यूनानी, शक, कुषाण, हूण, अरब, तुर्क, मंगोल, मुगल आदि ने प्रवेश किया। उन सभी के साथ उनकी भिन्न–भिन्न सभ्यता और संस्कृति भी यहां आई। किन्तु वे सभी शनैः–शनैः भारतीय संस्कृति में घुलमिल कर एकाकार होती गई। सम्पूर्ण देश के सामाजिक जीवन का मूलाधार एक ही बना रहा है। भारतीय धर्मशास्त्रों ने जिन सामाजिक रीतियों और संस्थाओं का विधान किया था, वे सम्पूर्ण देश में मान्य रहीं। विभिन्न सभी प्रदेशों में जातिभेद, वर्णव्यवस्था, विभिन्न संस्कार और अनुष्ठान समानरूपेण प्रचलित हैं। उनमें मात्र लोकाचार की भिन्नता है।

पूरे भारत में वैचारिक एकता आश्चर्यजनक है। संसार की नश्वरता, जीवन की क्षणभंगुरता, प्रवृत्ति मार्ग की निकृष्टता और निवृत्ति मार्ग की श्रेष्ठता जैसे दार्शनिक विचार प्रत्येक भारतीय के मन में दृढ़मूल हैं। सांस्कृतिक एकता की भावना भारतवर्ष में राजनैतिक प्रभाव से भी ऊपर रहकर पल्लवित पुष्पित हुई। इस तथ्य को भारतवर्ष में

रहने वाले मुसलमानों अथवा ईसाइयों की जीवनशैली को देखकर भली भांति परखा जा सकता है। युग युगान्तर से भारत में रहते–रहते इन अहिन्दू समाजों में भी भारतीयता की, भारतीय संस्कृति की ऐसी अमिट छाप पड़ी है कि वे अपने अरब भाइयों अथवा इंग्लैंड के ईसाई भाईयों से बहुत भिन्न हो गए हैं। वस्तुतः भारत देश और भारतीय संस्कृति शरीर और आत्मा के समान हैं। एक के बिना दूसरा व्यर्थ है। इसी सांस्कृतिक एकता के कारण भारत के सभी प्रांतों में भारतीयता समान रूप से पाई जाती है।

टिप्पणी

(द) धार्मिक एकता– भारत में अनेक धर्म तथा सम्प्रदाय हैं, किन्तु इन सभी विभिन्न सम्प्रदायों और धर्मों में आंतरिक समानता है। धार्मिक दृष्टि से भी भारतीय सम्प्रदायों के आध्यात्मिक तत्त्व एवं सिद्धान्त समान हैं। भारत के सभी धर्म क्या सम्प्रदाय वेदों को प्रमाण मानते हैं। आत्मा का अमरत्व, एक परब्रह्म की सत्ता, कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष, निर्वाण, ईश्वरभक्ति, सत्यपालन आदि तत्त्व सभी भारतीय धर्मों में एक समान हैं। धार्मिक संस्कार, व्रत, उपवास, उत्सव, पर्व तथा रीति परम्परा सम्पूर्ण भारत में लगभग एक सी है। आदि शंकराचार्य ने भारत की चार दिशाओं में चार मठ स्थापित किए थे। उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम, पूर्व में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारका–ये चारों धाम प्रत्येक भारतीय के लिए परमपवित्र और दर्शनीय तीर्थस्थल हैं। प्रत्येक भारतीय के अन्तरतम में यह प्रच्छन्न लालसा होती है कि वह जीवन में एक बार चारों धाम के दर्शन कर सके।

गौ, ब्राह्मण तथा गंगा सभी के लिए पूजनीय हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, सीता, पार्वती आदि पूरे भारत में श्रद्धास्पद हैं। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रति प्रत्येक भारतवासी के मन में एक सा समादर का भाव है। इन सभी से यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि भारतवर्ष के सम्पूर्ण विस्तार में धार्मिक एकता दृढ़तापूर्वक व्याप्त है।

(घ) भाषागत एकता–भारत के विभिन्न प्रदेशों में आपाततः भिन्न–भिन्न भाषाओं का व्यवहार होने पर भी भारत में भाषागत एकता भी विद्यमान है, क्योंकि सभी भारतीय भाषाओं का जन्म संस्कृत भाषा से हुआ है। हिन्दी हो या बंगला, मराठी हो या गुजराती, तमिल हो या तेलुगु–सभी भारतीय भाषाओं पर संस्कृत की गहरी छाप स्पष्ट है। मुस्लिम युग में आक्रान्ताओं के साथ–साथ भारत में विदेशी भाषा–फारसी–का प्रवेश हुआ; किन्तु संस्कृत और फारसी के सम्मिश्रण से भारत में उर्दू भाषा का जन्म हुआ। अतः उर्दू भाषा भी संस्कृत से प्रभावित है। सारे देश मे पढ़े जाने वाले अधिकांश पूज्य धर्मग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही हैं। भारत देश की सम्पूर्ण विशालता में जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के समय पढ़े जाने वाले सारे मंत्र एक से ही हैं तथा सभी संस्कृत भाषा में हैं। इस प्रकार संस्कृत भाषा के कारण हिमालय से कन्याकुमारी तक भारत के सभी विभिन्न प्रदेश एक प्रबल भाषागत एकता में बंधे हुए हैं।

(न) निवासियों की एकता– भारत में भिन्न–भिन्न समयों पर भिन्न–भिन्न जातियों ने प्रवेश किया। किन्तु यहां आए हुए सभी शक, सिथियन, हूण, तुर्क, पठान, मंगोल, मुगल आदि यहां के समाज में पूर्णतया घुलमिल गए और क्रमशः उनका पृथक् अस्तित्व ही समाप्त हो गया। इसीलिए भारत के विभिन्न प्रदेशों के निवासियों में भिन्न–भिन्न जातियों के सम्मिश्रण की शारीरिक संरचनाएं प्राप्त होती हैं। आज भारत में मुसलमानों और ईसाइयों की जो बहुसंख्या दृष्टिगोचर होती है, वे भी मूलतः हिन्दू हैं, जिन्होंने कारणवश धर्म–परिवर्तन कर लिया था। इस दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में निवासियों की एकता भी दृष्टिगोचर होती है। डॉ. वी. स्मिथ ने उचित ही कहा है कि ''भारत की

मौलिक एकता का पता हमें इस बात से ही चल जाता है कि भारत की विभिन्न जातियों में एक विलक्षण प्रकार की संस्कृति एवं सभ्यता का विकास हुआ, जिसकी संसार की किसी अन्य प्रकार की संस्कृति तथा सभ्यता से कोई समानता नहीं।''

इस समग्र विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भारत की विभिन्न विषमताओं में भी एकता है। रक्त, वर्ण, भाषा, वेषभूषा आचार–विचार, धर्म आदि के भेदभावों का प्रतिरोध करके यह एकता सम्पूर्ण भारत को सुदृढ़ बनाती है। भारत के क्षेत्रफल की विशालता भी इस मौलिक एकता में बाधक नहीं बन पाती।

टिप्पणी

भारत में व्याप्त इस मौलिक एकता के अनेक साधन रहे। प्राचीन तपस्वियों एवं ऋषियों ने भारत के भिन्न–भिन्न स्थानों पर तपोवनों तथा गुरुकुलों की स्थापना की, जहां सम्पूर्ण देश से उत्सुक छात्र विद्या ग्रहण करने आते थे। प्राचीन काल में वाल्मीकि, वसिष्ठ, अगस्त्य आदि के आश्रम तथा मध्य युग में नालन्दा, तक्षशिला आदि ऐसे ही विद्याकेन्द्र थे। धार्मिक गुरुओं, संतों तथा महापुरुषों ने अपने–अपने मत की अभिवृद्धि के लिए पूरे भारत को ही कार्यक्षेत्र बनाया। शंकराचार्य ने अल्पायु में ही भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण कर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया। तीर्थयात्रियों के विश्वास और आस्था ने इस एकत्व को नैरन्तर्य प्रदान किया। उत्तरी भारत को पवित्र करती गंगा का जल सुदूर दक्षिण में अवस्थित रामेश्वरम् में चढ़ाना और देश के कोने–कोने से अपने पितरों की अस्थियां प्रवाहित करने हरिद्वार में आना–इसी मौलिक एकता का परिचायक है। दिग्विजय करने के इच्छुक महत्वाकांक्षी राजा भी विशाल भारत के विस्तार में एकता स्थापित करने के अंशतः साधन बने।

इस प्रकार की अखण्ड एकता के सूत्र में बंधी भारत की संस्कृति को भारतीय संस्कृति नाम देना समीचीन ही है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय संस्कृति को प्रायः केवल आर्य संस्कृति कहा है, किन्तु यह नाम पर्याप्त भ्रामक है। भारतीय संस्कृति केवल आर्यो की ही नहीं है। इसमें आर्यो के अतिरिक्त द्रविड़, आग्नेय, नेग्रिटो, ईरानी, यवन, शक, कुषाण, पह्लव, हूण, अरब, तुर्क, मुगल आदि अनेक संस्कृतियों का भी पर्याप्त अंश है। आज जिसे भारतीय संस्कृति के नाम से अभिहित किया जाता है, वह संस्कृत भारत में आर्य तथा आर्येतर अनेक बहुविध जातियों की विविध सुदीर्घ साधनाओं के सम्मिश्रण का फल है। भारतीय संस्कृति की उपमा किसी नदी के डेल्टा से दी जा सकती है। युगों–युगों तक नदी के प्रवाह में बहकर आती हुई मिट्टी के विभिन्न स्तरों के जमते चले जाने से डेल्टा का निर्माण होता है और कालान्तर में उन भिन्न–भिन्न स्तरों को अलग करके पहचान पाना असम्भव हो जाता है। उसी प्रकार भारतीय संस्कृति विभिन्नात्मक सम्मिश्रण के फलस्वरूप निर्मित हुई और उन विभिन्न अंशों को अलग कर पाना आज असम्भव है। इसी वैशिष्ट्य के कारण भारतीय संस्कृति की निजी पहचान है। इस भारतीय संस्कृति के निर्माण में दोनों लिंगों का विशेष योगदान सदैव से है और सदैव ही बना रहा है और आगे भी बना रहेगा।

इस भारतीय संस्कृति का विश्व की अन्य संस्कृतियों के मध्य कैसा स्थान है; इस प्रश्न का उत्तर खोजने पर इसमें कतिपय ऐसी विलक्षणताएं दृष्टिगोचर होती हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृतियों में सर्वोच्च पद की अधिकारिणी बना दिया है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएं

अब हम भारतीय संस्कृति की जिन विशेषताओं का उल्लेख करने जा रहे हैं, वे समग्रतया विश्व की अन्य किसी भी संस्कृति में उपलब्ध नहीं होतीं। ये विशिष्टताएं अग्रांकित हैं–

टिप्पणी

(क) सर्वाधिक प्राचीन– भारतीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता यह है कि वह विश्व की उपलब्ध सभी संस्कृतियों में प्राचीनतम है। मिश्र की संस्कृति सम्भवतः इसकी समकालीन थी, किन्तु आज मिस्र की संस्कृति का नाममात्र अवशिष्ट रहा है। भारतीय वाङ्मय के वेद तो विश्व वाङ्मय के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ हैं ही; सिन्धु घाटी की खुदाई से प्राप्त अवशेषों के साक्ष्य से यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है कि यूरोप, रूस, अमेरिका, आदि की संस्कृतियों के जन्म से भी बहुत पूर्व भारतीय संस्कृति अपनी पूर्ण परिपुष्ट अवस्था में वर्तमान थी। वर्तमान युग में चीन के अतिरिक्त अन्य कोई देश इससे तुलनीय नहीं है।

(ख) अक्षुण्ण प्रवाह– भारतीय संस्कृति का प्रवाह प्रारम्भ से आज तक अटूट रहा है। विश्व की अनेक संस्कृतियां अपने समय में नितान्त परिपुष्ट दीखती हुई भी क्रमशः काल के प्रवाह में जर्जर होकर लुप्त ही हो गईं। आज उनके ध्वंसावशेषों मात्र से ही उन संस्कृतियों का पता चल पाता है। अन्य कुछ संस्कृतियां विभिन्न परिवर्तनों में पड़कर इतनी बदल गईं कि उन्हें मूल रूप में पहचान पाना ही सम्भव नहीं रहा। किन्तु भारतीय संस्कृति दीर्घजीवी सिद्ध हुई। विभिन्न युगों में अनेक परिवर्तनों के हो जाने पर भी इसने अपने मौलिक स्वरूप को भी नहीं त्यागा और आज तक क्रियाशील भी बनी हुई है। अनेक सहस्राब्दियां व्यतीत हो चलीं, किन्तु सिन्धु घाटी की सभ्यता से भी पूर्व प्रारम्भ हुई भारत भूमि की इस संस्कृति की परम्परा आज भी अक्षुण्ण ही बनी हुई है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रबल प्रमाण हैं। भाषा के क्षेत्र में संस्कृत आज भी विद्वद् समाज में उसी प्रकार लिखी, पढ़ी और बोली जाती है जैसे पाणिनि के समय में आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व थी। वेदमन्त्र, उपनिषद्, गीतादर्शन आदि आज भी भारत में अत्यधिक मान्य हैं।

धार्मिक क्षेत्र में राम और कृष्ण, ब्रह्मा और शिव सहस्रों वर्ष पूर्व की भांति आज भी परम पूज्य और प्रातः स्मरणीय हैं। सम्पूर्ण भारतखण्ड के विभिन्न प्रदेशों को सिंचित करके भूमि को शस्यश्यामला बना देने वाली गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा, सिन्धु आदि नदियां कितने हजार वर्षों से आज तक पवित्र ही मानी जाती हैं। मनुष्य के विभिन्न संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले वेदविहित जो मन्त्र गृह्यसूत्रों में पूर्णतया विकसित और व्याख्यायित होकर समाज में स्थापित हुए थे, सहस्रों वर्ष बीत जाने पर भी पूरे भारतवर्ष में विभिन्न संस्कारों के समय उन्हीं मन्त्रों का उच्चारण आज भी किया जाता है। समय–समय पर भारतवर्ष में नवीन प्रवृत्तियां भी उत्पन्न हुईं। बाह्य आक्रमणकारियों का भी इस संस्कृति पर प्रभाव पड़ता रहा। किन्तु भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व इतने अधिक प्रबल थे, विभिन्न परम्पराओं का मूल इतना पुष्ट और गहरा था कि न तो समय उन्हें उखाड़ कर फेंक सका और न ही बाह्य प्रभाव उसे नष्ट कर सके।

(ग) समन्वयभाव तथा वैचारिक सहिष्णुता– विश्व की अन्य सभी संस्कृतियों में कट्टरता, मदान्धता एवं पूर्वाग्रह के तत्त्व स्पष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु इसके विपरीत भारतीय संस्कृति की विशिष्टता उसकी सहनशीलता में है। विश्व की अन्य संस्कृतियों ने अपने ही देश में पनपने वाली नवीन प्रवृत्तियों को सहन नहीं किया; इसी कारण सुकरात को विषपान करना पड़ा और ईसा को अपनी ही सलीब ढोकर मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा। किन्तु भारतीय संस्कृति ने विभिन्न प्रवृत्तियों और प्रभावों को सहर्ष सहन कर लिया। इस संस्कृति ने प्रत्येक व्यक्ति को विचार, धर्म एवं विश्वास की स्वतंत्रता दी। विविध सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता तथा सम्मान का भाव भारतीय संस्कृति का अपूर्व तत्त्व है। यही कारण है कि अन्य संस्कृतियों में भगवान् के रूप में पूज्य आराध्यदेव एक ही हैं किन्तु भारत में आराध्यदेवों की सम्पूर्ण परिगणना कर

सकना ही सम्भव नहीं है। मनुष्य की विधात्मक प्रवृत्ति को परिलक्ष्य करके ही ऋषि ने ऋग्वेद में सभी देवताओं को एक ही परब्रह्म के विविध रूप घोषित कर दिया था। कालान्तर में वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया में बौद्ध और जैन धर्म प्रवर्तित हुए, तो बुद्ध और महावीर को भी अवतारों में परिगणित कर लिया गया। सहिष्णुता के इसी गुण के कारण भारत में सारे धार्मिक विश्वास, सारी भिन्न–भिन्न पूजा विधियां, विभिन्न रहन–सहन, खानपान आदि सभी एक साथ स्वीकार किए जाते रहे हैं।

टिप्पणी

भारतीय संस्कृति की विचारसहिष्णुता की भावना की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति अशोक महान् के बारहवें शिलालेख में हुई है–'लोग केवल अपने ही सम्प्रदाय का आदर और बिना कारण दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा न करें। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह अपने सम्प्रदाय को भी क्षति पहुंचाता है और दूसरे सम्प्रदाय का भी अपकार करता है। ...सभी सम्प्रदाय वाले विद्वान होते हैं और कल्याण का कार्य करते हैं।' भारतीय संस्कृति के इसी वैशिष्ट्य के कारण भारत में साम्प्रदायिक युद्धों अथवा धार्मिक रक्तपात का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं होता।

(घ) ग्रहणशीलता– भारतीय संस्कृति के सहिष्णुता वैशिष्ट्य के कारण इसमें ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति भी उत्पन्न हो गई और इस ग्रहणशीलता के कारण ही भारतीय संस्कृति निरन्तर सजीव और सक्रिय बनी रही। भारतीय संस्कृति ने विभिन्न नई प्रवृत्तियों एवं बाह्य प्रभावों को केवल सहन ही नहीं किया, अपितु उन देशी अथवा विदेशी नवीन तत्त्वों को आत्मसात् करके अपना अंग ही बना लिया। विनाश एवं विध्वंस भारतीय संस्कृति का गुण नहीं था, इसका वैशिष्ट्य तो ग्रहण तथा संरक्षण है। इसी कारण भारतीय संस्कृति ने अत्यन्त प्राचीन काल से आज तक अपने संपर्क में आने वाली द्राविड़, यूनानी, सीथियन, मुगल, ईसाई–सभी संस्कृतियों के विभिन्न सुन्दर अंशों को ग्रहण कर लिया।

वैदिक युग में प्रकृतिगत तत्त्व–इन्द्रादि प्रमुख देव थे, तो परवर्ती युग में द्रविड़ प्रभाव से शिव प्रमुख देवता बन गए। भारत में लिंग पूजा, वृक्षपूजा, आदि विभिन्न तत्त्व वैदिक काल के पर्याप्त बाद में आए तथा द्रविड़ प्रभाव से जुड़ गए जो आज भी प्रचलित हैं। वस्तुतः जो भी प्रथा, संस्था अथवा व्यवस्था उत्पन्न होकर भारत में एक बार ग्रहण कर ली गई–वह फिर नष्ट नहीं हुई। भारतीय संस्कृति ने उसे अपना अंग बना लिया। 'भारतीय संस्कृति एक महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियां आ–आकर विलीन होती रही हैं। प्रोफेसर हुमायूं कबीर ने ग्रहणशीलता के इसी गुण को परिलक्षणित करके ठीक ही कहा–'भारतीय संस्कृति की कहानी एकता और समाधानों का समन्वय है तथा प्राचीन परम्पराओं और नवीन मानों के पूर्ण संयोग की उन्नति की कहानी है।'

(ङ) अनुकूलता एवं परिवर्तनशीलता– भारतीय संस्कृति में समय के अनुसार ढल जाने की अद्‌भुत क्षमता है। इस संस्कृति में आश्चर्यजनक लचकीलापन है। इसके कारण यह संस्कृति बाह्य आघातों से टूटी अथवा नष्ट नहीं हुई। जीवशास्त्र का यह सर्वमान्य नियम है कि वही प्राणी दीर्घजीवी होता है जो अपने को समय और परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित कर लेता है। विश्व की अनेक संस्कृतियां विदेशी आक्रान्ताओं से पददलित होकर लुप्त ही हो गई। किन्तु भारतीय संस्कृति अपने अनुकूलता के गुण के कारण विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित बनी रही।

समय के प्रवाह में भारत की विभिन्न परिस्थितियां परिवर्तित होती रहीं। इन परिवर्तनों के कारण भारतीय धर्म, समाज, आचार–विचार, विधि, निषेध, नियम आदि की

स्थिति में भी सूक्ष्म परिवर्तन तो आता रहा, किन्तु मूल स्वरूप कभी नष्ट नहीं हुआ। उदाहरण के रूप में भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ में धर्म यज्ञ प्रधान था किन्तु कालान्तर में भक्ति प्रधान हो गया। इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था मूलतः कर्मप्रधान थी किन्तु शनैः–शनैः जन्ममूलक हो गई। मुगलों एवं अंग्रेजों के दीर्घकालीन शासन में पराधीन रहकर भारतीय सभ्यता में तो पर्याप्त परिवर्तन आया। भाषा, वेषभूषा, रहन सहन आदि पर्याप्त परिवर्तित हुए किन्तु इस सम्पूर्ण परिवर्तन में भी भारतीय समाज और धर्म के आदर्श वही रहे जो प्रारम्भ में थे।

टिप्पणी

(च) आध्यात्मिकता– भारतीय संस्कृति की अन्य बड़ी विशेषता उसकी अध्यात्म भावना है। अध्यात्म और दार्शनिकता परस्पर जुड़े हुए हैं इसीलिए समस्त भारतीय चिन्तन पर आध्यात्मिकता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। डॉ. बलदेव उपाध्याय के अनुसार, ''किसी भी संस्कृति की श्रेष्ठता का मापक उसका आध्यात्मिक चिन्तन होता है। जिस संस्कृति के आध्यात्मिक विचार जितने अधिक और गहन होते हैं, वह संस्कृति इतिहास में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है।'' भारतीय संस्कृति ने इहलौकिक सुखों को जीवन का परम लक्ष्य स्वीकार नहीं किया, अपितु इस नश्वर देह व भौतिक सुखों की अपेक्षा ब्रह्म, जीव, माया, ईश्वर, मोक्ष आदि के विचार को ही प्रमुखता दी।

भारत में शस्त्रबल की अपेक्षा तपस्या को, धूर्तता की अपेक्षा सत्य को, तथा धन की अपेक्षा धर्म को अधिक श्रेयस्कर माना गया। क्षत्रिय वर्ण को युद्ध का अधिकार तो दिया गया, किन्तु वह अधिकार आत्मरक्षा के लिए अधिक था, स्वार्थ साधन के लिए नहीं। परपीड़न सदैव ही भारत में निन्दित रहा। इसी अध्यात्म भावना के कारण यहां सामान्य प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बनी। यही आध्यात्मिकता भारतीय मानस से अनेक विकृतियों को दूर रखने का कारण बनी; और इसी वैशिष्ट्य से भारतीय संस्कृति में त्याग और परोपकार पर अधिक बल देने की प्रवृत्ति हुई। 'केवलाघो भवति केवलादी' का मन्त्रघोष इसी आध्यात्मिकता का परिणाम है। भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिकता गुण का ही यह एक रूप था कि भारत में सृष्टि, जीव, ब्रह्म, आत्मा, प्रकृति के संबंध में इतना ऊहापोह हुआ और भारतीय दर्शनों की सुपुष्ट परम्परा से देश समृद्ध हुआ।

(छ) सर्वांगीणता– मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में उसके सर्वांगीण विकास की क्रमबद्ध सुचारु योजना प्रस्तुत कर सकना भारतीय संस्कृति की बड़ी विशेषता है। मानव की जितनी भी विभिन्न प्रकार की क्षमताएं हैं, सभी के समुचित विकास का पूरा ध्यान इस संस्कृति ने रखा। विश्व की अन्य संस्कृतियों में मानव के एकांगी विकास पर ही बल दिया गया है। किन्तु भारतीय संस्कृति ने इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध करने के लिए मनुष्य के भौतिक, आध्यात्मिक, शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के विकास पर तुल्य बल दिया। पुरुष के करणीय समस्त कर्तव्यों को चार पुरुषार्थो–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में प्रस्तुत करना, तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास–इन चारों आश्रमों की एकत्र योजना इसीलिए थी। किसी भी व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है, जब उसकी विभिन्न प्रवृत्तियां सहज रूप में विकसित भी हों और पूर्णतया संतुष्ट भी।

विभिन्न चार आश्रम यही कार्य सम्पन्न करते थे। चारों पुरुषार्थो एवं चारों आश्रमों के पालन से शरीर, मन और आत्मा का सामजंस्यपूर्ण विकास होता था। धर्म और मोक्ष पर बल देकर भी भारतीय दृष्टि ने अर्थ और काम को भी स्पृहणीय माना। धर्म और मोक्ष यदि आत्मिक विकास को प्रशस्त करते हैं तो शारीरिक विकास के लिए अर्थ तथा

मानसिक विकास के लिए काम पालन भी उतना ही प्रशस्त है। सबका समान पालन ही होना चाहिए। इसी से मनुष्य का समान सर्वांगीण विकास सम्भव है।

(ज) संचरणशीलता– मनुष्य को निरन्तर कर्मरत रहकर उत्साहपूर्ण रहने की जितनी प्रेरणा भारतीय संस्कृति ने दी है, उतनी अन्य किसी संस्कृति ने नहीं। अपने पुरुषार्थ पर विश्वास करके किसी भी सरल अथवा दुर्लभ बाधा को पार करने का उत्साह, ओजस्विता एवं महाप्राणता का मंत्र भारतीय संस्कृति ने ही दिया। निष्क्रिय होकर बैठ जाना मृत्यु समान है, निरन्तर कर्म करते रहना ही जीवन है। उपनिषदों में निरन्तर कार्यशील रहने के लिए अत्यन्त सुन्दर रूपक उपलब्ध होता है–'सोता हुआ व्यक्ति कालिकाल है, निद्रा समाप्त कर जंभाई लेता हुआ ही द्वापर युग है। आलस्य त्याग कर उठता हुआ व्यक्ति त्रेता समय है और चलता हुआ भी कृतयुग कहलाता है–इसलिए निरन्तर चलते रहो, चलते ही रहो।'

टिप्पणी

(झ) धर्मपरायणता– भारतीय संस्कृति का प्राणभूत तत्त्व धर्म है, और यही इसका वैशिष्ट्य भी है। धर्म शब्द से आजकल जो अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह तो केवल बाह्य आडम्बर मात्र है। अपने आराध्य के स्थल पर जाकर घंटे बजाना या मूर्ति का विविध शृंगार करना या विविध व्यंजनों का भोग प्रस्तुत करना आदि धर्म नहीं है। भारतीय ऋषियों ने धर्म उसे कहा था, जो इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर देता हो। जिस आचरण से इस संसार में विविध उन्नति प्राप्त हो और मृत्यु से परे लोक में मोक्ष सिद्ध हो जाता हो, वही धर्म है।

धर्म की यह परिभाषा इतनी व्यापक थी कि करणीय–अकरणीय का समस्त विचार और पाप पुण्य का सम्पूर्ण विवेचन इसी परिधि में समा जाता था। जन्म से ही धर्म का यह संस्कार मिलने पर प्रत्येक भारतीय के हृदय में यह धारणा बद्धमूल हो जाती थी कि धर्म ही समस्त उन्नति का मूल है और वही जन्म जन्मान्तर का साथी है। इस संसार के अन्य समस्त संबंध मृत्युलोक में जाकर छूट जाते हैं किन्तु धर्म वहां भी साथ देता है। धर्म के इसी प्रभाव के कारण मनुष्य दुष्कर्म से निवृत्त होता है और सत्कर्म में प्रवृत्त होता है।

(ञ) आशावाद– भारतीय संस्कृति की एक और विशेषता है, इसका आशावादी होना। जीवन में अनेक विपत्तियां, बाधाएं आती हैं, किन्तु उन सभी को पार करके अपना लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, अपना अभीष्ट सिद्ध हो सकता है–आशा का यह स्वर्णिम तार भारतीय संस्कृति में सर्वत्र अनुस्यूत है। इस संस्कृति में निराशा के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। आशा ही प्रकाश है, स्पृहणीय है। निराशा तो घनघोर अंधकार है जो विवेक को आवृत्त कर लेता है। अतः निराशा सर्वथा त्याज्य है–

'आशा हि परमं ज्योतिः नैराश्यं परमं तमः'। आशावाद ही भारतीय संस्कृति का वह वैशिष्ट्य था जिसने वैदिक ऋषि को उत्साहपूर्वक शतायु हो सकने की प्रेरणा दी और ऋषि ने परमेश्वर से यही प्रार्थना की–जीवेम शरदः शतम्...। मनुष्य के मन में आशा ही वह झंकृत प्रेरणा है जो असत्य के घटाटोप में से कठिनाई पूर्वक भी सत्य को खोज निकालती है; अन्धकार से आच्छन्न वातावरण में भी प्रकाश की किरण ढूंढ़ लेती है और मृत्यु की शाश्वत सत्यता में भी अमरत्व आरोपित कर देती है।

(ट) आस्था एवं कर्मवाद– भारतीय संस्कृति ने सम्पूर्ण विश्व को आस्था और कर्मवाद का जो अपूर्व मंत्रदान दिया है, उसकी तुलना अन्य किसी संस्कृति में नहीं है। अपने

टिप्पणी

अभीष्ट की प्राप्ति के लिए निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा तो विश्व के सभी धर्मों, दर्शनों और संस्कृतियों में है। किन्तु प्रयोजन सिद्ध न होने पर भी निस्पृह भाव से कर्म करते ही रहने की योजना भारतीय संस्कृति का ही वैशिष्ट्य है। उपनिषदों में ऋषि ने उच्च स्वर में उद्घोष किया था कि निरन्तर कर्म करते हुए ही मनुष्य को शतायु होने की कामना करनी चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने इसी मूलमन्त्र को और स्पष्ट करते हुए अनासक्त कर्मयोग का सुन्दर प्रतिपादन किया। तदनुसार मनुष्य को कर्म करने मात्र का अधिकार है। उस कर्मफल की प्राप्ति में मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है।

मनुष्य को अपने किए हुए कर्म के फल की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। यदि मनुष्य के हृदय में कर्मफल की इच्छा होती है तो वह आसक्ति के बन्धन से मुक्त भी नहीं हो पाता और मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख भी नहीं होता। कर्म करते हुए न तो उसमें कोई रागद्वेष रखना चाहिए और न ही स्वयं को उस कर्म का हेतुरूप समझना चाहिए। यही अनासक्त कर्मयोग है। इस कर्मवाद का सहज परिणाम अटूट आस्था है। जब कर्म के फल में आसक्ति ही नहीं होगी, तो विफल होने पर खिन्नता और हताशा भी नहीं होगी और मानव–मन की आस्था अक्षुण्ण बनी रहेगी। यदि मनुष्य में आस्था बनी रहे, तो मन में उत्साह भी रहता है और कर्म की ओर प्रवृत्ति भी रहती है। इस प्रकार निरन्तर कर्म और आस्था का यह तत्त्व भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

(ठ) पुनर्जन्मवाद– मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति अपने कर्मों के अनुकूल पुनः विभिन्न योनियों में जन्म लेता है; पुनर्जन्म का यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति की एक और विशेषता है। मनुष्य को अपने शुभ या अशुभ कर्मो का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। जब तक कर्मफल समाप्त नहीं होते, तब तक पुनः–पुनः जन्म–मरण का चक्र चलता ही रहता है। 'अयमेव लोकः न, पर अपि'–इस लोक के उपरान्त फिर भी इसी लोक में आना सम्भव है और उस पुनर्जन्म में अपने पूर्व कर्मो के अनुसार ही सुख–दुख निश्चित होंगे–यह धारणा प्रत्येक भारतीय के हृदय में बद्धमूल होती है। कर्मफल के अनुसार पुनर्जन्म की इसी धारणा के कारण मनुष्य यथासम्भव सदाचार के पालन में प्रवृत्त होता है। मनुष्य कदर्य तथा निकृष्ट आचरण को इसलिए भी त्याग देता है कि उसका अगला जीवन सुखमय व्यतीत हो सके।

(ड) अवतारवाद– भारतीय संस्कृति में अवतारवाद एक महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट तत्त्व है। कोई भी धर्म युगानुरूप सुधारों के अनुकूल ही किंचित् परिवर्तित होता जाता है। भारतीय विश्वास के अनुसार संसार में अत्याचार एवं अन्याय का नाश करने के लिए और धर्म की पुनः स्थापना के लिए समय–समय पर महापुरुष जन्म लेते हैं और संस्कृति तथा धर्म की रक्षा करते हैं। ऐसे महापुरुष स्वभावतः ही जनता की श्रद्धा और प्रेम के पात्र बन जाते हैं। भारतीय धर्मग्रन्थों और साहित्यकारों ने इन्हीं महापुरुषों को भगवान् का अवतार मान लिया। अवतारवाद की यह परिकल्पना तर्क से नितान्त परे केवल श्रद्धा और भक्ति पर आधारित है। फिर भी अवतारवाद का स्थान भारतीय संस्कृति में विशिष्ट ही है।

(ढ) विश्वकल्याण एवं विश्वबन्धुत्व की भावना– भारतीय संस्कृति में व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को महत्व दिया गया। इस संस्कृति का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवतावादी है। घर, समाज, प्रदेश, देश सारी ही सीमा प्राचीरों को लांघकर मनुष्यमात्र वा जीवमात्र की सहायता करना, रक्षा करना तथा कल्याण की भावना रखना भारतीय संस्कृति की निजी विशेषता है। सब सुखी हों, सभी स्वस्थ रहें–यही भारतीय संस्कृति का उद्घोष है।

केवल मनुष्य ही नहीं अपितु पशु पक्षियों तक के निरन्तर कल्याण की दृष्टि से पंचयज्ञों में भूतयज्ञ भी सम्मिलित किया गया। जिससे प्रतिदिन पशुपक्षियों के प्रति भी मनुष्य सदय बना रहे और उनका पोषण करता रहे।

सभी जीवों के कल्याण की कामना के साथ–साथ सभी में परस्पर सौहार्द एवं बन्धुत्व का प्रतिपादन भी भारतीय संस्कृति ने किया। यह मेरा है या यह पराया; यह गणित तो क्षुद्रबुद्धि का होता है। जो सहज मानवीय गुणों से सम्पन्न है उसके लिए तो यह सम्पूर्ण वसुन्धरा अपना ही परिवार है, सभी जन अपने ही कुटुम्बी हैं।

टिप्पणी

जब सारा संसार ही आत्मीय है तो कोई भी अपने लिए अनुचित माने जाने वाला आचरण दूसरों के प्रति क्यों करें? 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।' विश्वकल्याण व विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर ही हमारी इस भारतीय संस्कृति ने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का बीजमन्त्र दिया। यही वह कमनीय भावना है, जिससे भावित होने पर ही विश्वशान्ति सम्भव है। भारतीय संस्कृति ने सदैव संकुचित विचारधारा और स्वार्थों से ऊपर उठकर विश्वकल्याण और सम्पूर्ण मानवता की सेवा पर बल दिया।

(ण) त्याग–भाव– भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है उसकी त्याग भावना। आज विश्व की अन्य जितनी संस्कृतियां परिलक्षित होती हैं, उनमें किसी में त्याग को वह समादर प्राप्त नहीं हो सका, जो भारतीय संस्कृति में मिला। मनुष्य मात्र में स्वार्थ की प्रवृत्ति जितनी सहज है, संग्रह की लालसा भी उतनी ही स्वाभाविक है। किन्तु मनुष्य दूसरे के लिए अपनी आवश्यकता को न्योछावर कर सके, कभी दूसरे की वस्तु का लोभ न करे–यह पाठ भारतीय संस्कृति ने ही पढ़ाया।

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय त्याग के विभिन्न उदाहरणों से भरा पड़ा है। शिवि, दधीचि, कर्ण आदि अपनी त्याग भावना के कारण ही अमर यशस्वी हुए। भारत के तो राजा भी धन का संग्रह त्याग के लिए ही करते थे–'त्यागाय सम्भृतार्थानाम्।' आज के भौतिकतावादी युग में जब धन ने अन्य सभी पुरुषार्थों को आक्रांत कर लिया है, तब त्याग की ही भावना इस लूट–पाट पर अंकुश का कार्य कर सकती है। इसीलिए मैक्समूलर ने लिखा 'मानवीय चिंतन शक्ति यहां पर अपने सर्वोच्च शिखर पर है, इसके आगे शेष नहीं है। आर्थिक जगत् की समस्याओं के हल का यही मूल सिद्धांत है।'

(त) साम्यवाद– बीसवीं शताब्दी के इस युग में साम्यवाद एक नूतन विचारधारा के रूप में अत्यन्त समादृत है। रूस इस वाद का अग्रगण्य देश है। किन्तु भारतीय संस्कृति ने तो आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ही साम्यवाद का उद्घोष करके उसको सुदृढ़ वैचारिक भित्ति प्रदान कर दी थी। सर्वप्रथम तो ऋग्वेद का पुरुष सूक्त ही इसका प्रमाण है। स्मरणातीत काल से ही उसने यह घोषणा की है कि समस्त मानव समाज एक अखण्ड सत्ता से सत्तावान् है; एक अनन्त प्राणशक्ति के द्वारा संजीवित है; एक परम पुरुष की विराट देह है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व एवं शूद्र इस विराट देह के विभिन्न अंग हैं। देह के अंग प्रत्यंगों में विविधता और भिन्नता जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही सहज विविधता और भिन्नता इन चारों वर्णो में भी है। किन्तु सम्पूर्ण अंग प्रत्यंगों में एक प्राणशक्ति के सदृश ही सम्पूर्ण मानव–समाज में एक जीवन्त एकत्व इसका यथार्थ परिचय है। इसी कारण सर्वत्र साम्यभाव मानना ही सर्वाधिक उन्नत विचार है।

सारांश में साम्यवाद भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट विशेषता मानी जा सकती है। भारतीय संस्कृति मानव जीवन के समानुपातिक समूचे विकास की दृष्टि से अत्यन्त

महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति ने सदैव ही मानव को राह दिखाई थी किन्तु आज भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के बादल मंडराते देखे जा रहे हैं। ऐसा आधुनिकता और अंधानुकरण तथा विवेक हीनता के कारण कुछ अधिक हो रहा है, ऐसे में कहा जा सकता है।

टिप्पणी

जहां तक भारतीय संस्कृति की बात है तो ये बेझिझक कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति विश्व के इतिहास में अपना अलग ही महत्व रखती है। कारण, इसकी अनेकानेक विशेषताएं रही हैं, उनमें एक है–इस संस्कृति का अति प्राचीन होना। साथ ही यह संस्कृति अमरता लिए हुए भी है। यह संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में अपनी विशिष्टता के लिए जानी–पहचानी जाती रही है। मोहनजोदड़ों की खुदाई के पश्चात् यह मिस्र, मेसोपोटेमिया की सबसे प्राचीन सभ्यताओं के समकालीन ही जानी जाने लगी है।

वस्तुतः चीन की संस्कृति के अलावा पुरानी दुनिया की दूसरी सभी–मेसोपोटेमिया की सुमेरियन, असीरियन, बेबीलोनियन और खाल्दी प्रभृति और मिस्र, ईरान, यूनान तथा रोम की संस्कृतियां, ये सभी संसार के पटल से समाप्त हो चुकी हैं। अपना अस्तित्व बिसरा चुकी हैं। अब, तो इन संस्कृतियों में से कुछ ही के धूलधूसरित अवशेष ही इनकी गाथा गाते सुने जाते हैं। परन्तु हमारी संस्कृति, भारतीय संस्कृति अनेक हजार वर्षों तक काल की मार सहती हुई भी अभी तक जीवंत है। भारतीय संस्कृति अति प्राचीन और अमर होने के साथ–साथ यह जगत–गुरु के रूप में भी अपना स्थान रखे हुए है। इस संस्कृति ने केवल महाद्वीप जैसे भारतवर्ष को ही सभ्यता का पाठ ही नहीं पढ़ाया बल्कि भारत के बाहरी भाग की जंगली जातियों को भी सभ्य जीवन जीना सिखाया, उदाहरण, साइबेरिया के सिंहल (आज के श्रीलंका) तक तथा मैडागास्कर टापू ईरान तथा अफगानिस्तान से प्रशान्त महासागर के बोर्नियो, बाली के द्वीपों तक के विशाल भू–भाग पर भी अमिट छाप छोड़ी है। भारत की समृद्ध भौतिक संस्कृति भी अपने आपमें बेजोड़ रही है। हड़प्पा सभ्यता तो भारतीय उप–महाद्वीप की प्राचीन से भी प्राचीन सभ्यता मानी गई है।

भारत मानव जाति के विकास का उद्‌गम स्थान और गाथाएं चली आ रही परम्पराओं, और रीति–रिवाजों का भी कर्मस्थल तथा इतिहास का पिता रहा है।

भारत का भौगोलिक ताना–बाना संस्कृति क्षेत्र, प्रजातियां, जातियां, क्षेत्रों की भिन्नता और एक स्थान से दूसरे स्थान की भाषाएं–बोलियों को विभिन्नताओं से सम्पन्न रही है।

भारत के मानव शास्त्र के एक सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि भारत में 91 संस्कृति क्षेत्र हैं ये सब इक–दूजे से पूरब–पश्चिम और उत्तर–दक्षिण ही रहे हैं। गुजरात, राजस्थान के अन्दर ही अनेकानेक संस्कृति रची–बसी मिलती हैं। एक दृष्टि से कहा जा सकता है कि संस्कृति क्षेत्र क्षेत्रवाद का जन्मदाता होता है।

संस्कृति को लेकर श्रीनिवासन का मत है कि प्रत्येक क्षेत्रीय पहचान की कुछ विशेषता होती है। यह विशेषता भाषा, भौतिक संस्कृति, भोजन की आदतें, लोक साहित्य और धर्म के स्थानीय स्वरूपों में देखी जा सकती है। वैश्वीकरण का जाल न्यूयार्क से चलकर देश के दूर–दराज गांव तक आ गया है। फिर भी स्थानीय पहचान कहीं भी कमजोर हुई हो, ऐसा नहीं है। अगर मेकडोनल्ड चलता है, तो छोले–भठूरे भी चलते हैं।

टिप्पणी

वैसे देखा जाए तो संस्कृति का सामान्य अर्थ संस्कार से भी लिया जाता है। संस्कार जन्मजात भी होते हैं। माता के संस्कार भी बालक–बालिकाओं में आते हैं। फिर परिवार के संस्कार भी बच्चों में आते हैं। परिवार के और उसके सदस्यों के वातावरण के संस्कार भी बच्चों में आते हैं। तो कुल मिलाकर संस्कार मुख्य स्थान रखते हैं। परिवार और घर के वातावरण के पश्चात् घर के आस–पड़ौस, गली–मोहल्लों फिर विद्यालय फिर गांव, कस्बे शहर और राष्ट्र तक के संस्कार दोनों ही लिंगों (बालक–बालिका) में अपनी छाप छोड़ते हैं। वहीं छाप विशेष बच्चों पर पड़ती है, जिस कृत्य से वह व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दोनों ही लिंगों पर अपनी संस्कृति का प्रभाव शुद्ध अथवा मिला–जुला अवश्य पड़ता है। कारण, मनुष्य सामजिक प्राणी है। समाज से प्रभावित हुए बिना वह शायद ही रह पाता हो। इस प्रकार कह सकते हैं कि संस्कृति के माध्यम से लिंग की (पुरुष/स्त्री) भूमिकाएं समाज और राष्ट्र में अपना विशेष स्थान रखती हैं। कारण, दोनों लिंगों के मिलन से ही परिवार बनता, समाज बनता है और राष्ट्र का चहूंमुखी विकास भी होता है।

वर्तमान में देखने में आ रहा है कि भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति की घुसपैठ अपनों ही के द्वारा अधिक की जा रही है। कारण, पाश्चात्य संस्कृति में चमक–दमक दिखावा और आधुनिकता की भरमार अत्यधिक है जबकि भारतीय संस्कृति ठोस, गंभीर और अर्थपूर्ण है। इसी संदर्भ में बात ये भी उभर कर आती है कि आज हम किसी भी विषय को लेकर जब बातें करते हैं तब पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं अधिक उद्धत करते हैं। अपने प्राचीन विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का नाम तक नहीं लेते। यहां इसके दो कारण अधिक प्रतीत होते हैं, पहला–हमारे अधिकतर ग्रंथ संस्कृत में हैं और संस्कृत को सीखने, जानने और समझने वाले, उसका प्रयोग करने वाले अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं और जो हैं भी वह भी अंग्रेजी के सामने अपनी हीन भावना के कारण संस्कृत और हिन्दी या अन्य प्रांतीय भाषा के विद्वानों की परिभाषाएं देते हुए हिचकते हैं।

वे अपने विद्वानों के उदाहरण देते हुए लज्जा का अनुभव करते हैं इसीलिए अंग्रेज विद्वानों की परिभाषाएं अधिक पढ़ने को मिलती हैं जबकि सत्य यह है कि हमारी संस्कृति अति प्राचीन रही है। यहां विद्वान भी उच्च कोटि के रहे हैं किन्तु दुर्भाग्य ये रहा है कि उनमें से अधिक ने ज्ञान को अपनी बपौती समझकर प्रकट ही नहीं किया अथवा करने ही नहीं दिया। अन्यथा तो भारतीय संस्कृति अपनी गरिमा के कारण विश्व की अग्रणी संस्कृतियों में से एक रही है। उधर, हमारे यहां से विदेशी विद्वान यहां आए। उन्होंने यहां के ग्रंथों का गूढ़ अध्ययन किया और उसी के आधार पर नई–नई परिभाषाएं बनाई। उन्हें उजागर किया। बाद में लोगों ने उन्हीं परिभाषाओं को अपनी परिभाषा कहकर अपनी भाषाओं में आगे बढ़ाया।

दोनों ही लिंग परिवार, समाज में मान्य रहे हैं। बालक–बालिका का जन्म, पालन पोषण एक ही माता–पिता द्वारा एक ही परिवार में किया गया। बाद में उनको अलग–अलग दृष्टि से देखा जाने लगा। किन्तु, दोनों ही लिंगों की भूमिका संस्कृति के माध्यम से घर–परिवार और समाज में मुखरित होती रही। दोनों लिंगों ने घर, परिवार में अपनी–अपनी भूमिकाओं/दायित्वों को स्थापित कर लिया, उदाहरण–स्त्री ने घर–परिवार की चहारदीवारी के सारे दायित्व अपने ऊपर ले लिए जबकि पुरुष ने घर–परिवार के बाहर के दायित्व स्वयं संभाल लिए।

इस प्रकार दोनों के ही संस्कार उनकी संतानों (बालक–बालिका) पर गाहे–बगाहे पड़े बिना न रहे। ये ही संस्कार दोनों लिंगों के घर की चहारदीवारी से बाहर जाने पर समाज में फैले। उनका आदान–प्रदान समाज के अन्य लोगों (लिंगों) पर भी हुआ। इस प्रकार ये संस्कार ही संस्कृति का रूप लेते गए और संस्कृति के माध्यम से लिंग की भूमिका घर–परिवार, गली मुहल्ले, गांव कस्बे और शहर यहां तक कि समूचे राष्ट्र में भी व्याप्त होती चली गई।

टिप्पणी

परिवार के माध्यम से लिंग की भूमिकाएं

वस्तुतः घर के साथ परिवार स्वयं ही संलग्न होता है, अर्थात् घर–परिवार। अतः घर के बिना परिवार का कोई महत्व नहीं और परिवार के बिना घर का कोई महत्व नहीं माना जा सकता। ऐसे में यह भी कह सकते हैं कि ये दोनों एक–दूजे के पूरक हैं या फिर पर्यायवाची भी माने जा सकते हैं। जिस प्रकार घर की संरचना केवल स्त्री या केवल पुरुष से नहीं हो सकती, उसी प्रकार समाज की कल्पना भी इन दोनों के बिना नहीं की जा सकती। जिस प्रकार घर, परिवार इक–दूजे के पूरक हैं, उसी प्रकार स्त्री–पुरुष भी एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है और दूसरे के बिना पहला अधूरा है। इन दोनों के मिलन से ही समाज की उत्पत्ति होती है। परिवार की उत्पत्ति होती है। घर की उत्पत्ति होती है। इसी को दृष्टि में रखते हुए हिन्दू धर्म में अर्धनारीश्वर की धारणा बहुत पहले से की जा चुकी है। इस प्रकार कह सकते हैं कि घर–परिवार में लिंग की भूमिका विशेष होती है।

यहां यह भी बतलाना आवश्यक समझा जा रहा है कि स्त्री लिंग और पुरुष लिंग के अतिरिक्त प्रकृति की ओर से एक और भी 'जीव' की रचना की गई है, जिसे सामान्य भाषा में 'हिजड़ा' कहा जाता है। वह न स्त्री लिंग की श्रेणी में आता है और न ही पुरुष लिंग की श्रेणी में आता है लेकिन उसका रंग रूप आकार प्रकार मानवीय आकार–प्रकार से काफी मिलता–जुलता है। इसका कारण होता है कि वह 'नपुंसक' होता है–अर्थात् लिंग रहित होता है। उसकी प्रकृति में चुलबुलाहट अधिक होती है। इसीलिए न तो उन्हें पुरुष श्रेणी में रखा जाता है और न ही स्त्री श्रेणी में। उनका समाज में कोई खास दर्जा भी नहीं होता। उनके जीविकोपार्जन का साधन नाचना–गाना ही अधिक होता है।

जब घरों में बच्चे का जन्म या विवाह/शादी कार्य होते हैं, तभी ये ज्यादातर नाचने–गाने जाते हैं। जच्चा–बच्चा और नवयुगल को आशीष देने जाते हैं। शुभ मनाने जाते हैं। इनका आगमन घर–परिवार वाले शुभ मानते हैं। परन्तु ये समाज में होते हुए भी समाज से अलग ही समझे जाते हैं। उन्हें किसी सरकारी गैर–सरकारी नौकरी में भी नहीं रखा जाता है। इन्हें 'छक्का' और 'किन्नर' आदि के नाम से भी पुकारा जाता है। पहले इन्हें युद्धों में रक्षा कवच के रूप में प्रयोग में लाया जाता था। रनिवासों में भी हिजड़े रखे जाते थे। ये हंसी और हल्का–फुल्का मजाक तक करके रानियों का दिल भी बहलाया करते थे। समय के साथ–साथ इस श्रेणी में भी पढ़े–लिखे होने लगे। पढ़ाई–लिखाई के महत्व को समझने लगे। परिणाम, अपने मानवीय अधिकारों के प्रति भी उनमें जागृति आने लगी है। लेकिन सरकारी, गैर सरकारी संस्थान उनके प्रति अभी भी उदासीन ही रूप अपनाए हुए हैं। ऐसे में उनकी ओर से आवाजें उठायी जाने लगी हैं।

चुनावों में भी किन्नरों ने उठना शुरू कर दिया है। इसे एक अच्छी पहल के रूप में देखा जाना चाहिए। आखिर, वे भी इज्जत का जीवन जीने के इच्छुक होते हैं। उनकी

भी इच्छाएं होती हैं अरमान होते हैं। कारण, इस नपुंसकता में उनका तो कोई दोष नहीं हैं। वे भी पुरुष और स्त्री लिंग के संभोग की ही देन हैं। फिर उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव क्यों। उनके जीवन को गंभीरता से लिया जाना चाहिए। इन्हें भी मानवीयता और मानवीय अधिकारों का मुद्दा बनाया जाना चाहिए। इस विकृति के लिए वे किसी भी दृष्टि से दोषी नहीं माने जाने चाहिएं। आखिर वे भी किसी–न–किसी प्रकार हमारे ही समाज का हिस्सा शुरू से ही रहे हैं। सो, उनके लिए भी नियम और कानून बनाने की महती आवश्यकता है। विशेषरूपेण, तब जबकि आज पशु–पक्षी, जड़–चेतन, यहां तक कि नदियों तक को भी मानवीय अधिकार प्रदान किए जा रहे हैं।

टिप्पणी

अब जहां तक घर–परिवार की बात आती है सो, आजकल घर में दो प्रकार के परिवार रहते हैं–संयुक्त परिवार और एकल परिवार। समय परिवर्तनशील होता है। समय के साथ–साथ सब परिवर्तित होता रहता है, प्रकृति द्वारा भी और समाज द्वारा भी। परिवर्तन अवश्यंभावी है। ये एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार आवागमन।

प्रत्येक समाज में विवाह और परिवार के महत्व को स्वीकार किया गया है। परिवार समाज की रीढ़ की हड्डी के जैसा होता है। परिवार ही बच्चे का प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्र होता है। वहां वह जन्म से बड़े होने तक संस्कार ग्रहण करता है। जीवन–यापन के तौर–तरीके और सभ्य समाज के आचार–विचार सभी कुछ सीखता रहता है।

परिवार मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है। जिसके द्वारा उसके सामाजिक प्राणी होने की बात स्पष्ट होती है। मनुष्य, समाज परिवार रूपी छोटी–छोटी इकाइयों में बंटा हुआ उन्नति करता रहता है।

वैसे तो, यकायक बड़े मनुष्य समाज को नियंत्रित और शिक्षित करना या प्रत्येक मनुष्य के विकास पर निगाह रखना सम्भव नहीं हो सकता। किन्तु परिवार रूपी छोटी इकाइयां इस प्रकार का लेखा–जोखा बखूबी रख सकती हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने व्यक्तिगत विकास के लिए परिवार पर निर्भर रहना आवश्यक हो जाता है।

परिवार मनुष्य की कई आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। साथ ही एक सम्पूर्ण, संतुष्ट और सुखी जीवन के लिए परिवार की ही महती आवश्यकता होती है। परिवार को बनाए रखने का दायित्व केवल स्त्रियों पर ही नहीं वरन पुरुषों पर भी बराबर का सा होता है। प्रत्येक को अपने हिस्से के कार्य पूर्ण कुशलता से करने होते हैं तभी घर का संचालन सही ढंग से हो सकता है। घर में रहने वाले प्रत्येक सदस्य का महत्व होता है। कई लोगों से मिलकर ही घर बनता है। घर में माता–पिता की संतानें ही होती हैं।

परिवार घर के सदस्यों से बनता है। घर के फर्नीचर, दीवारों या सामान से नहीं। परिवार को बनाए रखने के लिए सभी के बीच परस्पर समन्वय होना आवश्यक होता है। परिवार रूपी गाड़ी का एक पहिया भी पटरी से उतरा नहीं कि गाड़ी डगमगा जाती है।

परिवार में सभी सदस्यों के बीच आपसी सौहार्द, मेल–मिलाप, त्याग और सहयोग की भावना का होना आवश्यक है वरना घर को बिखरते देर नहीं लगती। सभी का सहयोग इसमें आवश्यक है। यदि घर के सदस्यों में सही तालमेल नहीं होता तो प्रायः छोटी–छोटी बातों पर झगड़े होते रहते हैं। बात–बात पर तकरार और मतभेद होते हैं। इस प्रकार के झगड़े प्रायः घर की शांति को भंग कर उसे लड़ाई का सा मैदान बना

देते हैं। आए दिन के झगड़े और तकरारों के कारण मन और शरीर दोनों ही अस्त–व्यस्त हो जाते हैं। कई बार परिवार के सदस्य बीमार भी पड़ जाते हैं।

आपसी तालमेल की कमी मानसिक शांति को भंग कर देती है। परिणाम, कई बार घर टूटने की नौबत आ जाती है।

टिप्पणी

यदि घर में स्वस्थ वातावरण न हो तो इसका असर बच्चों के मानसिक विकास पर पड़ता है। वे अवहेलना के भी शिकार हो जाते हैं। कई बार बच्चे बड़ों की देखा–देखी वही व्यवहार अपना लेते हैं और धीरे–धीरे उनकी आदतें पक्की होती जाती हैं।

अकसर बच्चों को अभद्र व्यवहार करते देखा जाता है। सभ्य लोग इसे परिवार के लोगों की लापरवाही ही मानते हैं। क्योंकि बच्चे अपने परिवार का प्रतिरूप कहे जाते हैं। कम आयु और मार्गदर्शन की कमी के कारण बच्चे भी वही व्यवहार करने लगते हैं जो वे अपने घरों में प्रायः देखा करते हैं। इस प्रकार घर की चार–दीवारी के अन्दर घटने वाली घटनाओं का प्रतिबिम्ब घर के बाहर नजर आने लग जाता है। वर्तमान में, पाश्चात्य संस्कृति के झोंके में लोग भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। वैसे यह कहना ज्यादा उचित होगा कि हमने पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को कम और अवगुणों को अधिक ग्रहण किया हुआ है। सभ्य आचार–विचार की जगह खुलापन और शिक्षा की जगह फूहड़ता को ग्रहण किया हुआ है।

आदमी की मौलिक प्रवृत्ति आदिम ही होती है। अतः पाश्चात्य सभ्यता में जो खुलापन या आजादी थी उसे बेशर्मी और नंगेपन के रूप में अपना लिया है।

वास्तव में हमारे देश में अर्थ का अनर्थ ही ज्यादा लगाया जाता है। विकास, आजादी और उन्मुक्तता को भौतिक साधनों पर आरोपित कर दिया गया है। अपने आचार–विचार और संस्कारों का त्याग कर दिया गया है। समाज में आए इन परिवर्तनों का सीधा असर पारिवारिक जीवन पर पड़ा है।

पहले हमारे यहां दया, सहिष्णुता, सामंजस्य, धैर्य इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी, ये सभी तत्त्व वास्तव में पारिवारिक जीवन से जुड़े हुए थे। किन्तु आज के जमाने में ये गुण दरकिनार कर दिए गए हैं। फलस्वरूप परिवारों में विघटन और असंतोष फैलता जा रहा है।

पहले बच्चे सदैव अपने माता–पिता के आचरण का अनुगमन करते थे। अतः परिवार में माता–पिता की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती थी। किन्तु आज बच्चे और युवा दूरदर्शन, फिल्मों और बाहर की दुनिया को ज्यादा ग्रहण करते हैं। इससे परिवार में बड़ों की भूमिका एक तरह से गौण–सी ही होकर रह गई है।

दूसरी तरफ, यदि माता–पिता अपने व्यवहार को संतुलित नहीं रखते तो इसका असर उनके बच्चों पर भी अवश्य ही पड़ता है। माता–पिता को बच्चे का प्रथम गुरु और घर परिवार को प्रथम पाठशाला कहा गया है। गुरु ही यदि पथभ्रष्ट और कुसंस्कारी हो तो शिष्यों से क्या अपेक्षा की जा सकती है। ऐसे में माता–पिता और बड़ों को भी अपने व्यवहार के प्रति अति सजग रहने की आवश्यकता है।

यदि आप बच्चों को सही शिक्षा देना चाहते हैं तो सबसे पहले उसे स्वयं पर लागू करना चाहिए। हर परिवार के अपने नियम–कायदे, संस्कार एवं मान्यताएं होती हैं।

यदि बड़े ही उनका पालन न करें तो बच्चों से उनके पालन की अपेक्षा करना व्यर्थ है। ऐसे में समझौते और समझदारी की आवश्यकता होती है।

घर को सुख और संतुष्टि का केन्द्रबिन्दु बनाना ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। यदि आपका घर आपकी अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं है तो कोई भी समय उसके सुधार के लिए अनुचित नहीं है। यदि आप अपने घर की व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं तो इसके लिए स्वयं प्रयास करें। वास्तव में घर के प्रत्येक सदस्य को यह अधिकार है कि वह परिवार के लिए कुछ योगदान करे। यदि आपके विचार और प्रस्ताव अच्छे हैं तो कोई कारण नहीं कि परिवार में आपको कोई पक्षधर न मिले। अपनी बात को रखने के लिए परिवार के सदस्यों से बातचीत करना अति–आवश्यक होता है। यदि आपके बीच बातों का पुल नहीं है तो हो सकता है कि आपकी मेहनत पर पानी फिर जाए और आप अपने प्रयासों में सफल न हो सकें। हो सकता है मन का कार्य न होने पर आप परिवार के सदस्यों पर अपनी खीज उतारें और सुधार की अपेक्षा स्थिति और बिगड़ जाए। इस तरह आपस में मनमुटाव हो सकता है। अतः उचित होगा कि परिवार के सदस्यों के बीच परस्पर विचार–विमर्श होता रहे। एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान किया जाए।

टिप्पणी

पारिवारिक विचार–विमर्श में बच्चों एवं बड़ों को भी अवश्य सम्मिलित करना चाहिए। इससे जहां बच्चों में समझ और तर्कशक्ति का विकास होगा, वहीं बड़े अपने अनुभवों से आपको लाभान्वित भी कर सकते हैं। उनके अनुभवों को ध्यानपूर्वक सुनकर अपने मतलब की बात को निकालना चाहिए।

पारिवारिक जीवन अत्यन्त जटिल होता है। रिश्ते–नातों की डोर हर पहलू से उलझी हुई होती है। इस डोर को सुलझाने के लिए कुशलता और सुझबूझ की जरूरत होती है। नहीं तो एक भी गलती इस डोर को तोड़ डालती है। हर संबंध का और हर व्यक्ति का अपना अलग महत्व होता है। परिवार के संचालन के लिए हर व्यक्ति को साथ लेकर चलना पड़ता है। परिवार में छोटे से लेकर बड़े तक हर किसी की भावनाओं एवं जरूरतों का ध्यान रखना पड़ता है। हर किसी की अपेक्षाएं होती हैं अन्य सदस्यों से। यदि वे पूरित न हों तो अकसर टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। धीरे–धीरे ये टकराव परिवार के बिखराव की पृष्ठभूमि तैयार कर देते हैं। जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तो प्रायः लोग एक–दूसरे पर दोषारोपण करने लगते हैं। एक–दूसरे पर दोषारोपण करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि इसकी भूमिका तैयार करने में कहीं–न–कहीं हमारा भी हाथ है। अपने व्यवहार और नकारात्मक सोच से लोग अकसर जटिल स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

इन जटिलताओं और अप्रिय स्थितियों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि इन समस्याओं पर कड़ी निगाह रखी जाए। इन्हें उत्पन्न करने वाले कारकों पर ध्यान दिया जाए। सबसे पहले यह जरूरी है कि बारीकी से पारिवारिक ढांचे का अध्ययन किया जाए। पारिवारिक वृक्ष का उसकी जड़ से लेकर पत्ती तक अध्ययन किया जाए। पारिवारिक संबंध अत्यन्त जटिल और आग्रहपूर्ण होते हैं। इसमें सभी की भूमिका होती है चाहे वह सास–ससुर हों, माता–पिता हों, भाई–बहन, देवर–ननद या अन्य संबंधी ही क्यों न हों।

घर–परिवार में सबसे बड़ी भूमिका स्त्रियों की होती है। स्त्रियां परिवार की धुरी होती हैं। जमाना चाहे जितना भी बदल जाए या लोगों की सोच में कितना भी परिवर्तन

क्यों न हो जाए, स्त्रियां हमेशा से परिवार की धुरी रही हैं और रहेंगी। यदि आप स्त्रियों से पूछें तो ज्ञात होगा कि परिवार में केन्द्रीय भूमिका निभाते हुए अधिकांश स्त्रियां प्रसन्न होती हैं और गर्व का अनुभव भी करती हैं।

टिप्पणी

ईश्वर ने स्त्री को वह क्षमता वह सामर्थ्य और वे गुण दिए हैं कि घर के संचालन मे वे सहज ही निपुण होती हैं। वास्तव में इसके पीछे कारण यह है कि स्त्रियों की दृष्टि बहुत ही सूक्ष्म होती है और मेधा तार्किक। वे प्रत्येक चीज के कारण और निवारण पर सूक्ष्म दृष्टि रखती हैं। छोटी–छोटी वस्तु भी सदैव उनके ध्यान में रहती हैं। प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता के बारे में उनसे अच्छा कोई और जान ही नहीं सकता।

जहां तक पुरुषों का सवाल है, कहा जा सकता है कि पुरुषों में शारीरिक बल अधिक होता है। वे इसका उपयोग विशिष्ट कार्यों में करने की मनोवृत्ति रखते हैं। घर के छोटे–छोटे कार्य उनकी अतिरिक्त शक्ति और धैर्य को तोड़ देते हैं। इसलिए पुरुष घर में छोटे–मोटे काम करने में रुचि लेते ही नहीं हैं।

घर में रात–दिन कोई न कोई कार्य चलता रहता है। गृहिणी को हमेशा व्यस्त रहना पड़ता है। इसके साथ ही रिश्तों और संबंधों के विषय में भी स्त्रियां ही चतुरता अधिक रखती हैं। पुरुष संबंधों के जटिल जाल से सदैव बचते रहते हैं किन्तु स्त्रियां इन्हें निभाने में मुख्य भूमिका निभाती हैं। अतः स्वतः ही यह जिम्मेदारी स्त्रियों पर डाल दी जाती है। या यह भी कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन के प्रारम्भ में ही स्त्री और पुरुष के मध्य यह अव्यक्त समझौता हो गया। दोनों ने ही अपनी भूमिकाओं को सहज रूप से स्वीकार कर लिया। पुरुष ने यदि पालन का दायित्व उठा लिया तो स्त्री ने पोषण का दायित्व वहन कर लिया। अपनी–अपनी शारीरिक क्षमताओं और योग्यताओं के आधार पर कार्य का निर्धारण आपसी तालमेल से कर लिया गया।

लेकिन गृहस्थी में कार्यों के अलावा संबंधों का भी महत्व होता है। जिनको निभाने में स्त्री और पुरुष दोनों की बराबर की भागीदारी होती है। यदि एक–दूसरे का सहयोग न किया जाए तो आपस में मनमुटाव हो सकता है। इस प्रकार के घरेलू जीवन के उपद्रवों से बचने के लिए संयम और समझदारी की आवश्यकता होती ही है।

वस्तुतः परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो एकल परिवार होते हैं, जिसमें विशेषतया पति–पत्नी और बच्चे ही होते हैं। दूसरा संयुक्त परिवार, जिसमें बहुत बड़ा कुनबा होता है। एकल परिवार व्यक्ति का अपना निजी परिवार होता है। इसके सदस्य एवं सबंध सीमित होते हैं। इस प्रकार के परिवार अधिकांशतया शहरों में ही अधिक होते हैं। किन्तु एकल परिवार से भी अन्य करीबी रिश्तेदार जुड़े होते हैं, यथा मामा–मामी, फूफा–फूफी आदि–आदि। अब चाहे ये रिश्ते एक छत के नीचे न रहते हों। फिर भी आपस में मिलने–जुलने, आते–जाते रहते हैं। एक–दूसरे के काम भी आते रहते हैं। आपसी संबंध बनाए रखते हैं।

शहरों के एकल परिवार में केन्द्रीय भूमिका दोनों ही लिंगों (स्त्री–पुरुष) की रहती है। पति–पत्नी आपसी सहयोग से सारे पारिवारिक दायित्व पूरे करते रहते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि परिवार में दोनों ही लिंगों की भूमिका प्रमुख रहती है। शहरों में एकल परिवारों में जहां दोनों ही काम करते हैं, वहां भी वे कुशलता, साझेदारी और समझदारी से अपने परिवार की सारी जिम्मेदारियों को कुशलता से पूरा करते हैं और जिन परिवारों में ऐसा नहीं होता है वहां आपसी सहयोग से परिवार के सारे दायित्वों को निभाना ही अति उत्तम माना जाता है।

अब बात आती है समाज की। जिस प्रकार स्त्री को पुरुष की रीढ़ की हड्डी माना जाता है, उसी प्रकार परिवार भी समाज की रीढ़ की हड्डी का कार्य करता है।

देखने में आता है कि आज भारतीय समाज परिवर्तन के भारी दौर से अपनी मंजिल तय कर रहा है। आज लोग पुरानी मान्यताओं से मुक्ति भी पाना चाहते हैं और पुरानी मान्यताओं को छोड़ना भी नहीं चाहते हैं। वे नई मान्यताओं को भी समाज में स्थापित करना चाहते हैं। जबकि होना ये चाहिए कि पुरातन में या नवीनतम में जो भी सर्वहितकारी बातें/रीति–रिवाज हों, उन्हें अपनाते हुए संतुलित मार्ग अपनाना अधिक हितकर रहेगा। भारतीय समाज में प्रत्येक विषय पर गहनता से विचार–विमर्श किया गया है। सभी क्षेत्रों में विविध प्रयोग किए गए हैं इसलिए भारतीय समाज विकास और प्रगति के मार्ग पर निरंतर कदम बढ़ाता रहा है।

टिप्पणी

प्रत्येक क्षेत्र में आने वाले परिवर्तन का प्रभाव व्यक्ति के जीवन और उसकी सोच पर भी पड़े बिना नहीं रहता। आज का भारतीय समाज पाश्चात्य और आधुनिक जीवन शैली को अपनाने की अंधी होड़ में स्वयं को लगाए हुए है। इसके दुष्परिणाम भी समाज में आने शुरू हो गए हैं, यथा–हिंसा, अस्थिरता, अविश्वास, आत्म हत्या, आगे बढ़ने की दौड़ अधिक प्राप्ति की लालसा, दुविधा की स्थिति आदि–आदि। इन्हीं सब विपरीत परिणामों को देखते हुए भारतीय समाज पुनः अपनी पुरानी जड़ों की ओर लौटने की राह तलाशने लगा है। आज का भारतीय समाज समृद्ध पारिवारिक जीवन भी जीना चाहता है और साथ ही निजता और स्वतंत्र व्यक्तित्त्व भी। सो, घर–परिवार में भी रहकर आज का समाज निजता और व्यक्तित्व का विकास भी कर सकता है। कारण परिवार ही वह मुख्य कारक होता है जो व्यक्ति को विशेष बनाने की क्षमता रखता है। एक स्वस्थ और सधा हुआ संस्कारिक घर–परिवार ही अच्छे समाज की नींव होता है। ऐसे ही समाज के कंधों पर सुदृढ़ राष्ट्र का सुदृढ़ भवन खड़ा रहता है। और यही उज्ज्वल भविष्य का भी प्रतीक माना जाता है।

सार रूप में कहें तो घर और समाज में स्त्री और पुरुष दोनों की ही खास भूमिकाएं होती हैं। इन दोनों विपरीत लिंगों के सायुज्य से ही घर और समाज का निर्माण होता है। ये दोनों लिंग घर और समाज की धुरी के समान होते हैं।

जाति के माध्यम से लिंग की भूमिकाएं

भारत में जाति–प्रथा पुराने समय से चली आ रही है। भारतीय उप–महाद्वीप में सामाजिक वर्गीकरण और सामाजिक प्रतिबंधों का परिचय देती प्रतीत होती है। जाति प्रथा में समाज के अलग–अलग वर्ग हजारों सजातीय विवाह और आनुवंशकीय समूहों के रूप में स्पष्ट किए जाते हैं। इन्हें ही ज्यादातर जाति अथवा 'कास्ट' के नाम से जाना–पुकारा जाता है। इन्हीं जातियों के मध्य विजातीय समूह भी होते हैं। इन्हें गोत्र की संज्ञा दी जाती है। ये गोत्र किसी व्यक्ति को अपने कुटुम्ब द्वारा मिली एक वंशावली की पहचान की रूप में जाना जाता है। कुछ उपजातियों जैसे शकाद्विपी ऐसी भी हैं जिनके बीच एक ही गोत्र में विवाह स्वीकार किए जाते हैं। इन उप–जातियों में प्रतिबंधित सजातीय विवाह अर्थात एक जाति के बीच विवाह को रोकने के लिए कुछ तरीके भी अपनाए जाते हैं। कारण, इन्हें समाज द्वारा उचित नहीं ठहराया जाता है।

वैसे तो जाति प्रथा को मुख्यतया हिन्दू धर्म के साथ ही जोड़कर जाना जाता है किन्तु भारतीय उप–महाद्वीप में अन्य कई अन्य धर्मों में भी जाति प्रथा को प्रचलित हुआ देखा जाता है, जाति–प्रथा प्रचलित है, यथा–मुसलमान और ईसाई धर्म में।

भारतीय संविधान द्वारा समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र जैसे सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए जाति के ऊपर आधारित भेदभावों को गैर–कानूनी घोषित कर दिया है। बड़े शहरों में अधिकतर जाति–बंधनों को तोड़ने की प्रथा सी ही चल पड़ी है। जबकि भारतीय गांवों में अभी भी जाति–प्रथा को मान–सम्मान दिया जाता है।

टिप्पणी

भारत में हिन्दू धर्म में निम्नलिखित आधारभूत जातियां अभी भी प्रमुख रूपेण प्रचालित हैं–

ब्राह्मण– इस जाति में विद्वान, पढ़ने–पढ़ाने वाले, कर्मकाण्डी, पूजा–पाठ करने–कराने वाले और धर्म की धुरी को धारण करने वाले लोग अधिक आते हैं। इस जाति को अति सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इनका कार्य मुख्यरूपेण ज्ञान और शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना ही अधिक होता था। किन्तु आज तो इस उच्च जाति के कार्यों को और जाति के लोग भी करने–कराने लगे हैं।

क्षत्रिय– इस जाति का कार्य वीरोचित होता था। ये देश के रक्षक होते थे। क्षत्रिय प्रजा की रक्षा का कार्य संभालते थे। इनमें राजा, सरदार, उच्च पदीन लोग, सैनिक और प्रशासक अधिकतर होते थे। इन कार्यों को अब अन्य जाति के लोग भी करने लगे हैं। सेना में आज प्रत्येक जाति और वर्ग के लोग अपना योगदान देने लगे हैं। और तो और स्त्रियां भी आज सेना में अच्छे–अच्छे पदों पर कार्य करने लगी हैं। स्त्री–लिंग आज प्रत्येक क्षेत्र में आगे और आगे उन्नति करता बढ़ा चला जा रहा है। राजनीति और पठन–पाठन में भी स्त्रियां आज आगे हैं। अंतरिक्ष तक में स्त्रियां जा चुकी हैं। सफलता के परचम फहरा चुकी हैं।

वैश्य– इस जाति में व्यवसाय से जुड़े लोग अधिक होते हैं। व्यापारी–वर्ग इनमें प्रमुख रूपेण होता है। किन्तु इस वर्ग में भी स्त्रियां आगे आती जा रही हैं।

शूद्र– यह जाति उपरोक्त बताई गई तीनों जातियों की सेवा का कार्य संभालती आई है। परन्तु इसमें भी अब काफी सुधार हुआ है। स्वच्छता सफाई कार्यों को करने में भी अब आधुनिक यंत्रों द्वारा सफाई का कार्य किया जाता है। इस जाति के लोग भी अब पढ़ लिखकर सेना, व्यवसाय आदि कार्यों में रत रहने लगे हैं। लिंग की दृष्टि से भी अब इन जातियों और इनकी उप–जातियों में भी लड़कियां पढ़–लिखकर नौकरी कर रही हैं।

सार रूप में कहें तो जाति के बंधन से ऊपर उठकर अब लोग (स्त्री–पुरुष) योग्यता के आधार पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। हां, पिछड़े क्षेत्रों गांवों आदि में अभी भी जातियों का बोलबाला है। वहां के उच्च जाति के लोग शूद्र जाति से संबंधित लोगों को अभी भी डराते धमकाते रहते हैं। वे दबदबे और पहुंच वाले लोग व्यवस्था को भी अंगूठा दिखाने से बाज नहीं आते। प्रशासन तक भी देख–भाल और सोच–समझकर ही उन पर हाथ डालता है।

फिर भी शहरों में जाति प्रथा की सोच में काफी अंतर आया है। अब जाति के आधार पर नहीं अपितु स्तर के आधार पर आदमी को आंका जाता है। इसीलिए शहरों में अब विजातीय विवाह और प्रेम–विवाह होते देखे जा रहे हैं। विभिन्न जातियों, उपजातियों के लोग पढ़–लिखकर शहरों में अच्छी–अच्छी नौकरियां पा गए हैं। परिणाम, उनके जीवन–स्तर में काफी सुधार भी आया है। इसीलिए वे लुक–छिप छिपाकर अपने लड़के–लड़कियों का विवाह उच्च वर्ग में कर तो देते हैं किन्तु जब बाद में उनकी जड़ों की जानकारी मिलती है तब स्थिति भयावह हो उठती है।

निम्न जाति के लोग–परिवार शहरों में आकर प्रायः अपनी जाति को छिपाकर उच्च जाति का स्वयं को दिखाने लगते हैं। नामों के आगे 'शर्मा' ही नहीं 'वशिष्ठ' और 'भारद्वाज' तक लिखने से भी पीछे नहीं रहते हैं। इसी की आड़ में वे अपने बेटे–बेटियों की शादी उच्च जातियों में धोखाधड़ी से कर देते हैं जो कि सरासर अनुचित है। हां, बतलाकर, स्पष्ट बोलकर तभी करें जबकि दूसरे पक्ष को भी स्वीकार हो, तो बात और है। लेकिन, छिपकर झूठ बोलकर करना शोभा नहीं देता। शहरों में छुट–पुट ऐसी घटनाएं तो अब आम बात हो गई हैं। प्रेम–विवाह की बात अलग है किन्तु हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों में अभी भी गांवों में यह सहन नहीं किया जाता। इस पर (प्रेम–विवाह) भी घोर आपत्ति की जाती है।

टिप्पणी

शहरों में अब तो विभिन्न जातियों में भी लड़के–लड़कियां (विपरीत लिंग) शादी–विवाह रचाकर घर बसाते हैं। अपने परिवार बनाते हैं। शहरों में ये सब कुछ लोगों में मान्य और स्वीकार्य होता है। जातियों के माध्यम से लिंग की भूमिकाएं अपना–अपना दायित्व पूर्ण निष्ठा से निभाती हैं।

धर्म के माध्यम से लिंग की भूमिकाएं

भारत का धर्म विश्व भर के धर्मों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। भारतीय धर्म के अन्तर्गत हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, जैन धर्म आदि धर्मों की भी युगलबंदी है। वैसे हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म संसार भर में तीसरे और चौथे सबसे बड़े धर्म स्वीकार किए जाते हैं। इन धर्मों के लगभग 1.4 प्रतिशत बिलियन अनुयायी हैं।

भारतीय धर्म विभिन्नताओं के कारण भी जाने जाते हैं–इनमें कट्टर धार्मिक संस्थाएं भी अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। आज भी यहां के जन मानस में धर्म अपनी जड़ें बड़ी मजबूती से जमाए हुए है।

इन धर्मों में 80.4 प्रतिशत से भी अधिक लोग हिन्दू हैं। जबकि कुल भारतीय जनसंख्या का 13.4 प्रतिशत भाग ही इस्लाम धर्म का अनुयायी है। सिख, जैन और विशेषरूपेण बौद्ध धर्म का केवल भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अच्छा–खासा नाम है। ईसाई, पारसी, यहूदी और बहाई धर्म के अनुयायी भी भारत में वास करते हैं किन्तु उनकी जनसंख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है।

भारत के इन सभी मिले–जुले धर्मों में पुरुष–स्त्री विशेष रूपेण घर–परिवार की गाड़ी को खींचते हैं। इस कृत्य में इनके परिवार के अन्य सदस्य भी इनका सहयोग करते हैं।

भारत के प्रमुख धर्म, हिन्दू धर्म में उपधर्मों को मानने वाले दो विशेष रूपेण हैं। इन्हें वैष्णव और शैव कहा जाता है। वस्तुतः वैष्णव, भगवान विष्णु के अनुयायी कहलाते हैं जबकि शैव, भगवान शिव के अनुयायी कहलाते हैं।

शिक्षा और धर्म को लेकर कुछ विद्वानों ने जो परिभाषाएं दी हैं, उनमें से कुछ को देखें–

''सिद्धांत में धर्म और शिक्षा को भले ही एक दूसरे से अलग कर दिया जाए, पर ऐसा विचार असम्भव है। शिक्षा और धर्म का उद्देश्य और लक्ष्य वास्तव में एक ही है। सच्ची शिक्षा का आधार धर्म है और शिक्षा को धर्म से अलग करने का प्रयास–उसके क्षेत्र, उद्देश्य और लक्ष्य को सीमित करना है।'' –हीथकोट (*Heathcote*)

''यदि किसी बालक या बालिका को इस तथ्य का ज्ञान नहीं कराया गया कि जीवन के बारे में एक धार्मिक दृष्टिकोण भी मौजूद है, तो उसे ठीक तरह से शिक्षित नहीं कहा जा सकता है।'' –स्पेंस रिपोर्ट (*Spens Report*)

टिप्पणी

वस्तुतः प्रत्येक समाज में उचित और अनुचित कार्यों का मानदण्ड उस समाज का धर्म होता है। धर्म एक बहुत ही गहन और गूढ़ विषय है। इसमें शिक्षा, नैतिकता, समाज सभी कुछ तो निहित है। यदि संक्षेप में कहा जाए तो धर्म में ही पूरी मानवता और उसके मूल्य भी समाविष्ट होते हैं। कारण, धर्म, धारण (व्यवहार) में लाने को ही कहते हैं। जब आदमी पूरी तरह से मानवता को, उसके गुणों को, उसकी तात्विकता को धारण कर लेता है–तब वह पूरा धार्मिक कहलाता है। तात्पर्य सभी धर्म सिखाते हैं–'अच्छे बनो–सच्चे बनो, किसी का बुरा मत चाहो। प्रेम, सहयोग, त्याग, सद्भाव की भावना को अपनाओ। किसी का अहित मत करो। जैसा व्यवहार तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो, वैसा ही व्यवहार दूसरों के प्रति भी करो, यही मानवता है और यही धर्म भी है। मानवता ही धर्म है, धर्म ही मानवता है और इन दोनों ही में नैतिकता, गंगा–यमुना के मध्य सरस्वती नदी के रूप में अस्पष्ट रूपेण समाई है।

लड़के और लड़की के सर्वांगीण विकास के लिए धर्म मुख्य भूमिका निभाता है। इस भूमिका का वहन घर–परिवार और फिर विद्यालय करता है। कहते हैं कि शिशु की पहली गुरु माता होती है। यहीं से शिशु में जन्मजात गुणों के बाद संस्कारों की नींव पड़नी शुरू हो जाती है, जिसे लेकर लड़की–लड़का घर से बाहर सड़क और स्कूल जाता है। जन्म के और घर–परिवार के संस्कार सड़क और विद्यालय तथा समाज में उनके खासे काम आते हैं। इसीलिए लड़की–लड़के के जीवन में घर–परिवार के संस्कार विशेष भूमिका निभाते हैं। इन्हीं संस्कारों के आधार पर लड़की–लड़के के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास निर्भर करता है। व्यक्ति के विकास में चरित्र भी प्रधान माना जाता है। कारण चरित्र ही दोनों लिंगों (स्त्री–पुरुष) को ऊंचा उठाता है। कहा भी है–

''यदि धन खो जाता है तो कुछ नहीं होता, यदि स्वास्थ्य खो जाता है तो कुछ खो जाता है और यदि चरित्र खो जाता है, तो व्यक्ति का सभी कुछ खो जाता है।''

अर्थात्–

धन की हानि होने पर धन पुनः अर्जित किया जा सकता है, यदि स्वास्थ्य की हानि होती है तो उसे उपचार द्वारा पुनः प्राप्त किया जाता है किन्तु यदि चरित्र पर एक बार भी दाग लग जाए/नष्ट हो जाए तो, उसे फिर से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसी बात को कुछ यूं भी कह सकते हैं–बद अच्छा बदनाम बुरा। फिर भी बदी (बुरी बात/कर्म) की ही क्यों जाए–विवेकपूर्ण बुद्धि से जीवन यापन करना ही श्रेष्ठतम् कहा जाता है।

सार रूप में यदि लड़की–लड़के को सफल व्यक्ति और उत्तम नागरिक तथा समाज का उपयोगी सदस्य बनाना चाहते हैं तो उसके चरित्र का निर्माण ठोस रूपेण किया जाना चाहिए। यह परम आवश्यक हो जाता है। इसके लिए लड़की लड़के (दोनों ही लिंगों में) में धर्म और नैतिकता के गुणों को सही रूपेण विद्यमान करना अति आवश्यक है।

इस संबंध में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपना मंतव्य भी कुछ यूं लिखा है–

''चरित्र के विकास में धार्मिक और नैतिक शिक्षा महत्वपूर्ण योग देती है।''

लड़के–लड़की में जीवन मूल्यों का उचित समावेश होना भी अति आवश्यक है। इन जीवन मूल्यों के अभाव में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाजों में अधिक गंभीर परिणाम देखने में आ रहे हैं। ऐसे में वहां के विचारकों/चिन्तकों का मानना भी हो गया है कि धार्मिक और नैतिक शिक्षा द्वारा छात्रों में उचित जीवन मूल्यों का समावेश किया जाना अति अनिवार्य होना चाहिए। यहां यह भी बतलाना जरूरी समझा जा रहा है कि भारतीय समाज (वृद्ध, नर–नारी और युवती–युवक) भी आज पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण अंधे (बिना सोचे–विचारे और समझे) होकर करने पर तुले हैं जिसके दुष्परिणाम आज भारतीय समाज (शहर, कस्बों और गांवों) में देखने में आ रहे हैं।

टिप्पणी

यहां भी भावनाएं समाप्त होती जा रही हैं। रिश्ते–नाते सिमटते जा रहे हैं। स्वार्थ और दिखावा सिर उठाता जा रहा है। यह अत्यन्त भयावह स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। इस कृत्य पर शीघ्र–से–शीघ्र ठोस कारगर कदम उठाने की नितांत आवश्यकता है। आज के भारतीय समाज को फिर से अपनी परिष्कृत भारतीय संस्कृति की ओर लौटना हर दृष्टि से उत्तम रहेगा। हमें दिखावा छोड़कर अपनी ही चादर में पैर पसारने होंगे– तभी आज का भारतीय समाज पहले जैसा संतुष्ट जीवन जी पाएगा। सही मायनों में भारतीय कहला पाएगा। भारतीय इतिहास तो महानता और त्याग की मूर्ति विश्वभर के पटल पर रहा है।

अब प्रश्न यह आता है कि शिक्षा संस्थाओं में धर्म की शिक्षा का क्या रूप हो?

इस बारे में गांधी जी के विचार दृष्टव्य हैं–मेरे लिए नैतिकता, सदाचार और धर्म–पर्यायवाची शब्द हैं। नैतिकता के आधारभूत सिद्धांत सब धर्मों में एक समान हैं। इनको बालकों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिए और इसको पर्याप्त धार्मिक शिक्षा समझा जाना चाहिए।''

इस आधार पर भारत सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले आयोगों और समितियों ने धार्मिक और नैतिक शिक्षा की विषय सामग्री के संबंध में जो सुझाव रखे, वे इस प्रकार हैं–

(अ) शिक्षा की प्रत्येक योजना में जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्थान दिया जाए।

(ब) सब धर्मों के सामान्य नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए।

(स) सब धर्मों की सहमति से उनके सामान्य नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों का शैक्षिक कार्यक्रम तैयार किया जाए।

सार रूप में कहें तो सभी आयोगों और समितियों ने आध्यात्मिक शिक्षा और नैतिक शिक्षा को किसी–न–किसी रूप में पाठ्यक्रम से जोड़ने की बात कही है।

यहां विश्वविद्यालय स्तर के लिए आयोग के सुझाव इस संबंध में इस प्रकार हैं–

1. छात्रों को व्यक्ति के सम्मान, समानता, सामाजिक न्याय, कल्याणकारी राज्य आदि की शिक्षा दी जाए।

टिप्पणी

2. छात्रों में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने के लिए भारत में अन्य देशों की संस्कृतियों से सामग्री का संकलन किया जाए।
3. प्रथम डिग्री कोर्स के पाठ्यक्रम में संसार के विभिन्न धर्मों के सामान्य अध्ययन को स्थान दिया जाए।
4. डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में महान धार्मिक नेताओं की जीवनियां पढ़ाई जाएं।
5. उक्त कोर्स के दूसरे वर्ष में, संसार के धार्मिक ग्रंथों में से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भागों को पढ़ाया जाए।
6. उक्त कोर्स के तीसरे वर्ष में धर्म–दर्शन की मुख्य समस्याओं का अध्ययन किया जाए।
7. विश्वविद्यालयों के तुलनात्मक धर्म विभागों द्वारा उपयुक्त धार्मिक और नैतिक साहित्य तैयार किया जाए।

धार्मिक व नैतिक शिक्षा की विधियों पर सार रूप में ये विचार रखे गए–

– प्रत्यक्ष विधियों से धार्मिक शिक्षा दी जाए।
– अप्रत्यक्ष विधियों से धार्मिक शिक्षा दी जाए–इनमें मौन चिन्तन, प्रातःकालीन सभा, धार्मिक समारोह, विद्यालय का सामुदायिक जीवन आदि–आदि आते हैं।

विश्वविद्यालय आयोग ने लिखा है, कि–सुझाव की सर्वोत्तम विधि–व्यक्तिगत उदाहरण, दैनिक जीवन और कार्य द्वारा है।

लेकिन इन सारे सुझावों को देने वाले लोग एकमत नहीं हो पाते इसीलिए समस्या का ठोस समाधान निकलकर व्यवहार में नहीं लाया जा सकता।

फिर भी यह कटु सत्य है कि धर्म के माध्यम से लिंग की भूमिकाओं पर अच्छा खासा सकारात्मक कार्य किया जा सकना सम्भव है।

कानून के माध्यम से लिंग की भूमिकाएं

मानवाधिकार की सार्वजनिक घोषणा में प्रस्तावना के साथ 30 अनुच्छेद हैं। प्रस्तावना में 'मौलिक मानवाधिकारों', मानव की महत्ता तथा पुरुष एवं स्त्री के समान अधिकारों की समानता में निष्ठा जाहिर की गई है।'' इस घोषणा पत्र के 1 और 2 सामान्य हैं और अनुच्छेद 3 से लेकर 21 तक नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों तथा अनुच्छेद 22 से 27 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से जुड़े हैं। जबकि अनुच्छेद 28 से 30 उपसंहार के रूप में हैं।

इनमें अनुच्छेद 6 से अनुच्छेद 11 तक में कानून के सामने समानता तथा विधिक उपचारों (Legal Remedies) के अधिकारों का वर्णन है। अनुच्छेद 22 सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है।

यहां यह भी बतलाना आवश्यक समझा जा रहा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक तथा सामाजिक परिषद ने सन् 1946 में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की थी। प्रारम्भ में इस कमीशन के 32 सदस्य थे। वर्तमान में इसकी सदस्यता 53 है। भारत सन् 1966 के अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों का सदस्य है। इसके लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई।

इस मानवाधिकार आयोग के अतिरिक्त अपना संविधान भी है। उसमें भी स्त्री पुरुष को समान अधिकार की बात स्पष्टरूपेण कहीं गई है। परन्तु व्यवहार में आते–आते कानून और व्यवस्था कुछ की कुछ हो जाती है। कारण, लोगों को अपने कानून और उसकी धाराओं का पूरा ज्ञान ही नहीं होता। धाराओं के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं होती है। यही समान सी स्थिति व्यवस्था में भी देखने को मिलती है। इसका एक सीधा सा उदाहरण है कि थाने में एफ.आई.आर. भी लिखने के लिए पहुंच का प्रयोग करना पड़ता है। सीधे–सीधे एफ.आई.आर. दर्ज तो ना के बराबर ही की जाती हैं। ये वस्तुतः इसलिए होता है चूंकि हमारी कानूनी व्यवस्था लचर होती है। इसमें भी अधिकांश स्त्रियों को तो नाम मात्र का भी ज्ञान कानून और व्यवस्था के विषय में होता ही नहीं है। जबकि आज अधिसंख्यक समाज पढ़ा लिखा है लेकिन उसको उसकी सीमित पढ़ाई से ही मतलब होता है। सामान्य ज्ञान के बारे में पता ही नहीं होता है कि एफ.आई.आर. लिखाना उसका मौलिक अधिकार एवं मानवाधिकार भी है।

टिप्पणी

एक पुरानी कहावत चली आती है कि अदालत की तो ईंट भी पैसा खाती है। इसी प्रकार व्यवस्था के बारे में जहां आदमी को अपने को पूरी तरह सुरक्षित समझना चाहिए वहीं वह अपने आपको पूरी तरह असुरक्षित महसूस करता है।

स्त्री–पुरुषों को अपने कानूनी अधिकारों और मानवाधिकारों का पूर्ण ज्ञान होने की व्यवस्था होनी चाहिए। मजे की बात है कि सामान्य समाज को इनके बारे में ज्ञान नहीं होता जबकि असामाजिक तत्वों को इनका भरपूर ज्ञान होता है। कारण, उनका पाला तो रोज कानून और पुलिस से पड़ता ही रहता है। जबकि सामान्य जन तो पूरे जीवन में शायद ही कोर्ट–कचहरी और पुलिस थाने देख पाता है।

राजनीति शास्त्र और सामाजिक शास्त्र का छात्र भी पाठ्यक्रम के अनुसार ही कानून और व्यवस्था की सीमित जानकारी ही प्राप्त कर पाता है। वह भी उत्तीर्ण होने के लिए। व्यवहार में लाने का उद्देश्य होता ही नहीं है, जबकि ऐसा होना अति आवश्यक/अनिवार्य है।

कानून के माध्यम से लड़के–लड़कियों की भूमिकाएं ज्ञात होना नितांत आवश्यक है। उदाहरण कानून (संविधान) कहता है कि लिंग भेद अनुचित है। लड़के–लड़की के समान अधिकार हैं। कानून इन दोनों में कोई विभेद नहीं मानता। ऐसे में पुलिस तथा प्रशासन को लड़कियों की सुरक्षा के लिए पूर्ण सतर्क रहने की आवश्यकता है। जिससे यदि बालिकाएं देर–सवेर भी घर से बाहर निकलें तो उनके माता–पिता तथा अभिभावक निश्चिंत रह सकें। अपनी बच्चियों को घर के बाहर सुरक्षित महसूस कर सकें। इसके लिए पुलिस तथा प्रशासन को घर तथा बाहर सुरक्षात्मक वातावरण बनाए रखना चाहिए। कानून को अपना कार्य निष्ठा और सावधानी तथा सतर्कता से करना चाहिए। जब ऐसा होगा तब लड़कियां निडर होकर घर के बाहर, विद्यालय अथवा सर्विस में जा सकेंगी। ऐसा होगा तब लड़कियां स्वावलम्बी बन सकेंगी। इससे वे पुरुषों की बराबरी करके समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकेंगी। लिंगीय विभेदों को दूर करने में प्रशासनिक प्रयासों की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। जो भी नियम सरकार द्वारा बनाए गए हैं, उनका सतर्कता से पालन किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से प्रशासन को ऐसे चिकित्सालयों, व्यक्तियों एवं क्लीनिकों पर कड़ी–से–कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए। प्रशासन को लिंगीय विभेदों को दूर करने के लिए साहसी और प्रतिभावान महिलाओं एवं बालिकाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे जन–साधारण की सोच में बदलाव आएगा।

भारतीय संविधान ने स्त्रियों के विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। उनकी बराबरी के लिए अनेक धाराएं तथा उपबन्धों का निर्धारण किया गया है। संविधान में स्त्री–पुरुष में कोई विभेद नहीं किया गया। इस प्रकार कानून ने नियम तो काफी बनाए हुए हैं। किन्तु उनके पालन में ढ़ील की जाती है। ऐसे में लड़कियों को उनके लिए बनाए गए कानूनों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। सारांश में कानून के माध्यम से लिंग की भूमिकाओं में समुचित योगदान दिया जा सकता है।

टिप्पणी

1.5.3 समाजीकरण एवं लैंगिक निर्माण

लैंगिक निर्माण में समाजीकरण को समझना इतना आसान नहीं है जितना यह प्रतीत होता है। भारतीय समाज समरूप नहीं है। इसलिए यहां पर विभिन्नताएं पाई जाती हैं। ये विभिन्नताएं सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक, धार्मिक एवं स्थानिक आदि जैसी हो सकती हैं। ऐसे में लैंगिक निर्माण में भी समरूपता नहीं होगी और न ही सबके लिए एक जैसी स्थिति यहां प्रभावी हो सकती है। इन भिन्न–भिन्न लैंगिक निर्माण के संदर्भों को समझने के लिए यहां के भिन्न–भिन्न समाज और उसके भीतर की समाजीकरण की प्रक्रिया को समझना होगा। आइए सर्वप्रथम समाजीकरण के सिद्धांत को समझते हैं।

समाजीकरण सिद्धांत

लैंगिकता के समाजीकरण के सिद्धांत को समझने से पूर्व हमें समाजीकरण के सिद्धांत को समझना होगा। समाजीकरण क्या है? इसको समझना महत्वपूर्ण क्यों है? समाजीकरण एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है। इसको हम एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसके द्वारा एक पैदा हुआ शिशु धीरे–धीरे आत्मसजग बनता है, वह उस संस्कृति के तौर–तरीकों के बारे में समझने लगता है जिसके अंदर वह पैदा हुआ है। समाजीकरण के द्वारा ही एक व्यक्ति मनुष्य की तरह व्यवहार करता है। आप सबने काल्पनिक पात्र 'मोगली' के बारे में तो सुना ही होगा कि कैसे जंगल में उसका पालन–पोषण होने से वह जंगल के तौर–तरीके एवं जानवरों की भाषा सीख जाता है। ये समाजीकरण का ही प्रभाव है। व्यक्ति जिस स्थान पर, जिस माहौल में एवं जिन लोगों के बीच जन्म लेता है वह वहीं के तौर–तरीके सीखने लगता है। जैसे–जैसे वह बड़ा होता है वह नए–नए अनुभवों से गुजरता है। इस प्रकार उस बच्चे का समाजीकरण चलता रहता है। समाजीकरण जीवनभर चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि मनुष्य हर वक़्त कुछ न कुछ सीखता रहता है। परंतु समाजीकरण की प्रक्रिया में आरंभिक वर्ष सबसे महत्वपूर्ण वर्ष माने जाते हैं। किसी भी बच्चे का सबसे प्रारम्भिक समाजीकरण प्राथमिक समाजीकरण कहा जाता है। इसके बाद होने वाले समाजीकरण को द्वितीयक समाजीकरण कहा जाता है। द्वितीयक समाजीकरण जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

समाजीकरण की प्रक्रिया को सैद्धांतिक तौर पर भी समझना आवश्यक है। समाजीकरण के सिद्धांत को मुख्यतः तीन समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है। ये तीन हैं–

1. सी. एच. कूले (C.H. Cooley)
2. जॉर्ज हर्बट मीड (George Herbert mead)
3. सिगमंड फ्रायड (Sigmund Frued)

1. सी. एच. कूले

सी. एच. कूले अमेरिका के प्रसिद्ध समाजशास्त्री हैं जिन्होंने अपने समाजीकरण के सिद्धांत की व्याख्या लुकिंग ग्लास सेल्फ की अवधारणा के तहत की है। उनका मानना था कि हर एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के संपर्क में आकर ही अपनी पहचान का निर्माण करता है। जब तक वह किसी अन्य व्यक्ति के संपर्क में नहीं आता, तब तक उनकी पहचान का निर्माण नहीं होता। इस प्रक्रिया को सी. एच. कूले ने लुकिंग ग्लास सेल्फ कहा है क्योंकि इस प्रक्रिया में अपनी पहचान का व्यक्तिगत भाव, दूसरों के द्वारा प्रतिबिम्बित होता है। अर्थात हम अपने आप को उस तरह से देखने लगते हैं जैसा कोई अन्य हमको देखता है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति बहुत मोटा है और उसको अन्य व्यक्ति बहुत मोटा और बदसूरत कहकर चिढ़ाता है तो वह व्यक्ति अपने आप को उसी दृष्टिकोण से ही देखने लगता है। सी. एच. कूले ने लुकिंग ग्लास सेल्फ के तीन प्रमुख तत्त्व बताए हैं जो इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

1. हमारा यह कल्पना करना कि हम दूसरों की नजर में कैसे लगते हैं।
2. दूसरे व्यक्ति के निर्णय की कल्पना कर अपने बारे में विचार करना।
3. उस निर्णय के संदर्भ में आत्मभाव एवं अपनी पहचान बना लेना।

कूले ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि कैसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ अंतःसंबंध की क्रिया के द्वारा हमेशा यह जानना चाहता है कि उसके बारे में दूसरों की क्या राय है अर्थात जिस व्यक्ति के साथ वह संपर्क एवं बातचीत कर रहा है उस व्यक्ति की उसके स्वयं के बारे में क्या राय है। यदि उसको यह पता चल जाता है कि उस व्यक्ति की राय उसके बारे में ज्यादा अच्छी नहीं है तो स्वतः ही उसके मन में ग्लानि का भाव उत्पन्न होने लगता है। इसके विपरीत यदि उसको यह पता चल जाता है कि दूसरे व्यक्ति द्वारा उसके व्यवहार एवं उसकी क्रियाओं की सराहना की जा रही है तो वह अपने बारे में एक सकारात्मक छवि का निर्माण कर लेता है और उसका व्यक्तित्व बहिर्मुखी हो जाता है। यदि उसकी आलोचना की जाती है और उसके बारे में नकारात्मक कहा जाता है तो उसका व्यक्तित्व अंतर्मुखी हो जाता है। इसको सामाजिक स्वः या समाज द्वारा निर्धारित पहचान भी कहा जा सकता है और यह सामाजिक स्वः व्यक्ति के सामाजिक संबंधों पर निर्भर करता है। प्रत्येक व्यक्ति के विचार, उसके मत, मूल्य, धारणाएं, व्यवहार, आदतें ये सभी कुछ, जिन व्यक्तियों के बीच वह रहता है उन सबसे प्रभावित होती हैं। इसलिए कूले की यह भी मान्यता थी कि प्राथमिक समूह जहां पर व्यक्ति पैदा होता है और जिन लोगों के बीच पला–बढ़ा होता है उसका प्रभाव उनके 'स्व' पर सबसे अधिक प्रभावशाली रूप से पड़ता है।

2. जॉर्ज हर्बट मीड

कूले की तरह ही जॉर्ज हर्बट मीड ने अपनी पुस्तक 'माइंड, सेल्फ एंड सोसाइटी' (1934) में समाजीकरण के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए यह बताया कि मनुष्य के मस्तिष्क तथा स्व के विकास का प्रारम्भ सामाजिक अंतर्संबंधों एवं उनके बीच हो रहे संचार की प्रक्रिया से होता है। उनका यह मानना था कि मस्तिष्क और अपनी स्वयं की पहचान समाज द्वारा तय होती है। सेल्फ या स्व को सामाजिक रचना के रूप में देखते हैं जो सामाजिक अनुभव पर आधारित होता है अर्थात स्व का विकास सामाजिक अनुभव के बिना संभव नहीं है। स्व और मस्तिष्क तथा आत्मचेतना सामाजिक अंतःसंबंधों का

परिणाम है, जो भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किए जाते हैं। उन्होंने भाषा को एक ऐसा प्रतीक माना जो मनुष्य के बीच अंतःसंबंधों का मुख्य जरिया है। उनका मानना था कि मनुष्य के बीच अंतःसंबंध भाषा के बिना संभव नहीं है। इसलिए वे मानते हैं कि भाषा मानवीय समाज का एक महत्वपूर्ण प्रतीक होती है, जो मस्तिष्क एवं स्व दोनों का निर्माण करती है। भाषा के द्वारा ही विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है जिसके द्वारा ही मनुष्य दूसरों के साथ अपने किए गए व्यवहार को नियंत्रित करना सीखता है।

टिप्पणी

अपने समाजीकरण के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उन्होंने सामाजिक स्व को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका मत था कि स्व के विकास से ही बच्चा परिवार के विभिन्न सदस्यों की भूमिका को पहचान पाता है। जिन लोगों के संपर्क में आकर वह उनकी भूमिका को पहचान लेता है। उन सबको वह 'जेनरेलाइस्ड अदर्स' की संज्ञा दी है और इसी संदर्भ में उन्होंने आई और मी के बीच के संबंध को समझाने का प्रयास किया है। मीड का कहना था कि आई (I) का अभिप्राय होता है व्यक्ति का सेल्फ, और यह आई, मी में तब परिवर्तित होता है जब उसका समाजीकरण होता है। अर्थात जब व्यक्ति समाज के संपर्क में आकर उससे अंतःक्रिया करता है तो उसका आई, मी में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मैं (आई) से मुझ (मी) में परिवर्तित होने की प्रक्रिया समाजीकरण के कारण ही संभव होती है। उन्होंने अपने शोध एवं कुछ उदाहरणों द्वारा यह साबित किया है कि आदिवासी समाज में मैं (आई) का महत्व बहुत कम होता है। वहां मुझ (मी) की प्रधानता होती है। जबकि आधुनिक समाज में मैं (आई) का महत्व अधिक होता है क्योंकि मैं (आई) का स्वरूप व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास, नए विचार तथा सोच से जुड़ा होता है। मीड के अनुसार "व्यक्ति एवं समाज दोनों एक दूसरे के जैविकीय रूप से मिले हुए हैं और इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। जहां व्यक्ति सामाजिक वातावरण का निर्माण करता है वहीं समाज में रहकर दूसरों के विचार से भी प्रभावित करता है। साथ ही वह वहीं समाज में रहकर दूसरों के विचार से भी प्रभावित होता है। इसलिए उनका मानना था कि 'सेल्फ' का विकास समाज तथा सामाजिक वातावरण पर निर्भर करता है।

3. सिगमंड फ्रायड

समाजीकरण की प्रक्रिया में सिगमंड फ्रायड के सिद्धांतों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। फ्रायड को मनोविश्लेषण विचारधारा का मनोवैज्ञानिक माना जाता है। उन्होंने मीड के विपरीत स्व एवं समाज से जुड़ी अवधारणाओं का जोरदार खंडन किया है। उनके सिद्धांत के अनुसार 'स्व' और 'समाज' दोनों एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं, अर्थात वे यह मानते थे कि 'स्व' और 'समाज' दोनों एक–दूसरे से अलग हैं। उन्होंने समाजीकरण की प्रक्रिया में निम्न तीन प्रक्रियाओं का विस्तार से उल्लेख किया है।

इड, इगो, सुपरइगो (Id, Ego, Superego) : सिगमंड फ्रायड के अनुसार इड, इगो और सुपरइगो एक–दूसरे से जुड़ी प्रक्रियाएं हैं। फ्रायड के अनुसार इड मनुष्य की मनोवैज्ञानिक स्थिति को बहुत हद तक प्रभावित करता है। इसका संबंध मनुष्य की भौतिक इच्छाओं से जुड़ा होता है जो सुख के सिद्धांत से जुड़ा होता है। इस प्रकार इड का आधार सिर्फ भौतिक इच्छाओं की पूर्ति से है। इसका संबंध न तो समाज से होता है और न ही नैतिकता से जुड़ा होता है। यह केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकता है। यही कारण है कि फ्रायड ने इड की व्याख्या करते हुए इसे

पूर्णतः स्वतंत्र इच्छा पर आधारित क्रिया बताया है। दूसरा तत्त्व इगो को समाजीकरण की प्रक्रिया से जोड़कर देखा गया है। यह भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुत हद तक प्रभावित करती है। जहां एक ओर इड अपने सुख के सिद्धांत पर आधारित होता है वहीं इगो वास्तविक सिद्धांत को लेकर वास्तविक रूप से मनुष्य की क्रियाओं को नियंत्रित करता है। इगो का महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि काल्पनिक तत्त्वों के द्वारा इगो को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। इगो का मुख्य आधार किसी भी व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है परंतु उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित साधनों का होना अति आवश्यक है। इस प्रकार इगो के द्वारा हमें यह पता चलता है कि क्या सही है, क्या गलत है, क्या समाज द्वारा मान्य हो सकता है और क्या समाज द्वारा मान्य नहीं हो सकता है, क्या संभव है और क्या संभव नहीं है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वास्तविकता के सिद्धांत को विकल्प के तौर पर अनुसरण करते हुए व्यक्ति की क्रियाएं इगो के द्वारा ही संचालित होती हैं।

टिप्पणी

तीसरा तत्त्व 'सुपरइगो' व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का एक आदर्श स्वरूप है, जिसका सीधा संपर्क मनुष्यों के नैतिक मूल्यों से होता है। यह मनुष्य के प्रतिमान तथा मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है जिसे एक बच्चे ने बचपन से ही अपने व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया बना रखा है। यह न तो सच्चाई की मांग करता है और न ही किसी प्रकार की कल्पित सच्चाई को उजागर करता है। इसका सीधा संपर्क उन गुणों से होता है जो समाज में किसी व्यक्ति के लिए आदर्श माने जाते हैं। अतः इसका सीधा संबंध इस बात को समझने में लगा होता है कि चुने हुए पदार्थ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जरूरी हैं या नहीं अर्थात वे सही हैं या गलत।

यह भी कहा जा सकता है कि सुपरइगो का मुख्य कार्य इड जैसी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को रोकने एवं अंकुश लगाने की आदर्श क्रियाओं को प्रभावित करता है। सुपरइगो के द्वारा मनुष्य एक प्रकार से अपनी क्रियाओं को एक नैतिक आधार देता है। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि ये तीनों अवधारणाएं एक साथ काम करती हैं परंतु किसी विशेष समय में कोई एक प्रवृत्ति विशेष हावी हो सकती है। इन तीनों ही प्रवृत्तियों को व्यक्तित्व के विकास का महत्वपूर्ण पहलू कहा जाता है। जहां तक इड का प्रश्न है, वह मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो इसके इंस्टिक्ट का हिस्सा होती है। वह स्वयं इगो, इड एवं सुपरइगो के बीच एक संतुलन बनाता है जिसके द्वारा ही उसको सही एवं गलत के बारे में पता चलता है। सुपरइगो एक आदर्श स्थिति है। समाजीकरण द्वारा ही उसको सही एवं गलत की पहचान करने की सीख मिलती है।

समाजीकरण के अभिकरण

बच्चे का समाजीकरण अनेक संस्थाओं द्वारा किया जाता है जिसमें परिवार, विद्यालय, मित्र–समूह, अड़ोस–पड़ोस, व्यावसायिक समूह, जाति, धर्म, वर्ग आदि शामिल हैं। इनका संक्षिप्त परिचय अग्रलिखित है–

परिवार

किसी भी शिशु के लिए परिवार ही उसके प्राथमिक समाजीकरण का स्रोत होता है। परिवार भी एकल एवं संयुक्त हो सकते हैं। पहले मामले में माता–पिता समाजीकरण के अभिकरण हो सकते हैं जबकि संयुक्त परिवारों में दादा–दादी, चाचा–चाची, चचेरे भाई या बहन समाजीकरण के अभिकरण के रूप में कार्य करते हैं। परिवारों की

टिप्पणी

भिन्न–भिन्न स्थिति पर ही समाजीकरण की प्रक्रिया भी निर्भर करती है। उदाहरण के लिए जो परिवार अधिक पारंपरिक होते हैं उसमें जन्मे शिशु के पूरे जीवन की व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्थिति परिवार द्वारा तय हो जाती है। यदि यह प्रक्रिया सिर्फ परिवार द्वारा सम्पन्न नहीं होती तो इसमें परिवार का सामाजिक क्षेत्र एवं सामाजिक वर्ग भी शामिल हो जाता है जो बच्चे के समाजीकरण पर परिवार के अतिरिक्त अपना प्रभाव डालता है। अधिकांश बच्चे अपने माता–पिता के दृष्टिकोण को बिना प्रश्न किए अपना लेते हैं। भूतकाल में समाजीकरण के इतने साधन नहीं थे इसलिए परिवार द्वारा कही और मानी गई बात ही स्वीकार्य होती थी। परंतु अब समाजीकरण के अभिकरणों के इतने साधन और इनमें भी इतनी भिन्नताएं हैं कि हर पीढ़ी की सोच में बहुत अधिक अंतर पाया जाता है।

विद्यालय

विद्यालय शिक्षा प्राप्त करने का एक औपचारिक स्थान है। यहां एक निश्चित पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। परंतु फिर भी विद्यालय समाजीकरण का एक प्रमुख अभिकरण है। विद्यार्थी अपने जीवन का बहुत सा ऐसा समय यहां व्यतीत करता है जब उसके सीखने की क्षमता अपने चरम पर होती है। विद्यालय में ऐसे बहुत से व्यवहार एवं प्रक्रियाएं हैं जो लगातार होने एवं करने से बच्चा सीखने लगता है। उदाहरण के लिए कोई भी भारी सामान उठाने की आशा हमेशा लड़कों से ही की जाती है, जबकि कोई भी साज–सज्जा वाले काम की आशा हमेशा लड़कियों से की जाती है।

मित्र–समूह

मित्र–समूह, किसी भी बच्चे के समाजीकरण का महत्वपूर्ण अभिकरण है। सामान्यतः मित्र–समूह एक ही आयु–श्रेणी के होते हैं। वर्तमान समय में बच्चे कम आयु से ही स्कूल जाना प्रारम्भ कर देते हैं, ऐसे में उनका मित्र समूह भी बनने लगता है। अपने मित्र–समूहों के बीच बच्चा विभिन्न प्रकार की अंतःक्रिया करता है और व्यवहारों के आदान–प्रदान के माध्यम से बहुत कुछ सीखता है। मित्र–समूह किसी भी व्यक्ति के महत्वपूर्ण होते हैं। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही हो सकते हैं।

संचार माध्यम

आज संचार माध्यम एवं मीडिया हमारे दैनिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बन चुके हैं। आज इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का विस्तार हो रहा है। आज जीवन हाथ में बंद एक छोटे से मोबाइल में बंद हो चुका है। रिश्ते–नाते भी सोशल मीडिया पर ही निभाए जाते हैं। अब गांव और शहरों के सूचना तंत्र में कोई विशेष अंतर नहीं रह गया है। वर्तमान समय में संचार माध्यमों एवं तकनीक का प्रयोग विद्यालयों में शिक्षा के लिए भी किया जा रहा है। अध्ययन ये बताते हैं कि तकनीक एवं संचार माध्यमों का प्रयोग शिक्षण–अधिगम के लिए अच्छा साबित हो सकता है, यदि इसको ध्यानपूर्वक प्रयोग में लाया जाए तो। अभिप्राय यह है कि जन संचार माध्यमों से बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं और इनका प्रभाव स्थायी होता है। आपको दूरदर्शन पर प्रसारित धारावाहिक 'शक्तिमान' तो याद होगा। उसको देखकर बच्चे शक्तिमान की तरह ही घूमते हुए इमारतों से कूदने की कोशिश करने लगे। यह दर्शाता है कि कैसे जन–संचार माध्यम बच्चों पर अपना प्रभाव डालते हैं।

अन्य समाजीकरण अभिकरण

इन मुख्य समाजीकरण अभिकरणों के अलावा भी समाज में बहुत सारे अभिकरण उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए किसी भी व्यक्ति का कार्यस्थल उसके समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विभिन्न धार्मिक संस्थाएं भी इसी श्रेणी में आती हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति, कानून आदि भी किसी व्यक्ति के समाजीकरण के अभिकरण के रूप में कार्य करते हैं।

टिप्पणी

लैंगिक समाजीकरण

जब किसी बच्चे का जन्म होता है तो सामान्यतः वह अपनी पहचान अपने परिवार से लेता है। यह पहचान उसको जैविक रूप से उसके लिंग के आधार पर दी जाती है। उसके बाद इनकी भूमिका, पहनावा, खान–पान सब निर्धारित किया जाता है। एक स्त्री एवं पुरुष की शारीरिक बनावट ही सर्वप्रथम उसके साथ हो रहे भेदभाव का कारण बनती है और उसको समाज में समानता का दर्जा नहीं मिल पाता। लिंग की अवधारणा स्त्री एवं पुरुष की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर आधारित है न कि शारीरिक बनावट पर। समाज में लड़के एवं लड़कियों का पालन–पोषण इस प्रकार से होता है कि वे सामाजिक नियमों के तहत बताई गई प्रक्रियाओं को आत्मसात करते हुए बड़े होते हैं और वही उनकी पहचान बन जाती है। स्त्रियों को घर–परिवार की जिम्मेदारी दी जाती है और पुरुषों को घर चलाने के लिए आर्थिक सहयोग देने एवं अहम मुद्दों पर अपनी अधिकारपूर्वक राय देने एवं कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने का दायित्व सौंपा जाता है। लैंगिकता को अधिकांशतः स्त्रियों से जोड़ कर देखा जाता है या सिर्फ उनके मुद्दों के लिए ही समझा जाता है। परंतु ऐसा नहीं है, इसके नियम सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। इसी वजह से यदि कोई पुरुष घर के कार्यों में हाथ बंटाता है या नाजुक प्रवृत्ति का है तो उसको औरत की संज्ञा दे दी जाती है। इसके विपरीत यदि कोई स्त्री किसी प्रकार का साहसिक कार्य करे या आर्थिक सहयोग करे तो उसको पुरुष की संज्ञा दे दी जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण समाज में देखने को मिल जाएंगे। यदि कोई पुरुष साहसिक कदम न उठाए अथवा रोने लगे तो उसको नाजुक एवं कमजोर कहकर मजाक बनाया जाता है और कहा जाता है कि क्यों औरतों की तरह रो रहे हो। यह पूरी अवधारणा लैंगिकता पर ही आधारित है जहां किसी को भी केवल अपने लिंग के अनुसार भूमिका का निर्वहन करना है और यदि वह अपने लिंग के विपरीत व्यवहार करता है तो वह समाज में तिरस्कार का पात्र बनता है। हम यह सोचते हैं कि ये बातें सब जगह एक जैसी ही होंगी। शारीरिक संरचना के कारण महिलाओं को माहवारी होती है, वे बच्चे पैदा करती हैं, उनको दूध पिलाती हैं। ये ऐसे काम हैं जो संभवतः पुरुष नहीं कर सकते। परंतु बच्चे पैदा करने का ये मतलब नहीं है कि सिर्फ औरतें ही उनको पाल सकती हैं। पालन–पोषण तो मर्द भी कर सकते हैं। इसलिए स्त्री या पुरुष के रूप में पैदा होने का ये मतलब नहीं है कि महिलाओं का स्वभाव, बर्ताव, भूमिकाएं यहां तक कि भाग्य भी उन्हीं के आधार पर निश्चित कर दिया जाए। अतः यह स्पष्ट है कि लैंगिकता के आधार पर स्त्री एवं पुरुष के मध्य शक्ति, सत्ता, संसाधनों एवं भूमिकाओं का बांटना स्वाभाविक नहीं है। यह सिर्फ और सिर्फ हमारी सामाजिक सोच के आधार पर गढ़ी हुई अवधारणा है।

ये सब रूढ़िवादी भारतीय समाज में ही अधिक पाए जाते हैं। पश्चिमी समाजों में स्त्री एवं पुरुष को अपेक्षाकृत अपनी इच्छानुसार कार्य करने एवं आर्थिक मसलों पर

टिप्पणी

अपनी राय देने की स्वतन्त्रता होती है। लिंग की अवधारणा में भी शिक्षा के प्रभाव एवं समय की मांग के अनुसार परिवर्तन हो रहा है। हालांकि यह परिवर्तन बहुत ही धीमी गति से हो रहे हैं परंतु हमारे पूर्वजों की तुलना में हमारा आज का जीवन भिन्न है। समय एवं परिस्थितियों के बदलने से लिंग की अवधारणा में भी बदलाव हो रहा है। पूर्व काल में मैत्रयी एवं गार्गी जैसी विदुषी महिलाओं का जिक्र मिलता है जो न केवल शिक्षित थीं बल्कि यज्ञ करने में भी अपनी भागीदारी रखती थीं। मध्यकाल में महिलाओं का जीवन विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के कारण नरक बना हुआ था। वर्तमान समय की मांग को देखते हुए स्त्री एवं पुरुष दोनों ही आर्थिक रूप से सुदृढ़ होकर अपने परिवार को चलाने में भागीदारी निभाते हैं। परंपरागत समाजों की अपेक्षा आज के समाज में खान–पान, पहनावा, खेल–कूद आदि में लैंगिकता को लेकर परिवर्तन तो नजर आता है परंतु लैंगिक असमानता से मुक्ति अभी दूर की बात है।

1.5.4 लैंगिक निर्माण में बच्चों की पालन संबंधी प्रथाओं की आलोचना

प्रत्येक बच्चा अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने का हकदार है, लेकिन उनके जीवन में लैंगिक असमानता उनकी देखभाल करने वालों के जीवन में एक बहुत बड़ी बाधा है। हर बच्चे का अधिकार है कि उसे उसकी क्षमता के विकास का पूरा मौका मिले, लेकिन लैंगिक असमानता की कुरीति की वजह से वे ठीक से फल–फूल नहीं पाते अर्थात उनका सही तरह से पालन–पोषण नहीं हो पाता।

भारत में लड़कों और लड़कियों के बीच न केवल उनके घरों और समुदायों में बल्कि हर जगह लैंगिक असमानता दिखाई देती है। पाठ्यपुस्तकों, फिल्मों, मीडिया आदि सभी क्षेत्रों में उनके साथ लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाता है। यही नहीं उनकी देखभाल करने वाले पुरुषों और महिलाओं के साथ भी भेदभाव किया जाता है।

विश्व स्तर पर आंकड़ों के आधार पर देखें तो जन्म के समय लड़कियों के जीवित रहने की संख्या अधिक है, साथ ही साथ उनका विकास भी व्यवस्थित रूप से होता है। उन्हें प्री स्कूल में भी जाते पाया गया है। जबकि भारत एकमात्र ऐसा बड़ा देश है जहां लड़कों के अनुपात में लड़कियों की मृत्यु दर अधिक है। उनके स्कूल न जाने या भेजने में कई कारणों से स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

भारत में लड़के और लड़कियों के बालपन के अनुभव भी बहुत अलग होते हैं। यहां लड़कों को लड़कियों की तुलना में अधिक स्वतंत्रता मिलती है, जबकि लड़कियों की स्वंतत्रता में अनेक प्रतिबंध होते हैं। इन प्रतिबंधों का असर उनकी शिक्षा, विवाह और सामाजिक रिश्तों, खुद के लिए निर्णय के अधिकार आदि को प्रभावित करता है। लैंगिक असमानता एवं लड़कियों और लड़कों के बीच भेदभाव जैसे–जैसे बढ़ता जाता है, इसका असर न केवल उनके बालपन में दिखता है बल्कि वयस्कता आते–आते इसका स्वरूप और व्यापक हो जाता है। नतीजतन कार्यस्थल में मात्र एक चौथाई महिलाओं को ही काम करते देखा जाता है।

हालांकि कुछ भारतीय महिलाओं को विश्व स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली पदों पर नेतृत्व करते पाया गया है, लेकिन भारत में अभी भी ज्यादातर महिलाओं और लड़कियों को पितृसत्तात्मक समाज के विचारों, मानदंडों, परंपराओं और संरचनाओं के कारण अपने अधिकारों का पूर्ण रूप से अनुभव करने की आजादी नहीं मिली है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. "संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आंतरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, पारंपरिक सद्व्यवहार है और एक दूसरे को समझने की शक्ति है।" यह किसका कथन है?

   (क) सुभाषचंद्र बोस (ख) महात्मा गांधी

   (ग) पं. जवाहरलाल नेहरू (घ) रवीन्द्रनाथ टैगोर

8. टायलर ने संस्कृति के मूल तत्वों में किसको शामिल किया है?

   (क) मानव क्षमता एवं प्रौद्योगिकी (ख) मानव के सृजन

   (ग) कानून, ज्ञान, विश्वास एवं नैतिकता (घ) उपरोक्त सभी

टिप्पणी

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (घ)
4. (ख)
5. (क)
6. (ख)
7. (ग)
8. (घ)

1.7 सारांश

लैंगिकता विशेष रूप से पुरुषत्व या नारीत्व के पहलू और परिस्थिति को बताने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिए, गुलाबी और नीले रंग पर लैंगिकता की धारणा यह है कि पहला रंग स्त्री के लिए और दूसरा पुरुष के रूप में जाना जाता है। लैंगिकता, महिलाओं और पुरुषों के विभिन्न कार्य के भुगतान से संबंधित है। (आमतौर पर यह भुगतान के काम को विभिन्न प्रकारों को समय पर पूरा करने के लिए दिया जाता है। महिलाएं सुरक्षित एवं कम अवधि के कार्य करती हैं जबकि पुरुष लंबी अवधि के जोखिम भरे भी काम करते हैं, उदाहरण के लिए अस्पताल में महिलाएं तथा उद्योग में पुरुष)। इसी प्रकार काम से संबंधित भुगतान के मामले में पुरुषों और महिलाओं की औसत आय अलग–अलग है। लैंगिकता शब्द को उल्लेख करने का यह अलग तरीका है। लैंगिकता को एक क्रिया के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसीलिए लिंग कार्यवाई को अभिव्यक्ति देता है। लिंग का प्रयोग लैंगिकरण या लैंगिकता के रूप में महिलाओं की सहमति का प्रतिबिम्ब बनी हुई है। लैंगिकता पुनः पेश की गई सामाजिक प्रक्रियाओं से महिलाओं और पुरुषों के बीच भेद उत्पादन का एक तरीका है। लैंगिकरण और लैंगिकता का प्रयोग उन परिणामों को सूचित करने के लिए किया जाता है, जोकि सामाजिक रूप से निर्माण और दैहिक गतिविधियों को महिलाओं से अधिक पुरुषों को वरीयता देता है।

टिप्पणी

समाजशास्त्र के अनुशासन की स्थापना करने वाले कुछ विचारकों ने महिलाओं से संबंधित मुद्दों के लिए भाग लेने के लिए लोगों को प्रेरित किया है और यह बौद्धिक, राजनीतिक और सामाजिक उथल–पुथल माना गया था, जिसकी लहर नारीवादियों के अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर विरोध आंदोलनों के साथ दिखाई देती थी। इसके बावजूद, इन विचारकों में से ज्यादातर अपनी व्यापक बहस से इस बात में एकीकृत थे कि परिवार, भावना और कामुकता के विषय में महिलाओं के मुद्दों से संबंधित तर्क सीमित हैं। उनके सिद्धांतों के लिए केंद्रीय ढांचे और प्रक्रियाओं को आकार देने के लिए सांस्कृतिक रूप से परिभाषित मर्दानगी का प्रभाव काफी हद तक गैर मान्यता प्राप्त था, जबकि वे तर्क अधिकतर पुरुष प्रधान संरचनाओं के महत्व पर केंद्रित थे। उनके सिद्धांत भी पुरुष प्रधान संरचनाओं के तटस्थ और निहित थे। इस प्रकार, क्या समाजशास्त्र के प्रारंभिक विचारकों के बारे में कहा जा सकता है कि लैंगिक मुद्दों पर विचार की प्रक्रिया परिधीय है कि नहीं? सबसे परे वे कहते हैं कि परोक्ष रूप से उचित लिंग असमानता सिद्धांत तैयार किया गया है।

एक पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली में, परिवार के सदस्य अपने पिता के वंश से पहचाने जाते हैं, जबकि मातृवंशीय परिवार में, पुरुष को आगंतुक और महिला को स्थायी सदस्य माना जाता है। पितृवंशीय परिवार में, बेटा स्थायी सदस्य होता है जबकि बेटी अस्थायी क्योंकि उसे अपने पति के घर में रहने के लिए अपने पिता के घर को छोड़ना पड़ता है। वह अपने पिता के घर कभी–कभी आ जा सकती है।

मातृसत्ता एक सामाजिक सांगठनिक संरचना है, जिसमें मां या फिर सबसे बूढ़ी महिला परिवार की प्रधान होती है। वंश और संबंध का निर्धारण महिला कुल से किया जाता है। किसी महिला या महिलाओं का भी इस पर नियंत्रण या शासन होता है। जहां सामान्य अंग्रेजी में जो परिभाषाएं लागू होती हैं, वहीं मानव विज्ञान की विधाओं और नारीवाद से जुड़ी परिभाषाओं में कुछ संदर्भों में अंतर है।

महिला अध्ययन से लैंगिक अध्ययन अचानक ही नहीं हुआ। यह एक यात्रा है, एक प्रक्रिया है। आज हम लैंगिक अध्ययन को जिस रूप में जानते, समझते या पढ़ते हैं उसकी नींव दशकों पहले स्त्रीवादी चिंतकों द्वारा ही रखी हुई है। कुछ ऐसे चिंतक भी थे जो स्त्री को तय ढांचे में ही रखना चाहते थे परंतु स्त्रीवादी चिंतकों ने स्त्री की वास्तविक स्थिति को सबके सामने न केवल उजागर किया बल्कि स्त्री को स्वयं अपनी स्थिति सुधारने के लिए प्रेरित भी किया।

अधिकांशतः बचपन से ही लड़के एवं लड़कियों की लिंगाधारित भूमिका निर्धारित कर दी जाती है और फिर अपने जीवन काल में वे उन रूढ़िबद्धता का सामना करते रहते हैं। लड़की के जन्म को ही बुरा माना जाता है। बेटी पैदा होने पर दुख की अभिव्यक्ति की जाती है और भाग्य को कोसा जाता है। दूसरी तरफ लड़के के पैदा होने पर खुशी जाहिर की जाती है और जश्न मनाया जाता है। बेटी के पैदा होने पर मां की भी उपेक्षा की जाती है और उसको अच्छा खान–पान नहीं दिया जाता। ऐसे में उनकी ये निराशा उनकी बेटियों में भी हस्तांतरित होती है। लड़कों को खूब दुलार से पाला–पोसा जाता है और उनका पालन–पोषण भी अच्छे से किया जाता है। दोनों के लिए अलग–अलग तरह के वस्त्र बनाए जाते हैं। यहां तक कि रंगों का चुनाव भी लिंग के हिसाब से किया जाता है। दोनों के खिलौनों में भी बहुत अंतर होता है। लड़कियों

को बर्तन, गुड़िया आदि जबकि लड़कों को बंदूकें, गाड़ियां, हवाई जहाज और विडियो गेम जैसे खिलौने दिए जाते हैं।

समाज के प्रमुख अंगों में लैंगिकता, संस्कृति और इनमें संबंधित संस्थाएं प्रमुख हैं। भारतीय कानून में स्त्रियों के विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। उनकी बराबरी के लिए अनेक धाराएं तथा उपबन्धों का निर्धारण किया गया है। संविधान में स्त्री–पुरुष में कोई विभेद नहीं किया गया। इस प्रकार कानून ने नियम तो काफी बनाए हुए हैं। किन्तु उनके पालन में ढ़ील की जाती है। ऐसे में लड़कियों को उनके लिए बनाए गए कानूनों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। सारांश में कानून के माध्यम से लिंग की भूमिकाओं में समुचित योगदान दिया जा सकता है।

टिप्पणी

1.8 मुख्य शब्दावली

- **लिंग** : लिंग का अर्थ सामाजिक एवं सांस्कृतिक लिंग से है।
- **यौनिकता** : यौनिकता से अभिप्राय जैविक लिंग से है।
- **लैंगिकता** : लैंगिकता सिर्फ एक शारीरिक प्रक्रिया नहीं बल्कि इसके दायरे में राजनीतिक, सामाजिक, कानूनी और धार्मिक संघर्ष भी आते हैं। वैसे तो लैंगिकता में यौनिकता शामिल है, पर इसका दायरा यौनिकता से कहीं अधिक विस्तृत है।
- **पितृसत्ता** : एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था और विचारधारा जिसके अनुसार पुरुष श्रेष्ठ है।
- **नारीवाद** : एक ऐसी विचारधारा जो समाज में स्त्रियों की स्थिति एवं उनके साथ होने वाले भेदभाव पर विचार करती है और उनके सशक्तीकरण के लिए प्रयास करती है।
- **लैंगिक रूढ़िबद्धता** : लैंगिक रूढ़िबद्धता लड़का एवं लड़की की समाज में गढ़ी गई छवियां हैं जो लड़का एवं लड़की को एक विशेष सांचे में ढालती है।
- **सशक्तीकरण** : यह एक अवधारणा है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को विशेषाधिकार एवं किसी कार्य को करने एवं निर्णय लेने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लिंग व यौनिकता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. लैंगिकता से क्या अभिप्राय है?
3. नारीवाद से आप क्या समझते हैं?
4. लैंगिक पूर्वाग्रह एवं लैंगिक रूढ़िबद्धता के अर्थ स्पष्ट कीजिए।
5. महिला सशक्तीकरण के आशय को स्पष्ट कर इसके विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालिए।

1. लैंगिक पूर्वाग्रह एवं रूढ़िबद्धता के कारणों की विवेचना कीजिए।
2. श्रम विभाजन में लैंगिक भूमिका को स्पष्ट कीजिए। लैंगिक संबंधों में पितृसत्ता एवं मातृसत्ता की क्या भूमिका है? उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी

3. नारीवादी आन्दोलनों की किन्हीं तीन नारीवादी विचारधाराओं का विश्लेषण कीजिए।
4. भारतीय संदर्भ में नारीवादी आंदोलन के प्रारम्भ एवं वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए।
5. स्वतंत्रता के उपरांत भारत सरकार द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार एवं परिवर्तन हेतु उठाए गए कदमों की समीक्षा कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Dr. Senllina, *Gender Analysis of State Policies : A Case Study of Chhattisgarh.*
2. R. Govinda, *Towards Gender Equality in Education : Progress and Challenges in Asia-Pacific Region,* National University of Educational Planning and Administration, New Delhi.
3. Bhattacharjee, Nandini (1999), Through the Looking Glass : Gender Socialisation in a Primary School in T.S. Sarswathi (ed). *Culture, Socialization and Human Development : Theory Research and Applications in India,* Sage: New Delhi.
4. Geetha, V. (2007), *Gender,* Stree: Calcutta.
5. Ghai. Anita (2008) Gender and Inclusive Education at all levels in Ved Prakash & K. Biswal (ed.), *Perspectives on Education and Development: Revising Education Commission and After,* National University of Educational Planning and Administration, New Delhi.
6. Jeffery. P. and R. Jeffery (1994), Killing My Heart's Desire: Education and Female Autonomy in Rural India. in Nita Kumar (ed.), *Women as Subjects: South Asian Histories.* New Delhi: Stree in association with the Book Review Literacy Trust: Kolkata, pp 123-171.
7. Ghai Anita (2006), Education in a Globalising Era: Implications for Disable Girls. *Social Change,* 30(3) pp 161-176.
8. Mehrotra. D.P., India: Sexism and Patriarchy in the Textbooks, Good Girls are submissive and subsidiary, Thursday 22 November 212. South Asia Citizen's Web

इकाई 2 लैंगिकता और शिक्षा

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 भारत में शिक्षा : एक लैंगिक विश्लेषण
  2.2.1 भारत में विद्यालयी शिक्षा : लैंगिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक अवलोकन
  2.2.2 लड़कियों की शिक्षा : समाजशास्त्रीय समझ और सामाजिक मुद्दे
  2.2.3 लड़कों और लड़कियों के लिए सह विद्यालय : समस्याएं एवं समाधान
2.3 पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दे
  2.3.1 पाठ्यपुस्तक और लैंगिक प्रतिनिधित्व
  2.3.2 स्कूली गतिविधियां : लैंगिक पूर्वाग्रह
  2.3.3 लड़कियों की स्कूली शिक्षा : लड़कियों का नामांकन, प्रतिधारण एवं कारण
2.4 लैंगिक समानता : नीतिगत हस्तक्षेप
  2.4.1 लैंगिक न्याय समानता : संवैधानिक प्रावधान
  2.4.2 कमेटियां, आयोग एवं नीतिगत घोषणाएं और लैंगिक समानता
  2.4.3 लैंगिक असमानता को दूर करने के उपाय
2.5 लैंगिकता एवं कक्षा अभ्यास
  2.5.1 छात्रों की क्षमताओं के बारे में शिक्षक की धारणाओं में लैंगिक पूर्वाग्रह
  2.5.2 स्कूली गतिविधियां एवं संस्कृति
  2.5.3 कक्षा अभ्यास
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

2.0 परिचय

लिंग के आधार पर शिक्षा में विभेद शिक्षा के प्रारंभिक स्तर से हो जाता है एवं संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया में चलता रहता है, अधिकांश देशों में पुरुष एवं स्त्री में विभिन्न विषयों में उपलब्धि पृथक होती है। यद्यपि यह माना जाता है कि लिंग विभेद का जन्म बाल्यावस्था के दौरान परिवार में ही प्रारंभ हो जाता है किंतु विद्यालय ही वह मुख्य संस्था हो जाता है जो असमान शैक्षिक उपलब्धियों के लिए जिम्मेदार है। कोनिल व अन्य (1982) ने बताया कि विद्यालय लिंग संबंधी विचारों का निर्माण व पुनर्निर्माण करता है। जिससे कि स्त्रियों में अधीनस्थ स्तर के बारे में निरंतर सुदृढ़ है। यह तथ्य कि अनेक देशों में स्त्री अब विद्यालयों में अधिक वर्षों तक रुक सकती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि लिंग भेद समाप्त हो गया है। पाठ्यक्रम निर्माण, विद्यालय संगठन एवं प्रत्येक विद्यालयी स्तर पर लिंग सम्बन्धों में रिश्तों में सुधार एवं विकास करने के लिए इन सिद्धांतों में निरंतरता, सामूहिक एवं निजीगत की आवश्यकता महसूस की गई है।

प्रस्तुत इकाई में भारत में विद्यालयी शिक्षा, लड़कियों की शिक्षा में आने वाली समस्याएं, पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दे, लैंगिक समानता के संवैधानिक प्रावधान, लैंगिक

असमानता को दूर करने के उपाय, लैंगिकता और कक्षा अभ्यास आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

टिप्पणी

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- लैंगिक परिप्रेक्ष्य में भारत की विद्यालयी शिक्षा से अवगत हो पाएंगे;
- लड़कों और लड़कियों की सह–शिक्षा में आने वाली समस्याओं को जान पाएंगे;
- पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दों को समझ पाएंगे;
- लैंगिक समानता में संवैधानिक प्रावधानों व लैंगिक असमानता को दूर करने वाले उपायों को जान पाएंगे;
- लैंगिकता और कक्षा अभ्यास की प्रक्रिया को समझ पाएंगे।

2.2 भारत में शिक्षा : एक लैंगिक विश्लेषण

लिंग असमानता को चुनौती देने अर्थात लिंग असमानता को समाप्त करने में स्कूलों की भूमिका विशिष्ट हो सकती है। स्कूलों में ऐसे नियम बनाए जाएं जो लड़की/लड़के के विभेद को, असमानता को दूर कर सकें। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में भारी बदलाव लाने की महती आवश्यकता है। लड़की लड़के दोनों के लिए एक ही स्कूल को प्रोत्साहन दिया जाए, जहां लड़के/लड़की समान रूप से अध्ययन कर सकें। विद्यालयों द्वारा लड़की लड़के के बीच नैतिकता की शिक्षा पर बल दिया जाए। विद्यालयों में लड़के–लड़की का संबंध मित्रता का ना होकर भाई–बहन का होना चाहिए। इसके लिए कठोर और प्रभावी नियम बनाए जाने अति आवश्यक हैं। इसके लिए विद्यालय प्रशासन को बुनियादी सावधानी बरतने की भी आवश्यकता है। विद्यालय का स्वरूप जनतंत्रीय विचारधारा पर आधारित होना चाहिए। विद्यालयों को संस्कृति संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए। इससे विद्यार्थी भी संस्कृति और संस्कारों से तालमेल बैठाने का प्रयास कर सकेंगे।

विद्यालय अध्ययन के अतिरिक्त बालक–बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास पर भी समुचित ध्यान दें। बालकों की रूचियों, अभिरूचियों और योग्यताओं को परखते हुए उसकी जन्मजात शक्तियों को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित करने में योगदान दें। किन्तु स्वतंत्रता को अन्यत्र भी न लें। विद्यालय विद्यार्थियों के मानसिक विकास को भी सही दिशा देने के कार्य करें। सामाजिक विकास करने की भी यहां आवश्यकता नितांत आवश्यक होगी। विद्यालय के वातावरण को पवित्र बनाने पर भी बल देना आवश्यक होगा इसके लिए मन और शरीर को साधने वाले योगाभ्यास कराने की भी आवश्यकता होगी। भारतीय विद्यालयों को मनोवैज्ञानिकता पूर्ण वातावरण बनाना भी उत्तम रहेगा, इससे भी लिंग असमानताओं पर काबू पाया जा सकता है। विद्यार्थियों के चरित्र बल को बढ़ावा देना भी विद्यालयों की प्राथमिकता होनी चाहिए। भारत में प्राचीनकाल से ही चरित्र निर्माण की शिक्षा पर बल दिया जाता रहा है। इसी चरित्र बल को देखते हुए मार्कोपोलो और फाह्यान ने भारतीय चरित्र की सराहना मुक्त कण्ठ से की थी। आज

भी भारतीय विद्यालयों को अपने विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण की शिक्षा देना उत्तम रहेगा।

विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता पर भी बल देना उत्तम होगा। इससे बालक–बालिका स्कूल से निकलकर स्वयं अपनी आजीविका अर्जित कर सकेंगे। आत्म निर्भर बन सकेंगे। साथ ही घर/परिवार के लिए भी सहारा बन सकेंगे। पुस्तकीय ज्ञान के साथ–साथ, सृजनात्मक तथा रचनात्मक ज्ञान को भी बढ़ावा देना विद्यालयों का नैतिक कर्तव्य होना चाहिए। इससे संबंधित प्रशिक्षण भी शिक्षकों को दिलाने का दायित्व विद्यालयों का होना चाहिए। विद्यालय स्वयं को सामाजिक क्रियाकलापों से भी जोड़ें। इसके लिए सफाई अभियान के आयोजन, समाज में सहयोग देने के कार्यक्रम विद्यालय विद्यार्थियों के साथ समाज में जाकर करें ताकि वे भविष्य में कुशल और सफल नागरिक भी सिद्ध हो सकें। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में सामाजिक मूल्यों को भी उतारना विद्यालयों का दायित्व होना चाहिए जिससे पढ़–लिखकर विद्यार्थीगण सामाजिक मूल्यों की समझ विकसित कर समाज की उन्नति में सहायक बन सकें। इन सब प्रयासों के अतिरिक्त विद्यालयों में बालक बालिका की असमानता को दूर करने के लिए और चुनौती देने के लिए भी वयस्क शिक्षा और सेक्स शिक्षा भी देनी आवश्यक होगी जिससे वे सेक्स को गलत भावना से न ले सकें। अपितु स्वस्थ मन से सेक्स को समझें और जीवन में उतार कर लिंग असमानता को दूर कर सकें। इस प्रकार लिंग असमानता की चुनौती को स्कूल सहर्ष स्वीकार कर अपनी भूमिका सफलता पूर्वक निभा सकने में समक्ष सिद्ध हो सकेंगे।

टिप्पणी

2.2.1 भारत में विद्यालयी शिक्षा : लैंगिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक अवलोकन

बचपन में बालकों को यह पता होता है कि वे भविष्य में जाकर क्या बनेंगे, यह पूर्व निर्धारित ही होता है। बालकों को उनके लिंग के आधार पर नाम दिए जाते हैं। बालकों को लिंग के आधार पर ही प्रतीकात्मक चिह्न प्रदान किए जाते हैं। बचपन में बालक को खेलने के लिए जो खिलौने दिए जाते हैं वे भी लिंग के आधार पर ही होते हैं। ये खिलौने समाज की मान्यता के अनुसार ही बच्चों को दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए लड़कियों के लिए गुड़िया तथा लड़कों के लिए कार के खिलौने दिए जाते हैं। समाज में व्यक्ति बालक के लिंग के बारे में पूछने के बजाय वह देख कर ही बालक की पहचान कर सकते हैं। समाज में व्यक्ति बालक के लिंग की पहचान बालक के रुझान को देखकर कर लेते हैं। हमारे समाज में व्यक्तियों द्वारा इस तथ्य को भी महत्व दिया जाता है जिसके द्वारा वह किसी बच्चे के लिंग को इंगित कर सकते हैं।

किसी भी व्यक्ति का किशोरावस्था काल वह समयावधि होता है जिसमें किसी भी बालक का समाजीकरण होता है तथा इसके साथ ही यह वह समय भी होता है जिसमें कोई व्यक्ति समाज में स्वयं को प्रस्तुत करता है। इस समयावधि में बालक अपने लैंगिक कार्य निष्पादन स्तर को सफलतापूर्वक प्राप्त करता है एवं परिणामस्वरूप सामान्य असफल या अनुपयोगी भी पता चलता है। समाज के द्वारा व्यक्तियों को लैंगिक आधार पर स्पष्ट किया जाता है तथा इसकी अवधारणा को समाज की आशाओं के अनुरूप निरंतर डाला ही जाता है। अनेक प्रकार से समाज में व्यक्ति अचेतन अवस्था में ही इस प्रकार के लैंगिक विभाजन में आदर्श प्रतिभागिता में हिस्सा लेते रहते हैं।

टिप्पणी

समाज में व्यक्तियों के स्वयं को परिभाषित करने का लैंगिक आधार एक प्रमुख पहलू है। लैंगिक आधार पर व्यक्तियों को दी गई भूमिकाएं वास्तव में सामाजिक तौर पर रचित किए गए विचार होते हैं जो कोई व्यक्ति समाज में अपने संपूर्ण जीवन काल में अर्जित करते हैं। यह लैंगिक भूमिकाएं समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा पुनः–पुनः शुद्ध होती रहती हैं। जिस प्रकार से जैविक आधार पर मनुष्य की यही पहचान उसके नाम पर तथा अन्य प्रतीकों द्वारा परिलक्षित होती है। लैंगिक विकास अन्य व्यक्तियों के सोचने, समझने देखने, शैक्षिक संस्थान, माता–पिता एवं मीडिया इत्यादि के द्वारा प्रभावित होती है। समाज में होने वाली इन्हीं अंतर क्रियाओं की विविधता के कारण समाज में व्यक्ति मजबूरन यह सीखने पर विवश होता है कि उसे क्या करना चाहिए, इसी के अनुरूप समाज में प्रत्येक व्यक्ति व्यवहार एवं क्रियाएं करता है तथा इसी प्रकार से लैंगिकता को रचित करके उसे बरकरार रखा जाता है।

लैंगिक परिप्रेक्ष्य के द्वारा यह आकलन करने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्तिगत आधार पर मनुष्य के लिंग का तथा उसके संबंधों का क्या प्रभाव पड़ता है। लैंगिक परिप्रेक्ष्य का अनेक प्रकार की नीतियों, योजनाओं, परियोजनाओं, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने का सीधा एवं प्रभावी प्रभाव पड़ता है। लैंगिक परिप्रेक्ष्य का संपूर्ण सामाजिक प्रकरणों पर प्रभाव पड़ता है तथा यह समाज के किसी भी व्यक्ति के लिए सभी पहलुओं का एक केंद्रीय तत्व होता है। किसी सही परिप्रेक्ष्य के द्वारा समाज में किसी भी महिला अथवा पुरुष के दैनिक जीवन में एवं व्यक्तिगत जीवन में आर्थिक तथा सामाजिक लाभ पहुंचाया जा सकता है। अनेक समाजशास्त्रियों के अनुसार नर एवं मादा के मध्य पाए जाने वाले जैविक अंतर को ही अंतर के रूप में समझा जाता है तथा यह प्राकृतिक होता है। यही सामाजिक विभेद लैंगिक विभेद कहलाते हैं। इन विभेदों के द्वारा नर तथा मादा के मध्य असमानताओं को भी व्यक्त किया जाता है, हालांकि उनके प्रभाव बहुत ही विविध प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार की योनि श्रेणी एक अपरिवर्तनीय जैविक गुणवत्ता होती है जो कि पूरी सृष्टि में एक समान रूप से विद्यमान है। इसके विपरीत लैंगिक स्तर समाज के ऐतिहासिक संबंधों में भी देखा जा सकता है।

लिंग का उद्‌भव जैविक अंतरों के आधार पर माना जाता है लेकिन वर्तमान समय में यह शारीरिक तथा जैविक रूप से देखे जाने के रूप में भी संदर्भित किया जाता है तथा इनके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों के द्वारा भी समझा जाता है। लैंगिक आधार पर किए जाने वाले अंतरों (लिंग–भेद) को आधुनिक समाज के उत्पाद के रूप में देखा जाता है तथा यह एक विशेष प्रकार के प्रतीक के रूप में विकसित करके समाज में इसका परिचय करवाया गया है। लिंग की अपरिवर्तनीय विशेषताओं (Immutable Characteristics of Sex) के विपरीत लिंग भेद सार्वजनिक रूप से ऐतिहासिक एवं समकालीन सामाजिक आकलन के द्वारा समझा गया है तथा यह समय के साथ–साथ एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति की तरफ, जिस प्रकार से समाज का विकास तथा परिवर्तन होता चला गया यह भी परिवर्तित होता रहा है। समाज में परिवर्तन एवं विकास के अनुरूप ही लैंगिक संबंधों को भी विभिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थितियों एवं उत्तरदायित्व के द्वारा स्पष्ट किया गया जो कि किसी विशेष लिंग के व्यक्ति के द्वारा

निर्धारित की जा रही हों। इस स्थिति के द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि समाज में किसी एक लिंग के व्यक्ति के द्वारा कौन से अधिकार लिए जा रहे हैं।

मनुष्यों की दैनिक जीवन प्रणाली में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं जिनमें कि, परिवार के दोनों ही लिंगों के व्यक्ति घरेलू कामकाज को मिल बांटकर कर लेते हैं। प्रत्येक परिवार में व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का एक स्पष्ट विवरण होता है तथा प्रत्येक सदस्य को शिक्षा ग्रहण करके समुचित रोजगार करने के अवसर भी उपलब्ध हैं एवं परिवार के प्रत्येक सदस्य को निर्णय लेने की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना भी चाहिए।

टिप्पणी

सेक्स एवं लिंग (Sex and Gender) में अंतर क्या है? यह प्रश्न समाजशास्त्र के शिक्षार्थियों से अकसर पूछा जाता है। अतः अपने दोनों ही पदों के मध्य स्पष्टता होनी अनिवार्य है क्योंकि अधिकांश व्यक्ति इन पदों के संबंध में गलत अवधारणाएं रख लेते हैं। व्यक्ति इन दोनों को एक ही पद मान लेते हैं तथा दोनों पदों को एक दूसरे के स्थान पर भी प्रयोग कर लेते हैं जिससे अनेक समस्याएं हो जाती हैं क्योंकि ये दोनों शब्द अलग अर्थ रखते हैं।

लिंग के द्वारा पूर्ण विशेषताओं की रूपरेखा तैयार की जाती है, जिनके द्वारा नर एवं मादा के मध्य अंतर स्पष्ट किया जाता है। इसका विस्तार लैंगिक व्यक्तित्व एवं समाज में महिला अथवा पुरुष की भूमिका तक भी होता है। पद 'लिंग' को अनेक प्रकार से परिभाषित किया जाता है। जिसके सामान्य उपयोग में लिंग का सीधा–सीधा अर्थ किसी व्यक्ति के महिला अथवा पुरुष होने से (सेक्स से) लगाया जाता है। जबकि समाजशास्त्र के क्षेत्र में इसका अर्थ समाज में किसी एक लिंग के व्यक्ति के द्वारा समाज में निभाई जा रही विशेष प्रकार की संस्थात्मक भूमिका के द्वारा होता है। यह स्पष्टीकरण किसी भी व्यक्ति की स्थिति एवं भूमिका पर आधारित होता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार लिंग वे भूमिकाएं हैं जो समाज में स्त्री एवं पुरुष को दी गई होती हैं। ये भूमिकाएं मनुष्य द्वारा बनाई गई होती हैं तथा इनका विकास समाज की संस्कृति के अनुसार होता है एवं साथ ही साथ इनका आधार समाज में स्त्री एवं पुरुष के व्यवहार एवं क्रियाओं द्वारा भी होता है। लैंगिक भूमिकाएं समाज की संस्कृति के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।

लैंगिकता और यौनिकता के लक्षण

लिंग (जेंडर) और सेक्स के लक्षण निम्नवत हैं–

- लिंग एक सामाजिक सांस्कृतिक संबंध होता है जो कि एक सीखा हुआ व्यवहार भी होता है।
- किसी भी लिंग की महत्वपूर्ण भूमिका के निर्धारण में सामाजिक लेन–देन, अंतःक्रिया, साथी समूह का प्रभाव एवं परंपराओं का विशेष योगदान होता है।
- लिंग को लचीला समझा जा सकता है। समाज में कोई व्यक्ति अपने लिंग के विपरीत व्यवहार कर सकता है। उदाहरण के लिए समाज में कोई पुरुष अपने आप को महिला के रूप में प्रस्तुत कर सकता है तथा अपना सेक्स बदल कर महिला भी बन सकता है, इस आधार पर हम समझ सकते हैं कि लिंग एवं सेक्स दो प्रथम पद हैं तथा एक दूसरे से अलग–अलग हैं।

टिप्पणी

- लिंग के चरित्रीकरण एवं व्यक्तित्व में सांस्कृतिक नियंत्रण का उपयोग किया जाता है। दर्शन एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में इस प्रकार के सामाजिक नियंत्रण को अनेक प्रकार के नारीवादी सिद्धांतकारों ने चुनौती भी दी है। अनेक विशेषज्ञ इस प्रकार की प्रथा को लिंग विरोधी मानते हैं तथा समाज के लिए हानिकारक ही समझते हैं। यह नारीवादी विचारक इस बात के बिल्कुल विपरीत हैं कि लड़के ही फौजी बन सकते हैं तथा लड़कियां खिलौनों एवं गुड़ियाओं से खेलती हैं।
- सेक्स का आधार शारीरिक संरचना होती है जिसे जन्म के द्वारा निर्धारित किया जाता है। यह एक जैविक विशेषता है जिसके द्वारा पुरुष एवं महिला के मध्य अंतर किया जाता है।
- किसी भी व्यक्ति के सेक्स की पहचान करने में संस्कृति की किसी प्रकार की कोई भूमिका नहीं होती है क्योंकि यह एक प्राकृतिक प्रक्रम है जिसमें मनुष्य साधारणतया छेड़छाड़ नहीं कर सकता।

लैंगिकता और यौनिकता के बीच अंतर

सेक्स का तात्पर्य किसी व्यक्ति की शारीरिक भौतिक बनावट से होता है जबकि लिंग एक सामाजिक संदर्भ में लिया जाने वाला पद है। महिला एवं पुरुषों के द्वारा किए जाने वाले श्रम एवं गतिविधियों को भी सामाजिक मान्यताओं के अनुसार विभाजित किया जाता है। इसको स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि कोई एक विशेष सेक्स का व्यक्ति चाहे वह महिला हो या पुरुष हो, उसे विशेष प्रकार का कार्य करना होता है। इसी प्रकार से लिंग के संबंध में भी स्त्रीवाचक एवं पुरुषवाचक हो सकता है।

विश्व में सभी समाज सेक्स की विशेषताओं को समझते हैं परंतु लिंग के आधार पर ये विशेषताएं एक दूसरे से भिन्न होती हैं तथा उन्हें एक ही प्रकार से संबंधित नहीं कर सकते हैं। महिला एवं पुरुष की शारीरिक बनावट में तथा शरीर की संरचना में प्राकृतिक भिन्नता होती है। इन भिन्नताओं को पूरे विश्व में समझा जाता है एवं स्वीकार भी किया जाता है। परंतु सभी समाजों में लिंग भेद एक समान नहीं हो सकता है, उदाहरण के लिए वियतनाम राष्ट्र में पुरुषों के लिए धूम्रपान स्वीकार्य है परंतु महिलाओं के लिए नहीं है। संयुक्त अरब अमीरात में महिलाओं को वाहन चलाने की अनुमति नहीं होती है जबकि इस प्रकार का लिंग भेद विश्व के अन्य स्थानों में बहुधा नहीं पाया जाता है। ऐसा भी देखा गया है कि एक ही प्रकार के रोजगार में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कम पारिश्रमिक दिया जाता है, अधिकांश मानव समाज में महिलाओं का कार्य भोजन पकाना तथा घर की साफ सफाई करने तक ही सीमित होता। अतः सभी से किसी भी व्यक्ति का सेक्स तो निश्चित होता है परंतु लिंग पर आधारित भूमिकाएं एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति से अलग होती हैं।

समाज में लिंग की स्थिति का बहुत कठोर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसके द्वारा किसी व्यक्ति के शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने पर भी प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्रीय संबंध में लिंग भूमिका के द्वारा सेक्स से संबंधित विभिन्न चरणों तथा व्याख्याओं को अलग–अलग संस्कृतियों के संदर्भ में स्पष्ट किया जाता है। पुरुष एवं महिला को पुरुष एवं स्त्रीवादी के साथ जोड़कर देखा जाता है, बशर्ते कि यह दोनों ही लिंग के व्यक्ति अपने–अपने समाज तथा सामाजिक मानकों के अनुसार व्यवहार करते हैं।

2.2.2 लड़कियों की शिक्षा : समाजशास्त्रीय समझ और सामाजिक मुद्दे

टिप्पणी

स्त्री शिक्षा लैंगिक असमानता को दूर करने का महत्वपूर्ण उपाय है। वैसे तो वर्तमान समय में स्त्री एवं पुरुष दोनों के हस्तक्षेप के बिना समानता की अवधारणा एक कोरी कल्पना है परंतु चूंकि असमानता का दंश स्त्री को अधिक झेलना पड़ता है इसलिए असमानता को दूर करने के जितने प्रयास स्वयं स्त्रियों द्वारा किए जाएं उतना बेहतर होगा।

भारतीय संविधान सबको धर्म, जाति, वंश, लिंग के आधार पर एक ही दृष्टि से देखता है एवं सबको समानता का अधिकार देता है। भारतीय संस्कृति में बदलाव के साथ–साथ, समय–समय पर महिलाओं की स्थिति में भी बदलाव हुए हैं। वे आज जो हैं उनकी इस स्थिति के पीछे उनका एक लंबे संघर्ष का इतिहास है। वे हर क्षेत्र में अपनी पहचान बनाकर यह सिद्ध कर रही हैं कि यदि उन्हें समान अवसर दिया जाए तो वे अपनी स्थिति में स्वयं परिवर्तन ला सकती हैं। स्त्री साक्षरता दर में भी वृद्धि हो रही है परंतु स्त्री साक्षरता का ये लक्ष्य इतना सरल नहीं था। महिलाओं को लेकर समाज में व्याप्त मान्यताओं, परम्पराओं, अवधारणाओं, व्यवहारों एवं सोच में परिवर्तन लाना सरल नहीं था। यह परिवर्तन धीरे–धीरे आया है। आज भी हमें समाज में ऐसे बहुत से उदाहरण आसानी से देखने को मिल जाते हैं जहां महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता है। समाज को लैंगिक भेदभाव अभी भी जकड़े हुए है। लिंग आधारित भेदभाव जनित रूढ़िग्रस्त मानसिकता में बदलाव लाना एक चुनौती है जिसका सामना शिक्षा व्यवस्था में सुनियोजित बदलाव लाकर किया जा सकता है। कालांतर में इसके लिए अनेक प्रयास भी किए गए हैं।

ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल में तो बालक एवं बालिकाओं दोनों को ही समान रूप से शिक्षा दी जाती थी। बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। शिक्षा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध थी। 18वीं सदी तक सभी वर्ण/वर्ग के व्यक्तियों को शिक्षा दिए जाने के प्रमाण मिलते हैं परंतु बुद्धकाल के बाद शिक्षा को संरचनाबद्ध एवं संहिताबद्ध किया गया। जिससे धीरे–धीरे स्त्री के लिए शिक्षा को अनावश्यक समझा गया। इसके पीछे समाज में फैली रूढ़िवादी सोच ही जिम्मेदार है। आधुनिक शिक्षा के विकास में अंग्रेजों का योगदान है, भले ही यह भारत को अपने एक उपनिवेश के रूप में स्थापित करने की रणनीति के तहत था। इसके लिए उन्होंने शिक्षा–संस्कृति को सबसे सशक्त आधार माना। धीरे–धीरे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा हो गया। नौकरी के लिए अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा अनिवार्य थी।

कालांतर में शिक्षा व्यवस्था समाज के हाथों से निकलकर राज्य के हाथों में और बाद में राज्य के हाथों से निकल कर बाजार के हाथों में हस्तांतरित हो गई। क्योंकि पुस्तकों का निर्माण मातृभाषा के स्थान पर अंग्रेजी में किया जाने लगा था। ऐसे में महिलाओं की शिक्षा पर किसी का ध्यान ही नहीं गया। लड़कियों को यदि शिक्षा दी भी जाती थी तो बुनियादी शिक्षा घर पर ही प्रदान की जाती थी। 1898 में महिलाओं के लिए पहला कन्या विद्यालय स्थापित किया गया। इसके बाद धीरे–धीरे उनके लिए स्कूलों तथा कॉलेजों की स्थापना हुई एवं महिलाओं का नामांकन बढ़ने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आई विभिन्न कमेटी एवं कमीशनों ने अपनी रिपोर्ट में स्त्री शिक्षा को

टिप्पणी

महत्वपूर्ण बताया। स्त्री शिक्षा के विकास के लिए सरकारों द्वारा विभिन्न कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में भी महिला शिक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए जा रहे हैं, परंतु इतना सब होने के बावजूद भी पुरुष साक्षरता दर (82. 14) की तुलना में स्त्री साक्षरता दर (65.46) है जो कि काफी कम है। इस भेदभाव का यदि सूक्ष्म अवलोकन किया जाए तो हमें विदित होगा कि आज भी महिलाओं को भेदभाव, पूर्वाग्रह एवं असमानता का सामना करना पड़ता है।

भारत में महिला शिक्षा की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक काल में भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर शिक्षा के अवसर उपलब्ध थे। मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा, अनुसूया आदि विख्यात नामों के अलावा अनेक अज्ञात विदुषियों ने वैदिक साहित्य में अमूल्य योगदान दिया है।

औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में महिलाओं का प्रवेश 19वीं सदी के मध्य से ही माना जाता है, परंतु इसको व्यापक स्वीकृति 20वीं सदी के मध्य में ही मिली। उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक महिला एवं पुरुष साक्षरता की दर में काफी अंतर था। महिला साक्षरता दर पुरुषों की तुलना में काफी कम थी। उस समय पुरुष साक्षरता दर बंगाल में छह प्रतिशत थी और दक्कन में बीस प्रतिशत थी। इसका अर्थ यह है कि महिला शिक्षा दर इससे भी काफी कम है। उस समय तीन प्रकार के स्कूल थे– पहला गांव के छोटे स्कूल, जो मुख्य रूप से पढ़ने–लिखने और लेखा–जोखा करने की शिक्षा देते थे, दूसरा स्कूल हिंदुओं और मुख्यतः ब्राह्मणों के लिए था जो संस्कृत, व्याकरण, शब्द विज्ञान एवं साहित्य की शिक्षा देते थे। तीसरा स्कूल मुसलमानों के लिए था जहां अरबी और फारसी भाषा सिखायी जाती थी। उस समय लड़कियां बहुत ही कम स्कूलों में जाती थीं। उनको शिक्षा अनौपचारिक तथा अधिकांशतः व्यावहारिक रूप से ही दी जाती थी। वे घर के काम–काज के अतिरिक्त, सिलाई–कढ़ाई, संगीत कला आदि की शिक्षा लेती थीं। सम्मानित कहे जाने वाले परिवारों की लड़कियां धार्मिक रचनाएं, शास्त्रीय एवं देशीय साहित्य का अध्ययन करती थीं और अमीर घर की लड़कियों को हिसाब–किताब रखने की शिक्षा दी जाती थी। धीरे–धीरे महिलाओं को शिक्षित किए जाने के प्रयास किए जाने लगे।

महिलाओं के लिए शिक्षा की वैधता को स्वीकारना इस बात पर बल देता है कि शिक्षा द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है। भारत में स्त्री शिक्षा को सर्वप्रथम समाज सुधारकों एवं मिशनरियों ने प्रोत्साहित किया था। परंतु स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को सामाजिक मान्यता मिलने के साथ–साथ स्त्री शिक्षा की प्रकृति बहस का मुद्दा बन गई। इस बहस की जड़ में स्त्री–पुरुष के परिभाषित रूढ़िवादी कार्यक्षेत्र रहे हैं। मिशनरी और समाज सुधारक स्त्री को गृहिणी, मां की भूमिका में अधिक दक्ष बनाने के लिए शिक्षित करना चाहते थे,उनके विकास के लिए नहीं। 1820 में पहला कन्या विद्यालय ईसाई धर्म अपनाने वाले परिवारों की लड़कियों के लिए खोला गया था परंतु स्त्री शिक्षा को उतना प्रोत्साहन नहीं मिला जितना मिलना चाहिए था। 1854 में वुड्स डिसपैच में लार्ड डलहौजी ने भी सुझाया कि लोगों के नैतिक स्तर सुधारने में पुरुष शिक्षा से अधिक स्त्री शिक्षा सहायक होगी। इस प्रकार स्त्री शिक्षा समाज सुधार माध्यम मानी गई,न कि देश में स्त्री की स्वयं की स्थिति में सुधार लाने की आवश्यक शर्त। स्त्री शिक्षा की इस सामाजिक उपयोगिता के बावजूद इस क्षेत्र में उतनी प्रगति नहीं हो पा रही थी। 1880 में आए शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया कि भारत में स्त्री शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि भारतीय स्त्री की रोजगार में स्थिति न के बराबर थी इसलिए उनको शिक्षित करके क्या लाभ? स्त्री शिक्षा न होने

की अन्य वजह थी पर्दा प्रथा एवं उनका बाल–विवाह होना। समाज में प्रचलित पर्दा प्रथा के कारण कोई भी अपनी लड़की को स्कूल नहीं भेजना चाहता था। साथ ही बाल विवाह के लिए भी लड़की का पर्दे में रहना ही अच्छा माना जाता था। यदि कोई लड़की स्कूल जाती भी थी तो भी विवाह होते ही उसकी पढ़ाई छुड़वा दी जाती थी। लड़कियों के लिए अलग से स्कूलों का अभाव था। चूंकि स्त्री शिक्षा कम थी इसलिए शिक्षिकाएं भी कम थीं। लड़कियों की शिक्षा का स्तर भी बहुत कम था। शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्त्री शिक्षा की पिछड़ी स्थिति को रेखांकित किया और ये सुझाव दिया कि स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए धन आबंटित करना होगा। इसके लिए स्थानीय, म्युनिसिपल एवं प्रांतीय अपना योगदान दे। 1913 के सरकारी प्रस्ताव में भी स्त्री शिक्षा के साथ–साथ व्यावहारिक शिक्षण कार्यक्रम को भी बढ़ावा देने की बात कही गई। नीचे दी गई तालिका भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा की स्थिति को दर्शाती है।

टिप्पणी

Education of Girls and Women in Pre-Independance Period

Year		Enrolment of girls in				
	Percentage of literacy for women	Primary Schools	Secondary Schools Universities	Colleges &	Other Institutions	Total
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1881-82	0.2	124,291	2,054	6	515	127,066
1901-02	0.7	344,712	9,075	256	2370	365,413
1921-22	1.8	1186,224	26,163	905	10,836	1224,128
1946-47	6.0	3475,165	602,280*	23,207	56,090	4156,742
No. of girls enrolled per 100 boys		36 middle schools 14 for secondary schools	22 for general education 7 for vocational education	12 for	12	30

*This includes 3,21,508 girls enrolled in middle schools. The enrolment in secondary schools proper is thus only 2,80,772.

Source : Min. of Edu. Government of India.

(साभारः 'समानता की ओर' रिपोर्ट 1975 से)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी महिलाओं की भूमिका को लेकर स्थिति द्वंद्वात्मक है। महिलाओं को शिक्षा प्रदान की जाए इस बात पर तो सभी एकमत होते हैं परंतु उनकी शिक्षा का स्वरूप क्या हो? इस पर अलग–अलग राय मिलती है। 1950 में भारत का संविधान पेश हुआ जिसमें शिक्षा पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कई प्रावधान थे। अनुच्छेद 45 में शिक्षा की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी राज्य को सौंपी गई। संविधान लागू होने के 10 वर्षों के भीतर 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करना होगा। (यह अलग बात है कि इस अधिनियम को लाने में लगभग 58 वर्ष लग गए) अनुच्छेद 15 ने लिंग, जाति, वर्ग, स्थान आदि के आधार पर भेदभाव को वर्जित किया और अनुच्छेद 15(3) ने राज्य को महिलाओं एवं बच्चों के

कल्याण और विकास के लिए विशेष प्रावधान निर्मित करने का अधिकार दिया। इस प्रावधान ने विभिन्न स्तरों पर लड़कियों की शिक्षा को सुविधाजनक बनाने के लिए विशेष व्यवस्था का समर्थन किया।

टिप्पणी

स्वतन्त्रता के पश्चात डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन (आयोग) की स्थापना की गई। इस आयोग ने महिलाओं की शिक्षा और उसके विविध आयामों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। इस कमीशन में सभी पुरुष सदस्य होने के बावजूद महिलाओं की भूमिका के संदर्भ में, जो विचार पहले थे, उसमें थोड़ा बहुत सुधार हुआ। आयोग के इस कथन से यही प्रतीत होता है– "आयोग यह विश्वास करता है कि एक सुव्यवस्थित परिवार, सुव्यवस्थित पुरुष को बनाने में मदद करता है। माता जो पारिवारिक सदस्यों की निगरानी करती, उनके प्रति सचेत रहती,साहित्य और इतिहास जैसे विषयों के साथ अतरंग होती और उनकी पूरी जानकारी रखती एवं जो अपने बच्चे और परिवार के लिए ही जीवित रहती व काम करती, ऐसी महिला संसार में चरित्र और बुद्धिमानी दोनों में ही, श्रेष्ठ शिक्षक हो सकती है।"

1949 में इस तरह के विचार महिला के पत्नी एवं मां की भूमिका के स्थायित्व को इंगित करते हैं। हालांकि उस समय वास्तविकता तेजी से बदल रही थी और परिवार में असमान लैंगिक संबंधों की व्यापकता पर भी ध्यान नहीं दिया गया। यहां पर भी द्वंद्वात्मक स्थिति थी। समान उद्देश्य के तहत स्त्री एवं पुरुष की शिक्षा के लिए समान पाठ्यक्रम स्वीकार करें या परिवार निर्माण, जो कि महिलाओं की प्राथमिकता माना जाता है, उसके लिए उन्हें विशेष कौशल सिखाने की आवश्यकता है। आयोग ने यह उल्लेख किया कि शिक्षित स्त्री के बिना शिक्षित समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसलिए महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षा के अवसर प्रदान करने चाहिए। परंतु आयोग यह भी कहता है कि शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य अगली पीढ़ी को परम्पराओं का हस्तांतरण करना है इसलिए आयोग स्त्रियों को उनके स्वभाव के अनुसार ही शिक्षा प्रदान करने पर जोर देता है। इस प्रकार ये द्वंद्वात्मक स्थिति है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिए शिक्षा के उद्देश्य को सामान्य रखा और ये कहा गया कि स्त्रियों की शिक्षा, पुरुषों के ही समान होनी चाहिए। परंतु इसमें यह भी कहा गया कि 'जिस मार्ग से महिला शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त किया जाएगा वह अत्यावश्यक रूप से भिन्न होगा।'

1952–53 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने स्त्री शिक्षा के लिए किसी अलग अध्याय का निर्माण नहीं किया। इसके अनुसार स्त्री शिक्षा पर अलग से जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस आयोग के अनुसार स्त्री एवं पुरुष को एक समान शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। इसके लिए बालिका विद्यालय खोलने का प्रावधान भी रखा गया। उस समय तक स्त्रियां इंजीनियरिंग, कृषि विज्ञान, पशुपालन विज्ञान, वाणिज्य, कानून, समाजशास्त्र, कला और भौतिक विज्ञान आदि विषयों में अध्ययन, अध्यापन एवं शोध कार्य कर रही थीं। लेकिन आयोग ने यह भी कहा कि इन सब विषयों के अध्ययन के अलावा लड़कियों को गृह–विज्ञान भी अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें स्त्री के रोजगार पर अधिक फोकस नहीं किया गया। उनको शिक्षा के माध्यम से घर के कार्यों में दक्षता प्राप्त करने पर जोर दिया गया।

टिप्पणी

इस प्रकार स्त्री शिक्षा पर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा था जितना कि दिया जाना चाहिए था। 1957 में शिक्षा मंत्रियों की कॉन्फ्रेंस में स्त्री शिक्षा के प्रश्न पर अध्ययन एवं उसके विस्तार के लिए एक विशेष समिति के गठन का प्रस्ताव रखा गया। इस प्रकार स्त्री शिक्षा समिति का गठन, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में हुआ। यह समिति स्त्री शिक्षा के लिए बेहद महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इसका गठन स्त्री शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिए ही हुआ था। समिति ने अपने अध्ययन के बाद ये सुझाव दिया कि स्त्री शिक्षा की वर्तमान स्थिति को देखते हुए अगले कई वर्षों तक स्त्री शिक्षा के प्रश्न को और बड़ा मुद्दा मानने की जरूरत है। स्त्री एवं पुरुष शिक्षा के बीच काफी असमानता है। इस असमानता को जल्दी से जल्दी कम करने की जरूरत है। स्त्री शिक्षा के लिए अलग से धन खर्च किया जाए। केंद्र एवं राज्य दोनों ही सरकारों को स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय निकाय एवं स्वयंसेवी संगठनों को भी साथ में लिया जाए। इस समिति ने महिला शिक्षा के धीमे विकास को पहचाना और अपना ध्यान महिला उच्च शिक्षा से हटाकर उनकी विद्यालयी शिक्षा पर केन्द्रित किया। इस समिति ने मुख्यतः लड़के एवं लड़कियों की शिक्षा को बराबर करने के लिए बहुत से सुझाव दिए।

स्त्री शिक्षा की बहस में एक मुख्य मुद्दा उनका पाठ्यक्रम रहा है। इस प्रश्न से अभी तक की हर समिति जूझती रही और द्वंद्व का सामना करती रही। इसी प्रश्न का जवाब खोजने के लिए 1962 में हंसा मेहता समिति का गठन किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य लड़के एवं लड़कियों के पाठ्यक्रम में विभिन्नता पर विचार करके उसका हल खोजना था। इस समिति ने स्त्री शिक्षा में हुए अब तक के विकास की समीक्षा की और बीते 150 वर्षों के दौरान सहशिक्षा के बारे में सरकार की नीतियों और जनता की मनोवृत्तियों के बारे में जानने का प्रयत्न किया। इस समीक्षा के बाद समिति ने अपनी रिपोर्ट में शिक्षा में लैंगिक असमानता का विरोध किया। समिति का मानना था कि लड़के एवं लड़कियों की शिक्षा में अंतर हमारे समाज की परंपरागत मानसिकता को दर्शाता है। इस परंपरागत मानसिकता के कारण ही लड़कियों को लड़कों की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक रूप से कम आंका जाता है। उनको लड़कों की अपेक्षा कम योग्य माना जाता है। इसी मानसिकता से ग्रस्त होकर लड़कियों के लिए निर्धारित विषय की मांग की जाती है जिससे पुरुषों एवं महिलाओं के बीच भूमिकाओं और कार्य के बंटवारे की रूढ़िबद्धता को बल मिलता है। इस समिति ने प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर सह–शिक्षा की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त समिति ने लड़के एवं लड़की दोनों के लिए ही समान पाठ्यक्रम की मांग की। यदि गृह–विज्ञान हो, तो दोनों के लिए ही उपलब्ध हो या व्यावसायिक पाठ्यक्रम हो तो वह भी दोनों के लिए हो।

इस प्रकार हंसा मेहता समिति ने पहली बार स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए समानता की बात कही। स्त्री शिक्षा के लिए अगली महत्वपूर्ण कड़ी था कोठारी आयोग (1964–66) जो वास्तव में सम्पूर्ण भारतीय शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण था। इस आयोग ने समाजवादी, लोकतान्त्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष समाज की नींव रखने के लिए राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया में शिक्षा की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है। इस समिति ने हंसा मेहता एवं दुर्गाबाई देशमुख समितियों का समर्थन किया और उनकी सभी सिफारिशों को लागू करने का प्रावधान रखा। इस आयोग के अनुसार "आधुनिक संसार में

टिप्पणी

महिलाओं की भूमिका परिवार से और बच्चों के पालन–पोषण से दूर होती जा रही है। अब महिला अपने जीवन के लिए कैरियर का चयन कर रही है और अपने दृष्टिकोण से समाज के विकास के लिए पुरुषों के साथ जिम्मेदारियों का बंटवारा कर रही है।" हालांकि इस आयोग की रिपोर्ट में शिक्षा के लगभग सभी आयामों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है परंतु इसमें स्त्री शिक्षा पर उतना ध्यान नहीं दिया गया। कोई अलग से अध्याय स्त्री शिक्षा पर नहीं बनाया गया। महिलाओं की उच्च शिक्षा को विस्तारित करने के लिए दो महत्वपूर्ण सुझाव दिए– स्त्री शिक्षा के लिए वित्तीय सहयोग का प्रावधान और लड़कियों के लिए छात्रावास। हालांकि कई जगह आयोग की उदारवादी स्थिति का पता चलता है। एक उदाहरण देखिए– "लड़कियों को उनकी पसंद का विषय लेने से रोकना या फिर विशेष पाठ्यक्रम पढ़ने के लिए उन्हें बाध्य करना गलत है। ज्यादा विद्वतापूर्ण लड़कियां अपनी जीविका–वृत्ति (कैरियर) के लक्ष्य के रूप में विश्वविद्यालय या कॉलेज एसटीआर पर शोध और शिक्षण कार्य करना चाहती हैं या फिर मेडिकल या प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जाना चाहती हैं। ऐसी स्थिति में लड़कियों को उनके लक्ष्य में सहायक सभी अवसर और प्रोत्साहन देना चाहिए।"

इस आयोग के बाद भारत की प्रथम शिक्षा नीति का निर्माण (1968) किया गया। इसमें कोठारी समिति द्वारा दी गई सिफ़ारिशों का समर्थन किया गया और बालिका शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित किया गया। लड़कियों के लिए व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं की कमी को देखते हुए उनके लिए आई.टी.आई. एवं पोलिटैक्नीक खोलने की सिफ़ारिश की गई। इसके अतिरिक्त वयस्क लड़कियों के लिए संक्षिप्त कोर्स चलाने एवं इनको करने वाली नवयुवतियों के लिए रोजगार का प्रबंध करने का भी सुझाव इस शिक्षा नीति में दिया गया।

यहां तक भारत में स्त्री शिक्षा को लेकर कुछ खास प्रतिबद्धताएं नजर नहीं आतीं। सिर्फ नीतियों में ही चिंता नजर आती हैं पर वास्तविक स्थिति कुछ खास नहीं थी। स्त्री जीवन के हर पहलू को समझने के लिए समाज कल्याण और शिक्षा मंत्रालय के प्रस्ताव पर 1971 में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने भारतीय महिलाओं की स्थिति का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया और कुछ चौंकाने वाले खुलासे किए। इस समिति द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट का नाम 'समानता की ओर रखा गया'। इस रिपोर्ट ने महिलाओं एवं पुरुषों के बीच विद्यमान अनेक चौंकाने वाली असमानताओं को इंगित किया। रिपोर्ट ने बच्चों एवं वयस्कों के लिंग अनुपात के आंकड़ों को प्रस्तुत किया। इन आंकड़ों ने महिलाओं और पुरुषों के मध्य मृत्युदर में महत्वपूर्ण अंतर की ओर इशारा किया। महिलाओं के विकास एवं सशक्तीकरण के संदर्भ में यह रिपोर्ट सरकारी नीतियों को प्रभावित करने वाली थी। खासकर स्त्री शिक्षा के बारे में इस रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई थी। उस समय स्कूल जाने वाली लड़कियों का अनुपात लड़कों की तुलना में काफी कम था। नीचे 1967 में माध्यमिक विद्यालय में नामांकित लड़के एवं लड़कियों का प्रतिशत देखिए, आपको अंदाजा हो जाएगा कि विभिन्न शिक्षा नीतियों एवं आयोगों द्वारा की गई सिफारिशों का कितना प्रभाव पड़ा।

Area	Boys	Girls	Total
Rural	83.42	16.58	100.00
Urban	71.31	28.69	100.00
Total	76.64	23.36	100.00

(Source : second All-India Educational Survey-National Council of Educational Research and Training, 1967 p-62.)

टिप्पणी

तालिका से स्पष्ट है कि स्त्री शिक्षा की स्थिति बहुत ही ज्यादा खराब थी। इसके बहुत सारे कारण थे जैसे– विद्यालय उपलब्ध न होना, विद्यालय का दूर होना, लड़कियों का अपने छोटे भाई–बहनों को संभालना, गरीबी इत्यादि। स्त्री शिक्षा में सुधार लाने एवं इसको विस्तारित करने के लिए इस समिति ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव दिए–

- कक्षा 10 तक लड़के एवं लड़कियों के लिए समान पाठ्यक्रम रखा जाए।
- प्राथमिक स्तर पर कला, संगीत एवं नृत्य की शिक्षा लड़का एवं लड़की दोनों को ही दी जाए।
- कक्षा 11 एवं 12 से लड़कियों को अपनी रुचि के अनुसार व्यावसायिक एवं तकनीकी कार्यक्रम चुनने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
- विश्वविद्यालयी स्तर पर अधिक उपयोगी पाठ्यक्रम सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- हर स्थान पर कम से कम एक प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की जाए जो हर बच्चे के घर से पैदल की दूरी पर हो।
- दूर–दराज के इलाकों में पढ़ने वाले बच्चों के लिए मोबाइल स्कूल की सुविधा मुहैया करवाई जानी चाहिए।
- लड़कियों के स्कूल बीच में ही छोड़ देने की समस्या पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है इसके लिए बच्चों को विद्यालय की ओर से कुछ प्रलोभन दिए जाएं।
- प्राथमिक स्तर पर कम से कम 50 प्रतिशत शिक्षिकाएं महिलाएं ही होनी चाहिए।
- विद्यालयों में कम से कम 2 अध्यापकों को रखने का प्रयास किया जाए। अभी भी बहुत सी जगह एक ही अध्यापक पूरे विद्यालय को पढ़ाता एवं देखरेख करता है।
- जो लड़कियां स्कूल में नहीं आ सकतीं उनके लिए पार्ट–टाइम विद्यालय की सुविधा का प्रबंध किया जाए।
- माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।
- माध्यमिक स्तर तक सभी लड़कियों को मुफ्त शिक्षा दी जाए।
- रोजगार–उन्मुख पाठ्यक्रम को शिक्षा में शामिल किया जाए।
- लड़कियों के लिए विद्यालयों में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं की सुविधा को बढ़ाया जाए।

टिप्पणी

इस प्रकार के बहुत सारे अन्य सुझाव भी इस समिति ने स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए दिए। यह सुझाव कितने माने गए, कितने नहीं यह तो कहना मुश्किल है परंतु इन सुझावों की वजह से महिला शिक्षा चर्चा का विषय अवश्य बनी और आगे आने वाली नीतियों ने इस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

1986 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' की घोषणा हुई। इसमें शिक्षा को स्त्री समानता से जोड़ दिया गया। इस नीति ने महिला सशक्तीकरण के लिए शिक्षा व्यवस्था को महत्वपूर्ण बताया। इस नीति में उल्लेख किया गया है कि "शिक्षा को महिलाओं की परिस्थिति में आधारभूत परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में प्रयोग होना चाहिए। अतीत में महिलाओं से संबंधित मिथ्यावर्णन को सरकारी आदेश द्वारा निष्प्रभावी कर देने की स्थिति, महिलाओं के पक्ष में विचारों को तीव्र करेगी। महिलाओं के सशक्तीकरण में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था सकारात्मक और हस्तक्षेप की भूमिका निभा सकता है। यह कार्य विश्वास और सामाजिक अभियांत्रिकी का होगा।" (पैरा 4.3)

इस नीति में महिलाओं का शिक्षा के माध्यम से सशक्तीकरण करने के अलावा उनके साथ हो रहे भेदभाव को भी दूर करने का सुझाव दिया गया– "महिलाओं के निरक्षरता के निराकरण और प्रारम्भिक शिक्षा के उनके मार्ग में किसी भी विरोध और बाधा को, विशेष सहायता सेवाओं, समय निर्धारण की व्यवस्था और प्रभावशाली निरीक्षण द्वारा कुचल दिया जाएगा। अविभेदीकरण की नीति, व्यावसायिक पाठ्यक्रम में महिलाओं से संबंधित रूढ़िवादी विचारों को दूर करने एवं गैर–परंपरागत व्यवसायों जैसे कि विद्यमान और आवश्यक प्रौद्योगिकी में, महिला सहभागिता को प्रेरित करने में प्रभावशाली ढंग से काम करेगी।" (पैरा 4.3)

वास्तव में हमें महिला शिक्षा के मार्ग में लैंगिक समानता को स्वीकार करने में अनिश्चित, अनिच्छुक और सीमित समर्थन का सामना करना पड़ा। सरकार ने अपनी नीतियों के उद्देश्यों एवं वचनबद्धता से महिलाओं को समाज में समान भागीदार बनाया। इसके बाद 1987–88 में नेशनल कमीशन ऑन सेल्फ–इंप्लायड वीमेन एंड वीमेन इन इनफारमल सैक्टर की रिपोर्ट 'श्रमशक्ति' में सुझाया गया कि बालिका विद्यालयों का समय उनकी घरेलू जिम्मेदारियों के अनुकूल हों। गरीब बच्चियां स्कूल जा सकें इसके लिए एक महिला कार्यकर्ता की नियुक्ति की जाए जो इन बच्चियों को घर से स्कूल तक लाए और वापस ले जाए। शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए मुफ्त यूनिफ़ार्म, किताबें एवं कापियां, दिन का भोजन आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

इन समितियों का स्त्री शिक्षा पर प्रभाव बहुत धीरे–धीरे हो रहा था। दि नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फार वीमेन्स एजुकेशन (1988–2001) में 6–14 साल की बच्चियों में अशिक्षा समाप्त करने, प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए स्कूल बीच में छोड़ने वालों की संख्या में कमी लाना, माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षण का प्रावधान, शिक्षा को स्त्री समानता का लक्ष्य पाने का साधन बनाना, अनौपचारिक तथा आंशिक शिक्षण प्रशिक्षण का प्रावधान, प्रोफेशनल डिग्री कार्यक्रमों में स्त्रियों के प्रवेश को प्रोत्साहन तथा प्राथमिक विद्यालय स्तर पर स्त्री शिक्षा में कमी के लिए जिम्मेदारी तय की जाने के लक्ष्य थे। इसमें आदिवासी समाजों के अनुकूल शिक्षण कार्यक्रमों को ढालने का सुझाव था। स्कूल न जा पाने वाली लड़कियों के लिए अनौपचारिक कार्यक्रम चलाने का भी सुझाव है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की लड़कियों के लिए ओपन स्कूल व्यवस्था

का सुझाव भी दिया गया। ग्रामीण लड़कियों को उच्च शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रोफेशनल शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देने का भी सुझाव था। आरंभ में 30 प्रतिशत सीट इन लड़कियों के लिए आरक्षित करने का सुझाव दिया गया। पार्ट–टाइम और पत्राचार शिक्षण की व्यवस्था पर भी जोर दिया गया। ताकि एक बार पढ़ाई छूटने के बाद फिर से लड़कियां अपनी पढ़ाई जारी कर सकें। इंटीग्रेटेड लर्निंग प्रोग्राम का सुझाव दिया गया। इस कार्यक्रम में साक्षरता के साथ–साथ जागरूकता लाने, रोजगार के लिए आवश्यक दक्षता सिखाने, पोषण, स्वास्थ्य तथा कानूनी मामलों में अवगत कराने के कार्यक्रम भी शामिल करना आवश्यक बताया।

टिप्पणी

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 में लैंगिकता के मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है। एनसीएफ़ 2005 विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों के साथ लैंगिक दृष्टिकोण को शामिल करने की सिफारिश करता है। इसके साथ ही यह विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं विद्यालय में कार्य करने वाले अन्य लोगों में लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ाने की सिफारिश करता है। इसके लिए पाठ्यपुस्तकों एवं शिक्षणशास्त्र को भी लैंगिक दृष्टिकोण से परिवर्तित करने की आवश्यकता है। एनसीएफ़ 2005 के अनुसार पहली कक्षा में दाखिला लेने वाली कुल लड़कियों में से कक्षा 12, केवल 1 प्रतिशत लड़कियां ही पास कर पाती हैं। लड़कियों के इतने अधिक स्कूल छोड़ने के बहुत सारे कारण हैं। इनमें महंगी शिक्षा, मूलभूत आवश्यकताओं की कमी, लड़कियों की शिक्षा के प्रति लोगों का दृष्टिकोण आदि जैसे बहुत से कारक जिम्मेदार हैं।

2008 में लड़कियों के लिए "इनसेंटिव टु गर्ल्स फॉर सेकेण्डरी एडुकेशन" प्रारम्भ की गई। यह योजना मुख्यतः 14 वर्ष से 18 वर्ष तक की लड़कियों के लिए थी जो कम से कम 8वीं कक्षा पास है। इस योजना की मुख्य बातें हैं–

- यह योजना 8वीं कक्षा पास करने वाली सभी अनुसूचित जाति/जनजाति की लड़कियों के लिए है।
- कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय से 8वीं कक्षा पास करने वाली सभी लड़कियों को इस योजना का लाभ प्राप्त होगा। यहां पर जाति को महत्वपूर्ण नहीं माना जाएगा। परंतु उनको अपना 9वीं कक्षा में नामांकन अवश्य करवाना होगा।
- 9वीं कक्षा में नामांकन के लिए लड़कियों की आयु 16 वर्ष से कम होनी चाहिए।
- इस योजना में प्राइवेट विद्यालयों में पढ़ी लड़कियों को शामिल नहीं किया जाएगा।
- इस योजना के तहत 3000 लड़कियों के खाते में रूपए जमा करवाए जाएंगे जिसको वह 10वीं कक्षा पास करने के बाद या 18 वर्ष की आयु होने पर ही निकाल सकती हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा पर गठित सभी आयोग, चाहे उनकी अध्यक्षता पुरुषों द्वारा या महिलाओं द्वारा की गई हो, परंतु वे सभी के सभी महिलाओं की समानता, राष्ट्रीय विकास में उनकी सहभागिता और महिला शिक्षा के क्षेत्र और प्रतिमान के बीच संबंध जोड़ने में असफल रहे। शैक्षिक प्रक्रिया के प्रतिकूल पक्ष का सामाजिक मूल्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है, लिंग की रचना एवं किस प्रकार महिला समानता एक मूल्य है और किस प्रकार ये शैक्षिक प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं, इस पर कोई विचार नहीं किया गया।

टिप्पणी

लड़कियों की शिक्षा : असमानताएं एवं प्रतिरोध

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जहां पुरुषों की साक्षरता दर 82.1 प्रतिशत है तो वहीं महिला साक्षरता दर 65.5 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखंड आदि राज्यों में यह 55 प्रतिशत से भी कम है। महिला साक्षरता के आंकड़ों में राजस्थान सबसे पिछड़ा हुआ राज्य है जहां केवल 52.7 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं। इस परिस्थिति से यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता के लगभग 73 वर्षों बाद भी हम महिला शिक्षा में काफी पिछड़े हुए हैं और इसके लिए हमें विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में हमें निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा–

- नामांकन, उपस्थिति एवं शिक्षा पूर्ण करने के मामले में शहरों एवं गावों का अंतर पुरुष–महिला के अंतर से अधिक है।
- पिछड़े–अगड़े इलाकों के अथवा क्षेत्रीय अंतर लैंगिक एवं सामाजिक समूहों के अंतर की तुलना में कहीं अधिक हैं।
- अत्यंत गरीब परिवारों (गरीबी रेखा से नीचे) एवं उच्चतम तबके के बीच विषमता लैंगिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय अंतरों की अपेक्षा बहुत अधिक है।
- सामाजिक समूहों विशेषकर जनजातीय समुदायों, मुसलमानों एवं अनुसूचित जातियों के विशेष उपसमूहों और अगड़ी जातियों/ईसाइयों एवं अन्य धर्मों के बीच बहुत अधिक अंतर है।
- समुदायों के बीच अंतर अक्सर समुदायों के भीतर व्याप्त अंतरों जितने गंभीर हैं। उदाहरण के लिए कुछ जनजातियों में साक्षरता का स्तर अन्य से बेहतर है और कुछ दलित समूहों में यह स्तर अन्य दलित समूहों से बेहतर है।

इन सभी बिन्दुओं से एक बात स्पष्ट है कि असमानता के कई कारण हो सकते हैं। सिर्फ 'असमानता है' ये पता लगाना काफी नहीं है बल्कि इन असमानताओं के कारणों को समझना भी आवश्यक है। नीचे अलग–अलग स्तर पर छात्रों के नामांकन की एक तालिका दी गई है–

Table: Level Wise Enrolement (In lakh)

Level/Year	Primary (1-5)			Upper Primary (6-8)			Secondary (9-10)		
	Boys	Girls	Total	Boys	Girls	Total	Boys	Girls	Total
2013-14	686	638	1324	341	323	664	197	176	373
2014-15	676	629	1305	345	327	672	201	182	383
2015-16	669	622	1291	347	329	676	205	186	391

(Source : Ministry of Human Resource Development, Government of India/National Institute of Educational Planning & Administration, New Delhi)

इस तालिका का अध्ययन एवं विश्लेषण करेंगे तो बहुत सारे तथ्य हमारे सामने आएंगे। सबसे पहला तथ्य यह है कि लड़कियों का नामांकन, हर स्तर पर हर वर्ष लड़कों के नामांकन की तुलना में काफी कम है जो कि शिक्षा में लैंगिक असमानता का सूचक है। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य ये है कि विभिन्न स्तरों पर यदि लड़कियों के नामांकन

को देखें तो तो स्तर बढ़ने के साथ–साथ नामांकन घट रहा है। 2015–16 के आंकड़े देखिए जहां प्राथमिक स्तर पर 622 लाख लड़कियां नामांकित हैं वहीं उच्च–प्राथमिक स्तर पर ये 329 लाख और माध्यमिक स्तर पर ये 186 लाख हैं। हर स्तर पर लड़कियों के नामांकन में कमी क्यों आ रही है यह एक विचारणीय प्रश्न है।

शिक्षा में मौजूद इस लैंगिक अंतराल के कई संभावित कारण हो सकते हैं जैसे–

टिप्पणी

- **विद्यालयों का न होना/दूर होना** : वैसे तो लड़के एवं लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर मिलने चाहिए परंतु भारत के बहुत से क्षेत्रों में विद्यालय की सुविधा आस–पास नहीं है। विद्यालय दूर होने से परिवार वाले लड़कों को तो दूर स्कूल भेज देते हैं परंतु लड़कियां शिक्षा से वंचित हो जाती हैं। कई बार विद्यालय होता है पर माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सह–शिक्षा होने के कारण बहुत से लोग रूढ़िवादी विचारों के कारण अपनी लड़कियों को विद्यालय भेजना पसंद नहीं करते। ऐसे में लड़कियों का नामांकन कम होना स्वाभाविक ही है।

  भारत के अधिकतर ग्रामीण इलाकों में आठवीं कक्षा तक के स्कूल हैं। ऐसे में आठवीं कक्षा से आगे पढ़ने के लिए विद्यार्थियों को अक्सर कई किलोमीटर दूर पैदल चल कर या अन्य साधनों के द्वारा स्कूल जाना पड़ता है। ऐसे में अधिकांशतः लड़कियों की शिक्षा सिर्फ आठवीं कक्षा तक ही सीमित रह जाती है और उनको घर एवं खेतों में हाथ बंटाने के लिए कहा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत ही कम लड़कियों को अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिल पाता है। अच्छी शिक्षा के अभाव में वे बेबस एवं दूसरों पर निर्भर होकर अपना जीवन व्यतीत करती हैं।

  रेनु, उत्तर प्रदेश के हाथरस जिले की सादाबाद तहसील के एक छोटे से गांव में रहने वाली लड़की है। उसके गांव के बाहर एक स्कूल है जिसमें आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई वह पूरी कर चुकी है। वह पढ़ने में होशियार है और आठवीं कक्षा में उसने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। अब आगे की पढ़ाई के लिए उसको गांव से कई किलोमीटर दूर के स्कूल में जाना पड़ेगा। उसके माता–पिता का कहना है कि यदि गांव के आस–पास ही कोई स्कूल होता तो वह अपनी बेटी को आगे पढ़ने के लिए जरूर भेज देते परंतु गांव से कई किलोमीटर दूर वह अपनी बेटी को नहीं भेज सकते, कहीं कोई ऊंच–नीच हो गई तो? रेनु अब घर के कामों में अपनी मां की मदद करती है और अपने छोटे भाई–बहनों की पढ़ाई में सहायता करती है।

  रेनु जैसी बहुत सारी लड़कियां हैं जो विद्यालय के अभाव में या विद्यालय दूर होने से, मन होने के बावजूद भी शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

- **विषयों की अनुपलब्धता** : कई बार विद्यालयों में ऐसे विषय उपलब्ध नहीं होते जो बच्चे पढ़ना चाहते हैं। ऐसे में लड़कों के लिए स्कूल बदलना बहुत आसान हो जाता है परंतु लड़कियों के लिए प्रायः ये संभव नहीं होता। ऐसे में अरुचिकर शिक्षा ग्रहण करने से कहीं ज्यादा आसान विद्यालय का त्याग करना होता है। विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले विषय अक्सर विद्यार्थियों को अरुचिकर लग सकते हैं, ऐसे में उनका स्कूल में मन नहीं लगेगा और स्कूल का त्याग करने का एक बहाना मिल जाता है।

टिप्पणी

कोमल ने दसवीं कक्षा अच्छे नंबरों से पास की। उसके परिवार वालों के कहने पर उसने पॉलीटेक्निक के एक कोर्स में दाखिला ले लिया। पहले वर्ष की परीक्षा में उसके कुछ खास नंबर नहीं आए। दूसरे वर्ष की परीक्षा के एक पेपर में वह फेल हो गई। उसके परिवार वालों को हैरानी हुई कि पढ़ने में इतनी होशियार कोमल के इतने कम अंक क्यों आ रहे हैं। एक दिन उसने अपनी ट्यूशन टीचर के पूछने पर उनको बताया कि उसकी रुचि चित्रकारी में है। वह तो इस कोर्स में दाखिला लेना ही नहीं चाहती थी परंतु उसने परिवार वालों के दबाव में यह किया। उसकी ट्यूशन टीचर ने उसके पापा से बात की और उसके बाद कोमल ने बैचलर ऑफ फ़ाइन आर्ट्स में दाखिला लिया। आज कोमल एक विज्ञापन कंपनी में अच्छे पद पर कार्यरत है।

- **विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं का न होना** : भारत के विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं की बहुत कमी है जिसके कारण भी लड़कियों को स्कूल छोड़ना पड़ता है। बहुत से विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं जैसे पीने का पानी, शौचालय आदि का अभाव होता है। शौचालय के अभाव में ज्यादातर लड़कियां स्कूल छोड़ देती हैं क्योंकि वे माहवारी के दिनों में स्कूल नहीं आ पातीं। ऐसे में लड़के और लड़कियों के बीच शिक्षा का भेद और गहराता जाता है।

  छठी कक्षा में पढ़ने वाली रिंकी के पापा रिंकी के बिना स्कूल आए हैं और कक्षाध्यापक से बात करने आए हैं। रिंकी दिल्ली के एक सरकारी सह–शिक्षा विद्यालय में पढ़ती है। उनके स्कूल में काफी विद्यार्थी हैं जबकि कमरे कम। इसलिए स्कूल के पीछे के तरफ कुछ अस्थायी टीन की छत वाले कमरों का निर्माण किया गया और उसके लिए एक कोने में शौचालयों का निर्माण किया गया। ये शौचालय कमरों को पार करने के बाद भी काफी अलग से हिस्से में पड़ते हैं। एक दिन रिंकी छुट्टी के बाद शौचालय गई तो किसी ने शरारत करते हुए बाहर से दरवाजा बंद कर दिया। चूंकि छुट्टी हो चुकी थी तो स्कूल खाली हो चुका था। रिंकी की सहेलियों को लगा कि वह निकल गई है। रिंकी कई घंटे वहीं बंद रही। कुछ घंटे बाद एक कर्मचारी में उसके चिल्लाने की आवाज सुनी तब उसने दरवाजा खोला। रिंकी के पापा स्कूल में एक बार देख कर जा चुके थे, परंतु विद्यालय के एक अलग हिस्से में शौचालय में रिंकी के होने को वह सोच ही नहीं पाए। रिंकी 3–4 दिन तक स्कूल नहीं गई। वह अब उस स्कूल में पढ़ना नहीं चाहती।

- **लड़कियों का अपने छोटे भाई–बहनों को संभालना** : भारत में अधिकांश गरीब घरों में मां–बाप दोनों ही काम पर चले जाते हैं, ऐसे में लड़कियां घर में काम करने के साथ–साथ अपने से छोटे भाई–बहनों को संभालती हैं। अधिकतर काम करने वाली जगह के आस–पास कोई आंगनवाड़ी भी नहीं होती जहां छोटे बच्चों को छोड़ा जा सके। ऐसे में ये जिम्मेदारी लड़कियों पर ही आती है। लड़कों से इस प्रकार की भूमिका निभाने की कोई उम्मीद नहीं रखी जाती इसलिए लड़कों की तुलना में लड़कियों को घर पर रहना पड़ता है और शिक्षा का त्याग करना पड़ता है।

  यू. पी. के संभल जिले के गांव की एक सहायक अध्यापिका यह बताती हैं कि उनके स्कूल में लड़कियां, लड़कों की तुलना में काफी कम आती हैं। पूछने पर

उन्होंने कारण बताया कि अधिकांश लड़कियां खेतों में काम करती हैं या फिर अपने छोटे भाई–बहनों को संभालती हैं। यदि मां–बाप को बुलाकर बात की जाए तो वह कहते हैं कि अब रोज पढ़ने भेजेंगे, परंतु 1–2 दिन के बाद फिर से लड़कियां स्कूल आना बंद कर देती हैं। यदि मां–बाप दोनों ही मजदूरी करते हैं तो उनके काम पर जाने के बाद लड़कियां ही पूरे घर की देखभाल करती हैं। बस पुस्तकें मिलने वाले दिन और यूनिफॉर्म के लिए पैसे मिलने वाले दिन सब बच्चे आते हैं। लड़के तो मिड–डे–मील के लिए फिर भी आ जाते हैं परंतु लड़कियां नहीं आती हैं।

टिप्पणी

- **शीघ्र विवाह** : भारत में विवाह एक सामाजिक व्यवस्था है। यहां अन्य किसी भी चीज से ज्यादा जरूरी है विवाह। विशेषतः लड़कियों का विवाह करने की जल्दी में उनकी पढ़ाई छुड़वा दी जाती है। लड़कियों के लिए घर के काम–काज सीखना जरूरी माना जाता है जो वे घर में सीख लेती हैं। विवाह के पश्चात पढ़ना या न पढ़ना लड़की के ससुराल वालों एवं उसके पति पर निर्भर करता है। जबकि लड़कों के लिए ऐसी कोई शर्त या बंदिश नहीं होती। इसलिए लड़के एवं लड़कियों की शिक्षा में गहरी असमानता नजर आती है।

  सीमा दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में आठवीं कक्षा की मॉनिटर है। वह पढ़ने में अच्छी है। कुछ दिनों से सीमा कक्षा में उदास रहने लगी। कक्षाध्यापिका द्वारा कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि उसकी शादी तय हो गई है और उसको अब ये भी नहीं पता कि वह आठवीं कक्षा के फाइनल पेपर दे भी पाएगी या नहीं। उसकी कक्षाध्यापिका ने इस विषय पर उसके परिवार वालों से बात करनी चाही परंतु उसके परिवार वालों ने साफ कह दिया कि ये उनके घर का मामला है। वह जब चाहे जहां चाहे अपनी लड़की की शादी कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि सीमा की शादी अच्छे घर में तय की है। वह वहां बहुत सुखी रहेगी।

- **गरीबी** : गरीबी शिक्षा को बहुत प्रभावित करती है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 21.92 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं। इतनी बड़ी संख्या में गरीबी, शिक्षा को भी बड़े स्तर पर ही प्रभावित करेगी। जिन लोगों के लिए दो वक़्त का खाना जुटाना भी जीवन संघर्ष है उनके लिए शिक्षा की बात करना बेमानी है। और इसमें भी सबसे अधिक प्रभाव लड़कियों की शिक्षा पर ही पड़ता है। यदि पैसे न हो और परिवार केवल किसी एक बच्चे को ही शिक्षा दे सकता हो तो लड़के को पढ़ाना ही उस परिवार की प्राथमिकता होगी। यह हमारे समाज में फैले लैंगिक भेदभाव को दर्शाता है और साथ ही रूढ़िबद्धता भी कि लड़का पढ़–लिख कर कमाकर मां–बाप का सहारा बनेगा जबकि लड़की तो पराये घर चली जाएगी।

  काजल और शुभम भाई–बहन हैं। काजल बड़ी है और शुभम छोटा है। दोनों अपने पिता के साथ दिल्ली के एक किराए के मकान में रहते हैं। उनकी मां का कुछ वर्ष पहले देहांत हो गया था। घर के कामों का बोझ भी काजल पर ही अधिक है। मां के देहांत के बाद वह खाना बनाने का, घर की सफाई, बर्तन साफ करना आदि कार्य भी करती है। घर की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। काजल को सरकारी स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा जाता है। वह पढ़ने में होशियार है जबकि शुभम को एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा जाता है।

टिप्पणी

वह पढ़ने में ज्यादा अच्छा नहीं है। उसके लिए ट्यूशन की व्यवस्था भी की गई है। घर की आमदनी कम है। काजल को भी ट्यूशन की आवश्यकता है परंतु वह जानती है कि उसकी पढ़ाई पर इतना खर्च नहीं किया जाएगा।

- **यौन शोषण** : लड़कियों के स्कूल छोड़ने का एक बड़ा कारण उनके साथ स्कूल में या स्कूल से जाते/आते हुए होने वाली विभिन्न घटनाएं– छेड़छाड़, यौन शोषण, बलात्कार, एसिड अटैक आदि होती हैं। स्कूल आते और जाते हुए कई बार लड़कियों पर फब्तियां कसी जाती हैं और लड़कियां कुछ बोल नहीं पातीं। वे इस डर से घर में भी नहीं बता पातीं कि बताने पर लड़की की ही गलती निकाल कर उनका स्कूल जाना बन्द करवा दिया जाएगा। इतना ही नहीं कई बार वे बलात्कार एवं एसिड अटैक जैसे घिनौने अपराध का शिकार बन जाती हैं। कई बार स्कूल का वातावरण भी सुरक्षित नहीं होता। अध्यापक या अन्य कोई स्कूल का कर्मचारी लड़कियों का यौन शोषण करते हैं, उन्हें गलत तरह से छूते हैं। ऐसे में डर की वजह से लड़कियां स्कूल छोड़ देती हैं और शैक्षिक असमानता बढ़ती जाती है।

  दिल्ली के एक नामी पब्लिक स्कूल की छात्रा ने एक अध्यापक द्वारा यौन शोषण किए जाने पर परेशान होकर खुदखुशी कर ली। विद्यालय के प्रिन्सिपल ने इस बात को मानने से इंकार कर दिया कि उनके स्कूल के किसी अध्यापक ने ऐसा किया है। परंतु छात्रा के पिता ने इस बात पर पूरी शिक्षा व्यवस्था एवं बच्चों की सुरक्षा पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए न्याय की मांग की।

- **कन्या भ्रूण हत्या** : भारत में लिंग अनुपात प्रति 1000 बालकों पर 919 बालिकाओं का है अर्थात 1000 लड़कों की तुलना में सिर्फ 919 लड़कियां हैं। यह आंकड़ा 0–6 वर्ष के बीच के बच्चों का है। दरअसल भारत में कन्या भ्रूण हत्या एक गंभीर समस्या है। परंपरागत रूढ़िवादी सोच के चलते यहां लड़कियों को पैदा होने से पहले ही कोख में मरवा दिया जाता है। जब लड़कों की तुलना में लड़कियां कम होंगी तो इसका प्रभाव शिक्षा में भी नजर आएगा।

  रचना के दो बेटियां हैं। वह बी.ए पास है। उसके पति की अच्छी नौकरी है। रचना को प्रारम्भ से ही एक बेटे की चाह रही है। दूसरी बेटी के जन्म पर वह उदास हो गई थी परंतु मां की ममता अपने बच्चे से कब तक रूठती। तीसरी बार रचना ने गर्भ की जांच करवाई तो लड़की थी। उसने अबॉरशन करवा लिया। फिर एक बार वह गर्भवती हुई और जांच में लड़की निकली, उसने फिर एक बार अबॉरशन करवा लिया। हालांकि उसके पति की इस पर सहमति नहीं थी परंतु उसको एक और लड़की नहीं चाहिए थी। फिर गर्भवती हुई तो जांच में लड़का निकला, तब जाकर उसको चैन की सांस आई। अब वह खुश थी और कुछ समय बाद उसने एक बेटे को जन्म दिया। अब वह अपने तीनों बच्चों के साथ बहुत खुश है। उसको इस बात का कोई अफसोस नहीं कि उसने दो बेटियों को गर्भ में ही मार डाला।

- **धर्म एवं जातिगत कारण** : भारत जैसे देश में जहां विभिन्न वर्ग, धर्म एवं जाति के लोग रहते हैं वहां पर धर्म एवं जाति का प्रभाव भी शिक्षा पर पड़ता है। यदि धर्म की बात करें तो मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा की दर सबसे कम है।

टिप्पणी

जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव के कारण भी कई बार लड़कियों की शिक्षा अधूरी रह जाती है।

मरियम प्राइवेट कॉलेज से बी.ए. कर रही है। प्रत्येक रविवार को उसकी कक्षाएं लगती हैं और वह एक कॉलेज में कक्षाएं लेने जाती है। वह बुर्का पहन कर कॉलेज जाती है। 2–3 कक्षाओं के बाद उसने जाना बंद कर दिया। कक्षा में लड़कियां उससे बुर्के के बारे में तरह–तरह की बातें करती थीं। उसके साथ बात तो सब कर लेते थे परंतु उसको कोई अपनी दोस्त नहीं बनाता था। ऐसे में अकेलेपन से परेशान होकर उसने कॉलेज न जाने का फैसला किया।

ये सब लड़कियों की शिक्षा में आने वाली वे बाधाएं हैं जिनको जल्द–से–जल्द दूर किए जाने की आवश्यकता है। विमला रामचंद्रन (2016) इस संदर्भ में कहती हैं कि "शिक्षा में लैंगिक अंतराल की समस्या का समाधान करना आसान नहीं है। असमानता की परतों एवं जाति तथा समुदाय आधारित लामबंदी की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए नामांकन एवं बदलाव के मानक सूचकों से परे जाने एवं स्कूलों में बच्चों के अनुभव को गहराई से देखने की आवश्यकता है।" इस मुद्दे को और अच्छे से समझने के लिए नीचे 2014–15 में विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों का औसत प्रतिशत दिया गया है।

Table : Average Annual Drop-Out Rate in School Education: 2014-15

Level	All			SC			ST		
	Boys	Girls	Total	Boys	Girls	Total	Boys	Girls	Total
Primary	4.36	3.88	4.13	4.71	4.20	4.46	7.02	6.84	6.93
Upper-Primary	3.49	4.60	4.03	5.00	6.03	5.51	8.48	8.71	8.59
Secondary	17.21	16.88	17.06	19.64	19.05	19.36	24.94	24.40	24.68

(Source : National Institute of Educational Planning & Administration, New Delhi)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बढ़ते स्तर के साथ–साथ लड़कियों की विद्यालय छोड़ने की दर में वृद्धि हो रही है वहीं SC एवं ST विद्यार्थियों में विद्यालय छोड़ने की दर काफी अधिक है। माध्यमिक स्तर पर विद्यालय छोड़ने की दर सबसे अधिक है, इनमें भी एसटी विद्यार्थियों की विद्यालय छोड़ने की दर सबसे अधिक है जो यह साफ दर्शाता है कि शिक्षा पर आर्थिक, सामाजिक कारणों के साथ–साथ भौगोलिक कारणों का भी असर पड़ता है।

Table: Literacy Rates: 2014

Age	Literacy Rate (%)								
	Rural			Urban			Rural & Urban		
	Male	Female	Total	Male	Female	Total	Male	Female	Total
Age 5 and above	80.3	62.4	71.4	91	80.9	86.1	83.6	68.1	76
Age 7 and above	79.8	61.3	70.8	91.1	80.8	85.9	83.2	67.1	75.4
Age 15 and above	75	53.1	64.1	89.7	77.9	84	79.8	60.8	70.5
All age (0 and above)	72.3	56.8	64.7	83.7	74.8	79.5	75.7	62	69.1

Data Source% National Sample Survey Office.

टिप्पणी

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि ग्रामीण साक्षरता दर, शहरी साक्षरता दर की तुलना में काफी कम है। और इसमें भी ग्रामीण स्त्री साक्षरता दर की ओर देखिए जो न केवल शहरी स्त्री साक्षरता दर की तुलना में काफी कम है बल्कि ग्रामीण पुरुषों की तुलना में भी काफी कम है। यहां पर ये बात भी गौर करने वाली है कि ग्रामीण स्त्री एवं पुरुष साक्षरता दर का अंतर,शहरी स्त्री एवं पुरुष साक्षरता दर के अंतर से काफी अधिक है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्री शिक्षा में सबसे अधिक असमानता ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है अर्थात क्षेत्रीयता भी शिक्षा के आंकड़ों को प्रभावित करती है। इसका मुख्य कारण वहां विद्यालय एवं विद्यालय में आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। शिक्षा में असमानता का एक बड़ा पहलू लड़कियों का विद्यालय छोड़ना है। विद्यालय छोड़ने के बहुत से कारण हो सकते हैं। नेशनल सेंपल सर्वे 2018 में लड़के एवं लड़कियों के विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारणों एवं संभावित कारणों की एक सूची नीचे दी गई है–

Table : Drop-out Reseaons (2018)

क्र.सं.	विद्यालय छोड़ने के प्रमुख कारण	प्रतिशत	
		पुरुष	स्त्री
1.	शिक्षा में मन न लगना	23.80	15.60
2.	आर्थिक विपन्नता	23.70	15.20
3.	घरेलू कार्यों में लिप्तता	4.80	29.70
4.	धनोपार्जन में लिप्तता	31.00	4.90
5.	विद्यालय का दूर होना	0.5	3.40
6.	पढ़ाई से समन्वयन न बिठा पाना	5.4	4.60
7.	इच्छित उपलब्धि	5.70	6.50
8.	विवाह	13.90	
9.	अन्य कारण	5.1	6.20

(Source : National Sample Survey Office)

अन्य कारण

शिक्षण संस्थानों की समय सारणी व सुविधाजनक न होना, शिक्षण में प्रयुक्त भाषा या माध्यम का परिचय न होना, शिक्षकों का अभाव, कुशल शिक्षकों का अभाव, विद्यालय का प्रतिकूल परिवेश, लड़कियों के विद्यालय छोड़ने के अन्य कारण में महिला शिक्षकों की अनुपलब्धता व शौचालयों की अनुपलब्धता भी है।

प्रस्तुत तालिका में लड़के एवं लड़कियों के विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारण एवं उन कारणों से कितने प्रतिशत लड़के एवं लड़कियों ने विद्यालय छोड़ा, इसका विवरण दिया गया है। यदि हम इसको स्त्री शिक्षा के संदर्भ में देखें तो लड़कियों के स्कूल छोड़ने का मुख्य कारण घरेलू कार्य में भागीदारी है। लगभग 29.70 प्रतिशत लड़कियां घरेलू कार्यों के बोझ के कारण अक्सर स्कूल नहीं आ पातीं और अंततः स्कूल छोड़ देती हैं। सबसे अधिक 31 प्रतिशत लड़के आर्थिक कारणों से स्कूल छोड़ देते हैं क्योंकि उनके ऊपर घर संभालने की जिम्मेदारी और पैसा कमाने का बोझ होता है।

टिप्पणी

यहां हम लैंगिक भूमिकाओं के आधार पर असमानताओं को देख सकते हैं। सबसे अधिक लड़कियां घरेलू कार्यों के कारण जबकि सबसे अधिक लड़के आर्थिक कारणों से स्कूल छोड़ देते हैं। यह साफ दर्शाता है कि हमारे समाज में लड़के एवं लड़कियों की लैंगिक भूमिकाएं बिलकुल अलग–अलग हैं। इसके अलावा शादी होना भी लड़कियों के स्कूल छोड़ने का बड़ा कारण है जबकि लड़कों के लिए ये आंकड़े अनुपलब्ध हैं। दरअसल भारत में प्रचलित रूढ़ियों, दकियानूसी सोच एवं सामाजिक दबाव के चलते लड़कियों की शादी जल्दी कर दी जाती है जिसके कारण वे अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख पातीं। बहुत सी लड़कियां शादी के बाद भी पढ़ने का प्रयास करती हैं परंतु घरेलू कार्यों के दवाब के कारण उनको स्कूल छोड़ना पड़ता है। इसके अतिरिक्त लड़कियों के स्कूल छोड़ने के कारणों में शामिल हैं– पढ़ाई में रुचि न होना, आर्थिक समस्या, आर्थिक कार्यों में लगे होने के कारण, स्कूल दूर होने के कारण, पढ़ाई के साथ ताल–मेल न बना पाने के कारण, अपनी इच्छित कक्षा पूरी कर लेने के बाद एवं अन्य कई कारण। इनमें से बहुत से कारण सामाजिक रूप से प्रभावित हैं, जैसे जब हम कहते हैं कि पढ़ाई में रुचि न होने के कारण लड़कियां स्कूल छोड़ रही हैं तो हमको ये भी जानने एवं समझने का प्रयास करना होगा कि लड़कियों की पढ़ाई में रुचि क्यों नहीं है? वे कौन से कारण हैं जो लड़कियों का ध्यान एवं रुचि पढ़ाई करने में जाग्रत नहीं होने देते?

इसका जवाब लड़कियों का लैंगिक समाजीकरण है। लड़कियों की परवरिश करते हुए बचपन से उनके मन में यही बात डाली जाती है कि घर के काम सीखो, आगे जाके वही काम आएगा। लड़कियां बचपन से ही अपनी मां के साथ घर के कार्यों में उनका हाथ बंटाती हैं जिसके कारण वे प्रायः थकी हुई भी रहती हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री कृष्ण कुमार (2014) कहते हैं कि "जिस तरह पिता या भाई खाना खाकर घर से निकल पड़ते हैं, बहनें नहीं निकल सकतीं। वे खाने के बाद बर्तनों को ठीक से रखने अथवा उन्हें साफ करने के काम में भागीदार होती हैं। शहरी मध्यमवर्ग के परिवारों में बर्तन मांजने का काम जिस महरी को सौंप दिया जाता है, वह भी प्रायः बालिका या अपनी मां के साथ मदद कर रही बालिका होती है। जिन घरों में महरी नहीं आती,वहां पत्नी और बेटी ही महरी होती हैं। अतः स्कूल पहुंचकर कक्षा में बैठी लड़की यदि उसी कक्षा में बैठे लड़के की अपेक्षा थकी हुई हो तो हमें इस फर्क से चौंकना नहीं चाहिए। यह भी संभव है कि उन्होंने एक–सा नाश्ता या खाना न खाया हो।" इस प्रकार इतने दवाब में पढ़ाई करती लड़कियों की संभवतः पढ़ाई में रुचि न भी रहे।

अन्य कई कारणों में शामिल हैं– समय का माकूल न होना, भाषा का माध्यम मातृभाषा से अलग होना, अध्यापकों की संख्या कम होना, अध्यापकों की गुणवत्ता कम होना, वातावरण अच्छा न होना, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करना। इसके अतिरिक्त लड़कियों के लिए स्कूल छोड़ने के दो अन्य कारण भी हैं– महिला अध्यापकों का न होना, स्कूल में महिला शौचालयों का न होना।

स्कूल का समय बच्चों के लिए बहुत मायने रखता है। इसलिए स्कूल का समय स्थान विशेष के हिसाब से होना चाहिए। उदाहरण के लिए पहाड़ी इलाकों में जहां बर्फबारी होती है वहां पर सर्दियों में स्कूल बंद रखे जा सकते हैं और गर्मियों में

टिप्पणी

खोले जा सकते हैं। भाषा का माध्यम भी यदि विद्यार्थियों के अनूकूल न हो तो बच्चों में पढ़ने के लिए कोई रुचि नहीं रह जाती। अधिकतर आदिवासी क्षेत्रों में ये समस्या बहुत होती है। शिक्षा के माध्यम की भाषा उनको समझ नहीं आती और वे स्कूल छोड़ देते हैं। इसके अलावा हमारे समाज की संकुचित मानसिकता के कारण कई लोग लड़कियों को सिर्फ लड़कियों के स्कूल में ही भेजना चाहते हैं और ये भी चाहते हैं कि उनकी लड़कियों को केवल महिला अध्यापक ही पढ़ाए। ऐसे में यदि ऐसा नहीं होता तो लड़कियों की पढ़ाई छुड़वा दी जाती है। लड़कियों के विद्यालय छोड़ने में एक बहुत ही गंभीर समस्या स्कूलों में महिला शौचालय का न होना है। वैसे तो ये एक आधारभूत सुविधा है जो हर स्कूल में होनी चाहिए परंतु भारत में आज भी ऐसे स्कूल हैं जहां पर लड़कियों के लिए शौचालयों की सुविधा उपलब्ध नहीं है। स्कूल एजुकेशन क्वालिटी इंडेक्स (SEQI) के अनुसार 2016–17 में लगभग 95 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए शौचालय की सुविधा उपलब्ध है। इनमें आसाम और मेघालय में सबसे कम 83.4 और 84.1 प्रतिशत स्कूलों में ये सुविधा है। जहां ये सुविधा नहीं है वहां के बारे में सोच कर देखिए कि लड़कियां कैसे पूरा दिन स्कूल में बिताती होंगी और माहवारी के दिनों में क्या वे स्कूल आती होंगी?

2.2.3 लड़कों और लड़कियों के लिए सह विद्यालय : समस्याएं एवं समाधान

अधिकांश लोगों का मानना है कि लिंग के बारे में बच्चे की धारणा और इसकी पहचान विकसित करने में परिवार सबसे प्रभावशाली कारक है। हालांकि, सहपाठी एक और महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि यह उसके परिवार के बाद बच्चे की सामाजिक दुनिया का एक हिस्सा बन जाता है। शब्द "सहपाठी" दो या दो से अधिक व्यक्तियों और परिवर्तनों के बीच बातचीत का संदर्भ देता है जो पारस्परिक विचार–विमर्श के कारण होता है। मनोवैज्ञानिक, रॉय बॉयमेस्टे और मार्क लेरी ने निष्कर्ष निकाला है कि व्यक्तियों को एक–दूसरे के साथ संबद्ध करने की मूल आवश्यकता है। बच्चों के साथ–साथ वयस्कों में, इस इच्छा से संगति और सहकर्मी समूहों का निर्माण होता है। सामाजिक पहचान सिद्धांत के अनुसार, पीयर ग्रुप स्वयं–मूल्यांकन को जन्म देती है और व्यक्ति अपनी सदस्यता बनाए रखने के लिए समूह के मानकों का पालन करने के लिए उत्सुक है।

सहपाठी निर्माण प्रीस्कूल में शुरू होता है, जब बच्चे स्वाभाविक रूप से लैंगिकता का प्रदर्शन शुरू कर देते हैं और उनकी पसंद, पात्रों और गतिविधियों को जन्म देते हैं। मार्टिन एट अल के अनुसार (2013), लिंग के आधार पर बच्चों को प्रायोजित गतिविधियों में प्रमुख प्रतिनिधियों के रूप में माना जा सकता है। इसके अलावा, सहकर्मी समूह की उपलब्धि को परिभाषित करने पर जोरदार प्रभाव होता है और लिंग भूमिकाओं के अनुकूल होने की आवश्यकता को स्वीकार किया जाता है।

यह पाया गया है कि अपने शुरुआती वर्षों में भी बच्चे खेलने के समूह बनाने और एक ही लिंग समूह में अधिकतर गतिविधियां करते हैं। यहां तक कि युवा बच्चों के समूहों ने नियम तय किए हैं। लड़कियां ज्यादातर गुलाबी और लाल रंग के कपड़े पहनती हैं जबकि ज्यादातर लड़कों ने काले और नीले रंग के कपड़े पहने हैं। लड़कियां ज्यादातर इनडोर गेम खेलती हैं, जिसमें एक घर का दृश्य होता है और ज्यादातर लड़के बाहर और मैदानी खेल खेलते हैं। लड़कियां गुड़िया पसंद करती हैं और लड़के

कारों और ट्रकों में रुचि रखते हैं। लड़के हमेशा यह मानते हैं कि लड़कियां खेल में अच्छी नहीं होती हैं, और इसलिए उन्हें अपने खेल में शामिल न करें। उन्हें लगता है कि लड़कियां खेल को धीमा कर देती हैं क्योंकि वे तेजी से चलने में सक्षम नहीं हैं। इस प्रकार, हम यह कह सकते हैं कि प्राथमिक विद्यालय के चरण में लिंग विभेद शुरू होता है। लड़कियां अपने समूह में खेलती हैं, और खेल के प्रति अधिक इच्छुक हैं, जैसे हॉप्सकोच और चीयरलीडर्स का आनंद लेना। लड़के बास्केटबॉल या किकबॉल खेलते है। जिन समूह में बच्चों का संबंध है उनके ड्रेसिंग, संगीत की पसंद, टेलीविजन शो और यहां तक कि कभी–कभी उनकी साइकिल का मॉडल भी उनसे सम्बन्धित होता है।

टिप्पणी

उच्च विद्यालय और महाविद्यालय में लैंगिक अलगाव जारी है। यह देखा गया है कि विद्यालय में छात्रों को उचित विकल्प बनाने के लिए मजबूर करते हैं। सहकर्मी समूह तय करता है कि कौन सी गतिविधियां एक विशेष समूह के लिए उपयुक्त हैं। फुटबॉल, बास्केटबॉल, सॉकर जैसे आक्रामक खेल, ज्यादातर लड़कों द्वारा चुने गए थे। लड़कियों ने तैराकी एवं अधिकतर इनडोर खेलों को चुना। स्कूलों में विभिन्न क्लबों की सदस्यता लिंग प्राथमिकताओं से प्रभावित होती है, उदाहरण के लिए, मॉडलिंग, फैशन या पुस्तकों से संबंधित क्लब लड़कियों को पसंद करते हैं, जबकि मुक्केबाजी, कार रेसिंग और क्रिकेट लड़कों को आकर्षित करती है। जिन विद्यार्थियों ने विपरीत लिंग के क्लबों में शामिल होने का प्रयास किया, वे अकसर उपहास का पात्र बना दिए जाते हैं या परेशान किए जाते हैं।

सहपाठी के बीच छात्र की स्थिति की पहचान करने वाले कारक

दोस्तों के बीच प्रसिद्ध और लोकप्रिय होने की कोशिश की जाती है। लोकप्रियता दूसरों की प्रशंसा और पसंद करने की कुंजी है। लड़कों और लड़कियों के बीच प्रसिद्ध और लोकप्रिय होने के लिए मानदंड भिन्न होता है। दोनों लिंगों के साथ संचार करने के मजबूत सामाजिक कौशल होने के बाद लड़के लोकप्रिय हो जाते हैं, वे खेल में अच्छे हैं और मर्दों की छवि पेश करते हैं। लड़कियों को उनके शारीरिक स्वरूप, शिक्षा के क्षेत्र में प्रदर्शन और कभी–कभी अपने माता–पिता की वित्तीय स्थिति के कारण लोकप्रियता प्राप्त होती है। वास्तव में, कभी–कभी केवल सहपाठी समूह में स्वीकार किए जाने के लिए ही स्थापित मानदंडों को अर्हता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। कुछ अवसरों पर शिक्षक की राय का भी उनकी लोकप्रियता पर असर पड़ता है।

साथियों के बीच ड्रेस अप का रास्ता लिंग रूपों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुरुष और महिलाएं ड्रेसिंग के बारे में जागरूकता और सकारात्मक चीजों के बारे में विचार रखने के लिए महत्वपूर्ण है, जो किसी व्यक्ति की लिंग पहचान को उजागर करती है। विशिष्ट रंगों के कपड़े और कपड़े की शैली लड़कों और लड़कियों के लिए सार्वभौमिक है। किसी व्यक्ति के कपड़े लैंगिक स्पष्टता का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। निर्धारित मानकों के अनुसार ड्रेसिंग समकक्षों द्वारा मान्यता प्राप्त और स्वीकार किए जाने के लिए महत्वपूर्ण है। अगर छात्रों को निर्धारित लिंग मानकों के अनुसार नहीं पहनाया जाता है तो उन्हें सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं दी जाती है।

शारीरिक बनावट एक अन्य कारक है जो छात्रों की स्थिति को प्रभावित करता है। शारीरिक बनावट अकसर सौंदर्य मानकों के लिए महत्वपूर्ण मानदंड होता है।

साथियों द्वारा शारीरिक बनावट के बारे में टिप्पणियां कभी–कभी आत्मविश्वास को कमजोर कर सकती हैं और हीनभावना पैदा कर सकती हैं। लड़कियों और लड़कों दोनों को शारीरिक बनावट के बारे में टिप्पणी मिलती है, और अधिक वजन वाले व्यक्ति के लिए बहुत अधिक तनाव हो सकता है।

टिप्पणी

लिंग के मानकों को किसी की जाति और जाति के आधार पर भी देखा जाता है। साथियों के बीच लोकप्रियता पर त्वचा के रंग का प्रभाव पड़ता है। कभी–कभी ऐसा लिंग असमान व्यक्ति को सामाजिक अलगाव की ओर ले जाता है और स्कूल में नस्लवाद फैलाने का एक मजबूत साधन हो सकता है।

सहकर्मी समूह में स्वीकृति के लिए लिंग के अनुसार व्यवहार करने की आवश्यकता महत्वपूर्ण है। 1996 में डिशियन, स्प्रेक्लेन, एंड्रयूज और पैटरसन द्वारा किए गए एक अध्ययन के मुताबिक यह पाया गया कि अपमानित मित्रों ने खुश होने के कारण विनियमन के खिलाफ जाने का जवाब दिया। गैर–अपमानित मित्रों में, दूसरी तरफ, नियम–टूटने पर प्रतिक्रिया करने की कम प्रवृत्ति थी, लेकिन सकारात्मक विचार–विमर्श के प्रति सकारात्मक तरीके से प्रतिक्रिया व्यक्त की। जो बच्चे लैंगिक रूढ़िवादी व्यवहार में व्यवहार नहीं करते हैं उन्हें अकसर बहिष्कार के रूप में माना जाता है। उदाहरण के लिए, एक किशोर लड़की को युवा लड़कों में दिलचस्पी रखना पड़ता है, और यदि वह रुचि नहीं दिखाती तो उसे अपने साथियों द्वारा असामान्य माना जाता है। जो बच्चे स्कूल आते हैं और केवल अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करते हैं तथा उन पर अध्यापकों द्वारा अनुग्रह प्राप्त किया जाता है, अकसर उनके साथियों द्वारा पसंद नहीं होता है। यदि कोई लड़की खेल और गतिविधियों में अधिक रुचि दिखाती है जो कि लड़कों द्वारा अनुग्रहित होती हैं, तो उसे अकसर "टॉम्बॉय" कहा जाता है और अन्य लड़कियों द्वारा उपहास किया जाता है।

यह आसानी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सहपाठियों का लैंगिक पहचान बनाने में एक मजबूत प्रभाव है। यह प्रीस्कूल से चरण के रूप में शुरू होता है और वयस्कता तक जारी रहता है। वास्तव में हम जैसे–जैसे बड़े होते हैं यह बड़ा हो जाता है। यह प्रभाव व्यक्ति के पूरे जीवन चक्र के दौरान महसूस किया जा सकता है।

यह कथन सही है कि लिंग असमानताओं को चुनौती देने में साथियों की भूमिका भी प्रमुख होती है। यह कहावत तो सुनी ही होगी कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। या फिर सोबत (संगत/कुसंगत) का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता है। तात्पर्य है कि जिन बच्चों के साथ बच्चे रहते हैं उनके संस्कार प्रभाव उनमें येन–केन प्रकारेण आते ही आते हैं। अब यदि लड़कियां पढ़ी–लिखी लड़कियों के साथ रहेंगी तो वे अवश्य ही स्वयं भी पढ़ना लिखना पसंद करेंगी और अपनी सहेलियों से भी इस संबंध में बातें करेंगी। अब यदि वे सहेलियां भी पढ़ी–लिखी हैं और पढ़ाई लिखाई के महत्व को समझती हैं तो निश्चित रूप से वे अपनी अनपढ़ या कम पढ़ी–लिखी सहेलियों को प्रोत्साहित करेंगी, उकसाएंगी। कहते हैं भूखे को खिलाने वाला यदि मिल जाए तो वह तो मन से चटकारे लेकर खाएगा ही। पढ़ना–लिखना भी एक प्रकार की भूख ही होती है।

लड़कियों के लिए आज शिक्षण प्रशिक्षण के अनेकानेक सरकारी गैर–सरकारी संस्थान खुले हुए हैं। लड़कियां तो आज लड़कों से भी आगे प्रत्येक क्षेत्र में निकलती जा रही हैं। कारण, लड़कियों ने लिखाई–पढ़ाई के महत्व को समझना प्रारम्भ कर दिया

है। आज तो स्थिति ये है कि लड़कियां एक दूसरे की देखा–देखी भी गांव, कस्बों से निकलकर अपनी सहेलियों के संग शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए शहरों में जा रही हैं वहां उनके रिश्तेदार नहीं भी हैं और हैं भी, तो भी वे लड़कियों के छात्रावास में जाकर अध्ययन कर रही है। सफल होकर अच्छी–अच्छी नौकरियां प्राप्त कर रही हैं।

टिप्पणी

यदि लड़की को घर के संस्कार और शिक्षा अच्छी मिलती है तो वह कहीं भी अकेली या फिर अपनी सहेली के साथ चली जाए तो उसे तब तक कोई हानि नहीं हो सकती, जब तक कि वह अपने आप में दृढ़ प्रतिज्ञ है। लड़की आज अपनी रक्षा स्वयं करना जान गई है। फिर साथियों की संगत भी विशेष महत्व रखती है। साथियों का सहयोग हो तो लिंग असमानता को करारी चुनौती देने में लड़कियां आगे ही रहती हैं।

लैंगिक असमानता को चुनौती तथा लैंगिक समानता का सुदृढ़ीकरण

स्कूलों में लिंग असमानता एकदम से लड़के–लड़कियों में नहीं आ जाती। बच्चे माता–पिता, परिवार, गली–मुहल्ले, कस्बे, शहर, महानगर से अपनी यात्रा तय करते हुए पाठशाला में प्रवेश लेते हैं अथवा उन्हें प्रवेश दिलाया जाता है। इसमें सर्वप्रथम सरकारी तंत्र प्रयासरत रहता है। फिर परिवार, समाज और वातावरण भी बच्चों को स्कूल में आने के लिए प्रेरित करते हैं। इन तमाम बिन्दुओं का प्रभाव–मानसिक और बौद्धिक स्तर पर बच्चों पर पड़ता है। अलग–अलग भाव लेकर लड़के–लड़कियां स्कूलों में प्रवेश लेते हैं। उन स्थानों के वातावरण के प्रभाव उन पर छाए रहते हैं। इनमें भी लड़कियों को विशेष रूप से स्कूलों में लाया जाता है।

एकदम से लड़कियां जब स्कूल के खुले और अनुशासित वातावरण में कदम रखती हैं तब उन्हें सभी कुछ अजीब–अजीब सा लगता है। अब ऐसे में जब लड़कों या फिर लड़कियों से उनका सामना होता है तब वे यकायक अपने आपको सहज नहीं कर पाती हैं। अब यहां पर स्कूल प्रशासन और कक्षा और कक्षाध्यापक की भूमिका मुखरित हो उठती है। कैसा व्यवहार इन स्थानों पर ये लोग विशेषरूपेण लड़कियों के साथ करते हैं, ये मुद्दा मुख्य उठता है। यहां पर सभी के चरित्र और विवेक की भी मुख्य भूमिका उभरकर सामने आती है।

लड़कियों को स्कूली वातावरण और वहां सम्पर्क में आने वालों के साथ सहज होने में काफी समय लगता है। ऐसे में स्कूलों में लिंग असमानता और उसका प्रभाव देखने में आता है।

सामान्यतया लिंगीय विभेद के निम्नांकित प्रमुख प्रकार होते हैं–

(अ) जातिगत विभेद

(ब) प्रजातीय विभेद

(स) लिंगीय विभेद

(द) भाषायी विभेद

(ध) रंगगत विभेद

(न) सांस्कृतिक विभेद

(च) आर्थिक विभेद

(छ) स्थानगत विभेद।

टिप्पणी

ये सभी विभेद स्कूलों में भी लड़के–लड़कियों को प्रभावित किए रहते हैं। यह मानवता के विरूद्ध है। मनुष्य की एकता में विभेद रोड़ा है। परन्तु लिंगीय विभेद के कारण बालिकाओं को कुछ परिवारों में 'मीन मानसिकता' और रूढ़िवादिता के कारण भ्रूणावस्था में ही नष्ट कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जन्म के बाद भी कन्याओं के साथ भेदभाव किया जाता है। वैसे इस स्थिति में आज सरकारी तंत्र, शिक्षा और सामाजिक जागरूकता के कारण काफी बदलाव आया है। यूनेस्को के अध्ययन के अनुसार, भारत में प्रत्येक वर्ष एक करोड़ तीस लाख कन्या भ्रूणों की हत्या कर दी जाती है। इस आंकड़े से लिंगीय विभेद की स्थिति पर सहज ही विचार किया जा सकता है।

अब लिंगीय विभेद के कारण भी जान लें, जो निम्नवत् हैं–

(1) मान्यताएं तथा परम्पराएं

(2) संकीर्ण विचारधारा

(3) जागरूकता का अभाव

(4) अशिक्षा

(5) सरकारी उदासीनता

(6) सामाजिक कुप्रथाएं

(7) दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली

(8) आर्थिक तंगी

(9) सांस्कृतिक कारक, और

(10) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

सामान्यतया लिंगीय विभेदों को समाप्त करने के निम्नलिखित उपाय हो सकते हैं–

(i) जनशिक्षा का प्रसार

(ii) जागरूकता लाना

(iii) भ्रूण हत्या रोकने पर कठोर दण्ड का प्रावधान

(iv) बालिका शिक्षा का प्रसार

(v) शिक्षा प्रणाली में सुधार

(vi) लड़कियों के लिए अलग से व्यावसायिक विद्यालयों की व्यवस्था

(vii) सामाजिक कुप्रथाओं पर रोक

(viii) सामाजिक परम्पराओं तथा मान्यताओं पर कुठाराघात

(ix) सुरक्षित वातावरण

(x) प्रशासनिक प्रयास, और

(xi) संवैधानिक इलाज

उपरोक्त लिखित उपायों से भी स्कूलों में लिंग असमानता को समाप्त किया जा सकता है। इस प्रकार स्कूलों में लड़के–लड़की के भेद को मिटाकर समानता का वातावरण पैदा किया जा सकता है।

लिंग असमानता को दूर करने के कुछ और भी उपाय हैं, यथा–

- स्कूलों में तब तक लैंगिक असमानता को दूर नहीं किया जा सकता जब तक कि आम जनता में उचित जन शिक्षा का प्रचार प्रसार नहीं हो जाता।
- लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए परिवार, घर और समाज तथा स्कूल में भी जागरूकता लाना आवश्यक है।
- कन्या भ्रूण हत्या एक जघन्य अपराध है, इसे दूर करने के लिए कठोर नियम लागू होने और उनके सख्ती से पालन करने की आवश्यकता है।
- समाज में सरकार और समाज द्वारा बालिका शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर बल देने की भी आवश्यकता है। इसे गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। वैसे सच्चाई ये भी है कि सरकारी स्कूलों में प्रशासन और शिक्षक अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूपेण कर्तव्यनिष्ठ नहीं होते। इसके लिए स्कूल निरीक्षकों को मुस्तैद करने की आवश्यकता है।
- भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार करके भी इस असमानता को स्कूलों से दूर किया जा सकता है। नई शिक्षा प्रणाली को विधिवत लागू करने पर भी बल दिया जाना चाहिए।
- लड़कियों के लिए अलग से व्यावसायिक विद्यालयों की व्यवस्था करके भी इस समस्या से मुक्ति पाई जा सकती है। हमारे पिछड़े समाज में अभी भी कुप्रथाएं प्रचलित हैं। कारण, वहां शिक्षा का अभाव तो है ही, रूढ़िवादिता और प्राचीन परम्पराओं का अंधेरा भी छाया हुआ रहता है। लड़कियों को शिक्षा देने की प्रथा नहीं है। वहां लड़कियां घर को ही संभालने में लगी रहती हैं।
- हमारा देश बहुरंगी संस्कृति प्रधान देश है–पूर्व की और संस्कृति है, तो उत्तर की और है। इसी प्रकार उत्तर की संस्कृति और है तो दक्षिण में लड़के–लड़की में विशेष भेद नहीं माना जाता। फिर भी संस्कृति के अनुसार व्यवहार अवश्य किया जाता है। यहां यह विभेद सामने आ जाता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों की परम्पराएं एवं मान्यताएं भी भिन्न हैं। इन पर सामाजिक कार्यकर्ता अपने प्रभाव से लैंगिक असमानताओं के प्रति लोगों के रूझान में परिवर्तन लाकर स्कूली लैंगिक असमानता को भी कम कर सकते हैं।
- यदि स्कूलों का वातावरण पवित्र होगा तो माता–पिता, अभिभावक कन्याओं को स्कूल भेजने में हिचकेंगे नहीं। इसलिए स्कूलों में अनुशासन के माध्यम से भी लैंगिक असमानता दूर की जा सकती है।
- स्कूलों में लैंगिक असमानता को दूर करने में विद्यालय प्रशासन भी अपना योगदान दे सकते हैं। स्कूलों में अनुशासन, शिष्टाचार और नैतिक शिक्षा के पाठ व्यवहारिक रूप में बच्चों को पढ़ाए जाने चाहिए।
- स्कूलों में लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए सरकारी प्रशासन भी यदा–कदा स्कूलों में आकर वहां की अनुशासन व्यवस्था को चुस्त–दुरूस्त कर सकता है। स्कूल की चारदीवारी में क्या होता है, इसका पता माता–पिता अभिभावक, सामाजिक कार्यकर्ता और सरकारी प्रशासन को भी होना अतिआवश्यक है।

टिप्पणी

इस प्रकार से उपरोक्त लिखित कदम उठाकर भी स्कूलों में लैंगिक असमानता को दूर किया जा सकता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. भारत में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु पहला कन्या विद्यालय कब खोला गया था?

   (क) 1810 (ख) 1820

   (ग) 1854 (घ) 1864

2. स्वतंत्रा के पश्चात किसकी अध्यक्षता में यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन (आयोग) की स्थापना की गई?

   (क) डॉ. राधाकृष्णन (ख) पं. जवाहरलाल नेहरू

   (ग) डॉ. भीमराव अम्बेडकर (घ) इनमें से कोई नहीं

2.3 पाठ्यक्रम में लैंगिक मुद्दे

पाठ्यक्रम के विकास हेतु शिक्षकों के अनुभव व चिंत्य विषय भी सकारात्मक योगदान देते हैं। यद्यपि पाठ्यक्रम रचना में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले शिक्षकों की संख्या बहुत थोड़ी है, जबकि पाठ्यक्रम को लागू करने वालों में शिक्षकों का योगदान शिक्षा प्रक्रिया में बहुत ही महत्वपूर्ण है। शायद यही वजह है कि शिक्षकों को 'पाठ्यक्रम रचनाकार' की बजाय 'पाठ्यक्रम का वाहक' माना जाता है। विद्यालय आधारित पाठ्यक्रम विकास का विचार लोकप्रिय हो रहा है और जैसे–जैसे विकेन्द्रीकरण का विचार विद्यालयों में व्याप्त होगा वैसे–वैसे भविष्य में इस प्रक्रिया में शिक्षकों की भागीदारी बड़े पैमाने पर अपेक्षित होगी। यह तब तक संभव नहीं होगा जब तक शिक्षक इस परिवर्तित भूमिका के लिए वास्तव में सक्षम नहीं बनाए जाते। राष्ट्र के शिक्षकों के अनुभवों पर पाठ्यक्रम निर्माण के समय पूर्ण विश्वास करना चाहिए। सक्षम शिक्षक समुदाय की परिकल्पना ने शिक्षण को पुनर्व्याख्या की ओर प्रवृत्त किया है। इसके अनुसार शिक्षण कार्य अधिक चिंतनशील और विचारशील व्यवसाय के रूप में उभरेगा। शिक्षा के लिए समानता की प्रतिबद्धता पाठ्यक्रम के लिए एक चुनौती है। स्वतंत्र भारत की लगभग हर नीति ने शिक्षा व्यवस्था को इस दृष्टिकोण से बेहतर बनाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) की रिपोर्ट में शिक्षा में ऐसे अवसरों की मांग की जो व्यवहार में सामाजिक न्याय के मनोभाव को परिभाषित कर सकें। इस संदर्भ में कहा गया कि "इस विश्वास से प्रेरित कि सामाजिक उद्देश्य इस बात के लिए संघर्ष करते हैं कि लोकतन्त्र में जीवन सिर्फ अपने लिए ही नहीं है बल्कि यह आह्वान है एक ऐसे कठिन प्रयास का जिसमें सभी के लिए समान अवसर उपलब्ध हों और एक ऐसी लड़ाई जो कि वंचित समूहों के न्याय के लिए लड़ी जाए।"

पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया में चूंकि शिक्षक प्रभावशाली कार्यकर्ता है। इसलिए उपयुक्त और पर्याप्त शिक्षक प्रशिक्षण ज़रूरी है, जो पूर्व–सेवाकालीन और सेवाकालीन दोनों ही कार्यक्रमों पर लागू होगा। सेवाकालीन प्रशिक्षण को तो पाठ्यक्रम विकास

प्रक्रिया का आंतरिक अंग बनना होगा और प्रशिक्षण में अनिवार्य रूप से दोनों तत्त्वों, शिक्षण प्रविधि और मूल्यांकन प्रक्रिया को शामिल करना होगा।

पाठ्यक्रमागत परिवर्तनों के अनुसार पाठ्यक्रमों की रचना और विकास से शिक्षकों को अलग रखने से यदि कोई परिवर्तन की संभावना हुई थी तो वह इस पूरे परिदृश्य में बहुत मामूली किस्म का परिवर्तन होगा। पाठ्यक्रम परिवर्तन के प्रति प्रेरित करेंगे और उनमें पाठ्यक्रम के प्रति 'अपनत्व' पैदा करेंगे जिन्हें कि स्वयं उन्हें ही लागू करके आजमाना है।

टिप्पणी

पाठ्यक्रम विकास की दृष्टि से 1986 व इससे पूर्व की शिक्षा नीतियों में, शैक्षिक अवसरों की समानता की जो बात कही गई है उसका तात्पर्य लैंगिक भेदभाव को कम करने से है। शिक्षा इस भेदभाव को कम करे और अंततः उसे मिटाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

लिंग के आधार पर समानता का अधिकार भारतीय संविधान के अनुसार मौलिक अधिकार है। राज्यों को भी इस प्रकार का अधिकार प्राप्त है कि वे सुविधा वंचित जन–समूहों, जिनमें महिलाएं शामिल हैं, को सकारात्मक और संरक्षणात्मक वरीयता देने के लिए इन समूहों के पक्ष में अपने अधिकारों का उपयोग करें। शिक्षा में जिन बातों पर ज़ोर दिया जा रहा है उनमें परिवर्तन हो रहा है और 'शैक्षिक अवसरों की समानता' से 'महिलाओं की समानता और संबलीकरण की शिक्षा' (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986) पर अब ज़ोर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप पाठ्यक्रमागत और प्रशिक्षणगत कार्यनीतियों में बालिकाओं की शिक्षा पर अब अधिक ध्यान देना होगा। अधिक से अधिक बालिकाओं के लिए अतिरिक्त विद्यालयी पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकों और उन्हें पढ़ाने की प्रक्रिया से सभी प्रकार के लैंगिक भेदभाव और लैंगिक पूर्वाग्रह को मिटाना अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा भारत की श्रेष्ठतम परंपरा के अनुसार स्त्री–पुरुष दोनों की श्रेष्ठतम विशेषताओं को मानना और उसका पोषण करना अत्यंत उपयुक्त होगा। आखिरकार भारत ही एक ऐसा देश है जहां पश्चिमी देशों के विपरीत बिना किसी संघर्ष के स्त्रियों को शीघ्र मताधिकार दे दिया गया। अब तो इस बात की ज़रूरत है कि समान रूप से बालक–बालिकाओं दोनों को ध्यान में रखकर ऐसी प्रभावशाली पाठ्यक्रम–कार्यनीति विकसित और लागू करें जो ऐसे बालक–बालिकाओं की पीढ़ियों का पोषण करे, जो समान रूप से सक्षम हों, एक–दूसरे के प्रति संवेदनशील हो और एक–दूसरे के विरुद्ध न हों। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में लैंगिक भेदभाव को खत्म करने के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान भी किए गए हैं। परंतु जहां तक पाठ्यक्रम में लैंगिक भेदभाव की बात है तो यह प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट हो जाता है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2005) में निम्नलिखित मुद्दों पर फोकस किया जाता है–

1. उन सभी चीजों के लिए कार्य किया जाए जो बच्चों को स्कूल से बहिष्कृत करते हैं ताकि सभी बच्चों का स्कूल में समावेशन हो सके। जो बच्चे स्कूल छोड़ गए हैं उनको स्कूल वापस लाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और उनको सुविधाएं देनी चाहिए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके जो बच्चे स्कूल छोड़ गए हैं वे वापस आ सकें। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि हर बच्चा कम से कम दसवीं कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त कर सकें।

टिप्पणी

2. विद्यालयी शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाया जाए ताकि बच्चों की क्षमता का पूर्ण विकास हो सके। एनसीएफ़ 2005 के अनुसार, "स्कूल के सरोकारों में यह भी शामिल है कि यह समझा जाए कि स्कूल आने से पहले बच्चों के साथ क्या हुआ है और स्कूल छोड़कर जाने के बाद क्या होगा। स्कूल विविधता की अनिवार्य रूप से आदर करें और सभी बच्चों (लड़कियों, कामकाजी बच्चों, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों, शोषण और हिंसा के शिकार) के लिए अवसरों में समानता सुनिश्चित करें।"
3. विद्यालयी व्यवस्था में शिक्षकों पर भरोसा करना आवश्यक है। शिक्षकों की स्वायत्तता का भी ध्यान रखना होगा। इसके लिए शिक्षकों को प्रोत्साहित करने और उनको सहयोग दिए जाने की ज़रूरत है। महिला शिक्षकों को विद्यालयों में रोजगार दिया जाए।
4. पाठ्यक्रम के निर्माण में स्कूलों को भी शामिल किया जाए। "प्रत्येक स्तर पर मौजूदा शैक्षिक संस्थाओं में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रियाओं को मजबूत करने के लिए व्यवस्थात्मक बदलाव ज़रूर लाया जाए और इन प्रक्रियाओं की स्थिति को दर्शाने वाले तरीकों को भी जगह मिलनी चाहिए।" स्कूल के विद्यार्थी एवं अध्यापक विद्यालय की वास्तविक परिस्थितियों से वाकिफ होते हैं। इसलिए पाठ्यक्रम के निर्माण में उनको भी शामिल किया जाना चाहिए।
5. उच्च प्राथमिक स्तर और माध्यमिक स्तर पर स्कूलों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। स्कूलों को चाहिए कि वे प्रयोग, सर्वे, अध्ययन और पाठ्यक्रम के ढांचे के भीतर अन्य व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों को करने की संभावनाओं को ज़रूर मुहैया कराएं। इसके लिए आवश्यक है कि विभिन्न स्कूलों के शिक्षकों के बीच नियमित संवाद स्थापित होना चाहिए। शिक्षकों की पुस्तकालय तक पहुंच बढ़ाई जाए।
6. प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थियों के पास सीखने के लिए किसी प्रकार का सहयोग नहीं होता है। ऐसे बच्चों की धीमी गति के कारण उनको विद्यालय से न निकाला जाए, बल्कि इनको समर्थन दिया जाए जिससे वे अधिक से अधिक स्कूल आने के लिए प्रेरित हो सकें। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 के फोकस समूह पत्र 'पाठ्यक्रम बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार' में स्पष्ट कहा गया है कि "सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ऐसे बनाए जाने की ज़रूरत है जिससे कि वह ऐसे बच्चों की जरूरतों की पूर्ति कर सकें और उनके साथ सम्मान एवं संवेदनशीलता के साथ बर्ताव कर सकें, ताकि वे हर दिन स्कूल में आने के लिए प्रोत्साहन पा सकें।"
7. परीक्षा बच्चों के लिए एक बोझ की तरह होती है। वर्तमान शिक्षा का स्वरूप ही ऐसा है कि बच्चे के सीखने से अधिक परीक्षा पर ध्यान केन्द्रित है। परीक्षा की गहरी चिंता एवं अंकों का भय उन पर दवाब बनाता है। इस प्रकार की मूल्यांकन प्रणाली जो बच्चों में भय एवं दबाव उत्पन्न करें उस पर हमें पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। एनसीएफ (2005) के अनुसार, "स्कूल की दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि यह परीक्षा उच्च प्राथमिक तक, नीचे उतरते हुए, स्कूल की विषयवस्तु तथा विधि को निर्धारित करती है। इसलिए अगर हम सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली में अर्थपूर्ण सुधार अवकल्पित करते हैं तो यह आवश्यक है कि हम

परीक्षा एवं उससे जुड़ी हुई पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों पर आलोचनात्मक नज़र डालें।" अंकों का ये भय भी लैंगिक असमानता को बढ़ावा देता है।

8. अधिगम में सब वर्गों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। विषयवस्तु में जीवन मूल्यों एवं रोजगार को प्रमुख रूप से शामिल किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

इस प्रकार के बहुत सारे सुझाव राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा–2005 में दिए गए हैं जो एक बेहतरीन शिक्षा व्यवस्था को बनाने पर ज़ोर देते हैं। वास्तव में एक पाठ्यक्रम को बनाने की एक प्रमुख चुनौती यह है कि उसमें वे सभी तत्त्व शामिल हो सभी आधारभूत स्तर की उपलब्धताओं एवं सीमाओं को साथ लेते हुए शिक्षा के व्यापक लक्ष्य को पूर्ण करने का मार्ग प्रशस्त करे।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 के बाद इसके फोकस समूह 'शिक्षा में लैंगिकता के मुद्दे' पर शिक्षा में लैंगिकता के मुद्दों को संबोधित करने के लिए दी गई सिफ़ारिशें निम्नलिखित हैं–

- **सभी लड़कियों के लिए शिक्षा** : सरकार को सभी लड़कियों के लिए शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए उपाय करने होंगे। इसके लिए लड़कियों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया जाए। शिक्षा की पहुंच देश के हर क्षेत्र तक बढ़ाई जाए।
- **लड़कियों को स्कूल में बनाए रखना** : सरकारी स्कूल जहां पर अधिकांशतः पिछड़े वर्ग के बच्चे एवं लड़कियां पढ़ने आती हैं, वहां शिक्षा की गुणवत्ता बहुत अच्छी नहीं है। जो लड़कियों के स्कूल छोड़ने का एक बड़ा कारण है। अतः सरकारी स्कूलों की आधारभूत संरचना के साथ–साथ शिक्षा की गुणवत्ता पर भी ध्यान दिया जाए।
- **लैंगिकता सिर्फ महिलाओं का मुद्दा नहीं है** : क्योंकि लैंगिकता का गहरा संबंध पितृसत्ता से है इसलिए लैंगिक असमानताओं के लिए अक्सर पुरुषों को जिम्मेदार ठहराया जाता है। इसलिए लैंगिक समानता के लिए केवल महिलाओं को ही नहीं बल्कि पुरुषों को भी शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। उनको भी यह समझाने की आवश्यकता है कि लैंगिक असमानता से किसी का भी भला नहीं होने वाला। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जो लड़कों को भी अपने समाजीकरण, अवधारणाएं, संस्कार आदि पर प्रश्न उठाने में सक्षम बना दें और वे स्वयं परिवर्तन का हिस्सा बने। इसलिए लैंगिकता का मुद्दा सिर्फ महिलाओं से ही नहीं अपितु पुरुषों को भी साथ लेकर चलने से हल होगा।
- **लड़कियों को सशक्त बनाना** : समानता एवं सशक्तीकरण, ये दो मुद्दे हैं जिनको शिक्षा नीति एवं पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना आवश्यक है। लड़कियों को सशक्त बनाने के लिए उनमें अपने आप को पहचानने एवं सकारात्मक छवि को विकसित करने में सक्षम बनाना होगा। इसके साथ ही लड़के एवं लड़कियों दोनों में ही आलोचनात्मक चिंतन का विकास करना होगा जिससे वे लैंगिक व्यवस्थाओं, सत्ता आदि को समझ सकें। ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास करना होगा जो लड़कियों को व्यक्तिगत रूप से सशक्त बनाए और अपने जीवन में परिवर्तन लाने में मदद कर सके।

टिप्पणी

- **स्त्री संबंधित शोधों के परिणामों को पाठ्यपुस्तकें बनाते हुए एकीकृत करना** : पाठ्यपुस्तक का निर्माण करने वाली संस्थाओं को सीधे महिला अध्ययन विभागों से जोड़ा जाना चाहिए जिससे महिला अध्ययन विभागों या अन्य क्षेत्रों में स्त्री से जुड़े शोधों से निकले परिणामों को पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रम का निर्माण करते हुए ध्यान में रखा जा सके।
- **किशोरावस्था एवं लैंगिकता पर विशेषज्ञों की राय को पाठ्यपुस्तक निर्माण में शामिल करना** : पुस्तकों का निर्माण करते हुए ऐसे विशेषज्ञों की राय ली जा सकती है जो लड़के एवं लड़कियों की लैंगिकता एवं किशोरावस्था पर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव और पाठ्यपुस्तकों के लिए अपनी विशेष राय दे सके। लैंगिकता, जो किसी भी व्यक्ति की पहचान को प्रभावित करती है, उस दृष्टिकोण से पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यक्रम में इस मुद्दे को संबोधित करना अति–आवश्यक है।
- **भाषा का मुद्दा** : किसी भी पाठ्यक्रम में भाषा का मुद्दा एक बेहद महत्वपूर्ण मुद्दा है। चूंकि बहुत से शोध भाषा की लैंगिक भेदभाव वाली प्रकृति एवं इनके प्रभावों के बारे में बता चुके हैं इसलिए पाठ्यपुस्तकों का भाषा की दृष्टि से निष्पक्ष होना आवश्यक है। अधिकांशतः पाठ्यपुस्तकों की भाषा मर्दवादी होती है और पुरुषों के दृष्टिकोण को दिखाती है। इसको बदलने की आवश्यकता है।
- **शिक्षाशास्त्र की संवादीय प्रणाली** : शिक्षकों के पढ़ाने के तरीकों में भी परिवर्तन लाने की ज़रूरत है। ज्ञान कों केवल विद्यार्थियों के मस्तिष्क में भरना नहीं है अपितु उनसे संवाद स्थापित करने की आवश्यकता है। विशेषतः लड़कियों एवं हाशियाकृत वर्गों से आने वाले बच्चों से संवाद स्थापित करना बेहद आवश्यक है।
- **मूल्यांकन** : विभिन्न मूल्यांकन प्रणालियों का आविष्कार करना होगा। विद्यार्थियों में अंतर को देखते हुए मूल्यांकन के तरीकों में भी भिन्नताएं लानी होंगी। लिखित एवं मौखिक मूल्यांकन के साथ–साथ वस्तुनिष्ठ, दृश्यात्मक, कहानी, कविता, नाटक, चित्र, संवाद आदि के माध्यम से भी मूल्यांकन किया जा सकता है। साथ ही मूल्यांकन में लचीलापन भी होना चाहिए।
- **पाठ्यपुस्तकों का लैंगिकता के दृष्टिकोण से मूल्यांकन** : सभी पाठ्यपुस्तकों का लैंगिकता के दृष्टिकोण से अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। यह विश्लेषण समय–समय पर किया जाना चाहिए जिससे लैंगिकता संबंधी भेदभाव, भाषा आदि में सुधार किया जा सके।
- **लैंगिक संवेदनशील सामग्री का संग्रह बनाना** : एनसीईआरटी एवं दूसरे शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान में लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने वाली सामग्री का एक संग्रह तैयार किया जाना चाहिए जो कक्षा, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण प्रक्रियाओं आदि में लैंगिकता संबंधी दृष्टिकोण से संबंधित हो।
- **शिक्षा एवं लैंगिक संबंधी शोध को बढ़ावा देना** : इतने वर्षों के बाद भी शिक्षा में लैंगिकता के मुद्दों को उतना स्थान नहीं दिया जाता है जितना गहरा एवं चिंताजनक मुद्दा ये है। इसलिए शिक्षा एवं लैंगिकता संबंधित शोध को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जिसके केंद्र में लैंगिक पाठ्यक्रम एवं शिक्षाशास्त्र हो।

- **शिक्षकों का प्रशिक्षण :** लैंगिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण में लैंगिकता के मुद्दों को शामिल किया जाना आवश्यक है। भावी शिक्षकों में आत्म–चिंतन को विकसित करना होगा। उनको लैंगिक सिद्धांतों से अवगत करवाया जाए। शिक्षा एवं लैंगिकता संबंधी शोध के दृष्टिकोण को विकसित किया जाए।

टिप्पणी

अन्य सुझाव

- शिक्षा का व्यापक प्रसार करना और इसके लिए पत्राचार पाठ्यक्रम, दूरस्थ शिक्षा आदि को बढ़ावा देना एवं इनके लिए उचित व्यवस्था करना।
- शिक्षकों को लैंगिक एवं सामाजिक सरोकारों के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास करना।
- समय–समय पर शिक्षण–प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा सशक्त एवं संवेदनशील शिक्षकों का निर्माण करना।
- पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं विद्यालय परिवेश को लचीला बनाना।
- सामाजिक कुरीतियों एवं संकीर्णता को दूर करने के लिए जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन कराना। इसके लिए जनसंचार के साधनों की सहायता ली जाए।
- विद्यालय में विभिन्न सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व के कार्यकलापों, पर्वों, उत्सवों आदि के आयोजनों में सबकी सहभागिता को सुनिश्चित करना।
- विज्ञान दिवस तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करके विज्ञान एवं तकनीक के प्रति लड़के एवं लड़कियों का रुझान उत्पन्न करना।
- धार्मिक, राजनैतिक आदि कारकों में परिवर्तन के लिए सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए सबको प्रेरित करना।
- शिक्षा के उद्देश्यों कों व्यापक करना।
- स्त्रियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था को लेकर महत्वपूर्ण कदम उठाना जैसे–कन्या विद्यालयों का निर्माण, छात्रवृत्तियां प्रदान करना, छात्रावास की सुविधा देना आदि।
- लैंगिक असमानता को कम करने के लिए एक स्पष्ट रणनीति का विकास करना, जिसमें स्कूल प्रशासन, शिक्षक एवं विद्यार्थी मिलकर काम कर सकें।
- ऐसी सहयोगात्मक संस्कृति को बढ़ावा देना जिसमें विद्यार्थियों को जीवन कौशल एवं यौन शिक्षा की जानकारी देकर उनमें परस्पर स्वस्थ संबंध बनाने पर ज़ोर दिया जाए तथा लड़कियों पर फबती कसना, मजाक उड़ाने जैसी मानसिकता से उबारने के लिए परामर्श सेवा प्रदान की जाए।
- स्कूलों में विद्यार्थी परिषद का निर्माण किया जाए और ऐसे मामलों का निपटारा किया जाए जिनमें बालिकाओं को उत्पीड़ित किया जाता है।
- सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज–सुधारकों और शिक्षकों के मध्य सहयोग तथा साथ कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास किया जाए।

टिप्पणी

- विद्यालयों को विभिन्न एनजीओ से सम्बद्ध किया जाए, जो बलात्कार, यौन उत्पीड़न, बाल शोषण, घरेलू हिंसा, एचआईवी एड्स, यौन हिंसा आदि के लिए कार्य करते हो। इसके सहयोग से विद्यालयों में विद्यार्थियों को प्रशिक्षण एवं परामर्श दिया जा सकता है।
- लड़के एवं लड़कियों के लिए अलग–अलग एवं सुरक्षित शौचालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- विद्यालयों में लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने के लिए शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
- कन्या विद्यालयों में महिला शिक्षकों की भर्ती को प्राथमिकता देना।
- विद्यालय में विद्यार्थियों को सरकार द्वारा चलाए जा रहे लैंगिक समानता अभियानों तथा कार्यक्रमों से जोड़ा जाए।
- लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए समाज में जागरूकता एवं समुदाय विशेष के प्रोत्साहन के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए जाए।

पाठ्यक्रम में किन्नर (थर्ड जेंडर)

अब तक पाठ्यक्रम में केवल लैंगिकता के मुद्दे को ही संबोधित किया गया है। परंतु पिछले दशक में किन्नरों पर लिखे गए साहित्य एवं उन पर हुए शोध ये बताते हैं कि किन्नरों की शैक्षिक स्थिति बहुत ही ज़्यादा खराब है। उनकी शिक्षा में भागीदारी बहुत ही कम है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि अब तक किन्नरों के मुद्दे को शिक्षा में स्थान ही नहीं दिया गया। लैंगिक समानता से मतलब सिर्फ महिला एवं पुरुषों की शिक्षा में और शिक्षा के अवसरों में समानता का लक्ष्य प्राप्त करना था। ऐसे में नई शिक्षा नीति का मसौदा (2019) में परलैंगिक बच्चों की शिक्षा के बारे में बात की गई है। हालांकि यह बहुत विस्तारपूर्वक तो नहीं है परंतु परलैंगिकों की शिक्षा को पहली बार किसी नीति में शामिल किया जाएगा। यह एक सकारात्मक परिवर्तन की ओर संकेत है। नई शिक्षा नीति के मसौदे में परलैंगिक बच्चों की शिक्षा के लिए उनकी स्कूल में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए ये सुझाव दिया गया है–

"इस नीति का मानना है कि परलैंगिक बच्चों की शिक्षा से जुड़ी चुनौतियों को दूर करने और उनके साथ समाज और शिक्षा में होने वाले भेदभाव और तिरस्कार को दूर करने के लिए तत्काल उपयुक्त कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। परलैंगिक बच्चों का एक राष्ट्रीय डेटाबेस बनाना ऐसे बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए किए जाने वाले प्रयासों का एक अंग होगा। स्कूल में ऐसा अनुकूल और सुरक्षित वातावरण बनाने को प्राथमिकता दी जाएगी। जिसमें इन बच्चों के संवैधानिक अधिकारों का हनन न हो। स्कूल, स्कूल कॉम्प्लेक्स और सामाजिक कार्यकर्ता परलैंगिक बच्चे और उनके माता–पिता के साथ सलाह–मशविरा करके उनके नामों के इस्तेमाल, शौचालय और उनकी लैंगिक पहचान से जुड़ी अन्य जगहों तक पहुंच को लेकर योजना बनाएंगे। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में परलैंगिक बच्चों से जुड़े मुद्दों और उनके सरोकारों को ध्यान में रखकर आवश्यक बदलाव किए जाएंगे जिससे उनकी सीखने संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद मिले। शिक्षकों को भी परलैंगिक बच्चों से जुड़े मुद्दों और उनकी सीखने संबंधी आवश्यकताओं को लेकर संवेदनशील किया जाएगा"। (NPE-2019)

इस प्रकार नई शिक्षा नीति में परलैंगिकों को लेकर शिक्षा में प्रावधान तो किए गए हैं। परंतु इस नीति के क्रियान्वयन के पश्चात यह देखना होगा कि इस शिक्षा नीति से परलैंगिक की शैक्षिक स्थिति में कुछ बदलाव आता है या नहीं।

पाठ्यक्रम में लैंगिक भेद

टिप्पणी

पाठ्यक्रम यह बताता है कि विषयवस्तु के हिसाब से क्या पढ़ाया जाए और स्तर विशिष्ट उद्देश्यों के मद्देनज़र किस तरह के ज्ञान, कौशल और अभिवृत्तियों को खास बढ़ावा मिले? वर्तमान शिक्षा प्रणाली में यह ध्यान देने योग्य बात है कि हमारी अधिकांश पाठ्य–पुस्तकों में लिंग आधारित भेदभाव दिखाई देता है। विद्यालय, जिसमें कई संस्कृति के विद्यार्थी होते हैं, ये भी लिंग आधारित भेदभाव संस्थान की पाठ्य–पुस्तकों द्वारा, निष्पत्ति परीक्षणों द्वारा, खेलकूद के कार्यक्रमों द्वारा, व्यावसायिक प्रशिक्षण द्वारा व लैंगिक विभेदीकृत पाठ्यक्रम द्वारा स्पष्ट दिखाई देता है। शिक्षक व्यक्तिगत तौर पर तो समाज में व्याप्त लैंगिक भूमिकाओं के सापेक्ष सांस्कृतिक आकांक्षाओं के बोझ तले शिक्षित होते ही हैं, साथ ही जिन शैक्षिक संस्थाओं में उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया होता है वहां भी लैंगिक भेदभाव का सामना करके आते हैं। ये दोनों ही स्थितियां उनकी सांस्कृतिक अपेक्षाओं को अनजाने ही लैंगिक भेदभाव की ओर मोड़ देती हैं और वे भी व्यक्तिगत तौर पर शैक्षिक प्रक्रियाओं में लैंगिक भूमिकाओं की तरफ पक्षपात का दृष्टिकोण अपना लेती हैं तथा छात्र व छात्राओं से विभिन्न शैक्षिक निष्पत्ति के स्तरों व क्षमताओं की उम्मीद करते हैं और पाठ्यक्रम विभिन्न क्षेत्रों के संदर्भ में भी लिंग आधारित विचारों के सापेक्ष ही इसे तैयार करते हैं।

यही कारण है कि एक समान कक्षा में बैठकर एक समान पाठ्य–पुस्तकों को पढ़ते हुए, एक ही अध्यापक के व्याख्यान को सुनते हुए भी छात्र एवं छात्राएं भिन्न–भिन्न शिक्षा प्राप्त करते हैं। जहां तक स्कूलों में छात्रों की संख्या का प्रश्न है, लड़के एवं लड़कियों की संख्या में अंतर नज़र आता है और यही वजह है कि विद्यालयों में हमें पुरुष सापेक्ष वातावरण दिखाई देता है, जहां छात्राओं को छात्रों की तरह स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अधिकार नहीं मिलता है, न ही उनके बराबर शैक्षिक अवसर प्राप्त हो पाते हैं। संभवतः यह पुराने चले आ रहे रूढ़िवादी विश्वास का ही परिणाम है।

पाठ्यक्रम में लैंगिक भेदभाव के कई पहलू हैं। इनमें से कुछ पहलू निम्नलिखित हैं–

- **भेदभाव** : पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री में लैंगिक भेदभाव का कारण सामाजिक पूर्वाग्रह एवं लड़कियों के प्रति समाज का रवैया है। हमारे समाज में लड़कियों के प्रति बहुत ही नकारात्मक रवैया है। इस कारण पाठ्यपुस्तकों की भाषा एवं उसके प्रस्तुतीकरण में भी यही भेदभाव दृष्टिगोचर होता है।
- **विषयवस्तु** : विषयवस्तु में लैंगिक भेदभाव कई तरह से प्रदर्शित हो सकता है। कई बार महिलाओं से जुड़े मुद्दे पर कम ध्यान दिया जाता है तो कभी पुरुष पात्रों की तुलना में महिला पात्रों की संख्या बहुत कम होती है। महिलाओं को सीमित भूमिकाओं में ही दिखाया जाता है। इसके साथ ही किन्नरों के बारे में तो सामग्री नगण्य ही होती है।
- **भाषा तत्त्व** : भाषा द्वारा ही विषयवस्तु की अभिव्यक्ति होती है। हर विषय को भाषा के माध्यम से ही समझा जा सकता है। विशेषकर भाषा की पुस्तकों में कई

बार लैंगिक भेदभाव की भाषा का प्रयोग किया जाता है। कई बार स्त्री के संदर्भ में ऐसे वाक्यों एवं मुहावरों का प्रयोग किया जाता है जिससे उसकी स्थिति को ठेस पहुंचती है एवं उसकी छवि को विकृत किया जाता है।

टिप्पणी

- **सामग्री का प्रस्तुतीकरण** : किसी भी विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण यह दर्शाता है कि उस वस्तु के प्रति लेखक/लेखिका की क्या अवधारणा रही है। स्त्री एवं पुरुष पात्रों का चित्रण किस प्रकार किया जाता है? क्या स्त्री की केवल रूढ़िवादी छवि को ही दर्शाया जा रहा है? और पुरुष को वर्चस्ववादी एवं सत्ता के प्रतीक के रूप में ही दर्शाया जा रहा है? यदि हां तो अवश्य ही इसमें बदलाव की जरूरत है।
- **चित्रांकन** : पाठ्यपुस्तकों में चित्र भी विषयवस्तु के अनुरूप होते हैं जो विषयवस्तु को समझाने एवं स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। कई बार ये चित्र भी रूढ़िबद्धता बनाते हैं।

इस प्रकार ये कुछ पहलू हैं जो पाठ्यक्रम में इंगित होते हैं। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि विभिन्न कक्षाओं की पाठ्य–पुस्तकों के पाठों में विशेषतः भाषा आधारित पाठ्य–पुस्तकों में लिंग आधारित उपेक्षाएं अलग हैं। ये उपेक्षाएं लड़कों को श्रेष्ठता और लड़कियों को हीनता की ओर ले जाती हैं व इस प्रकार समाज की समानता में बाधक होती हैं। दोनों लड़के व लड़कियों के व्यक्तित्व का इस प्रकार के वातावरण में विकास नहीं हो पाता है या इस प्रकार वे भी पाठ्यक्रम के विकास में अपना योगदान नहीं दे पाते हैं।

लिंग–आधारित भेदभाव युक्त विचार इन विद्यार्थियों का बहुत अहित करते हैं। उदाहरण के लिए कक्षा 9 के विद्यार्थी चूंकि इस समय किशोरावस्था की जटिल परिस्थिति से गुजर रहे होते हैं। इस समय यदि वे भेदभावपूर्ण व पक्षपातपूर्ण रवैये का सामना करते हैं तो उनके जीवन पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। पाठ्य–पुस्तकों में दी गई लिंग आधारित पक्षपातपूर्ण अभिवृत्तियां भी बालक व बालिकाओं की अभिवृत्ति पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं तथा वे उसी के आधार पर अपने भविष्य की योजना बनाने लगते हैं तथा अपने प्रत्ययों को भी उसी तरफ मोड़ लेते हैं जैसा दृष्टिकोण वे इन लिंग आधारित पाठ्य–पुस्तकों के आधार पर बना लेते हैं। इसलिए वर्तमान पीढ़ी आज भी सदियों पुरानी इन परम्पराओं व लिंग आधारित धारणाओं से बाहर नहीं निकल पाई है। यह भेदभाव विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि के साथ–साथ समाज में भी दिखाई देता है। इस पर हुए विभिन्न शोध ये बताते हैं कि पाठ्य–पुस्तक आधारित प्रक्रियाओं में लड़के अधिक पक्षपात का अनुभव करते हैं। शायद इसका कारण यह है कि लड़कियां अपने साथ हो रहे भेदभाव को खुलकर अभिव्यक्त करने लगी हैं। लैंगिक भेद की चर्चा करते हुए अधिकांशतः लड़कियों के बारे में तो बात हो जाती है परंतु लड़कों के साथ हो रहे भेदभाव एवं उनकी समस्याओं के बारे में कोई बात नहीं करता। अतः विद्यालयों का यह कर्तव्य है कि वे अपनी शिक्षण संस्था में लैंगिक भेदभाव रहित वातावरण निर्मित करें व इसके लिए उन्हें अधिक लैंगिक संवेदनशील भाषा एवं साधनों का प्रयोग करना है अर्थात उनको लैंगिक तटस्थ भाषा का प्रयोग करना होगा एवं लड़के व लड़कियों के लिए समान संसाधन का भी विकल्प प्रस्तुत करना होगा।

इस लैंगिक भेदभाव को मिटाने के लिए शिक्षकों को भी प्रयास करने होंगे। अक्सर यह सुना जाता है कि लड़कियां विज्ञान, गणित, व्यावसायिक एवं गैर–व्यावसायिक विषयों का चुनाव नहीं करना चाहती, परंतु इसके लिए भी विद्यालय अपने स्तर पर हस्तक्षेप कर सकता है जैसे– विज्ञान मेले में एवं विज्ञान केन्द्रों तक बालिकाओं को ले जाना, विज्ञान के प्रयोग कराना, विषय को रुचिकर बनाना आदि तरीकों से बालिकों में आत्मविश्वास जाग्रत किया जा सकता है।

टिप्पणी

पाठ्यक्रम आधारित लिंग असमानता को दूर करने के सुझाव

पाठ्यक्रम विद्यालयी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पाठ्यक्रम द्वारा ही यह पता लगाया जा सकता है कि क्या पढ़ाया जा रहा है। विद्यार्थी जो भी पढ़ते हैं उसका प्रभाव उनके मन–मस्तिष्क पर भी पड़ता है। सम्पूर्ण विद्यालयी प्रक्रिया में ऐसी बहुत सी चीजें हैं जो रूढ़िबद्धता बना कर परंपरा एवं रूढ़ियों को बनाए रखने का कार्य करती हैं। यदि पाठ्यक्रम ही लैंगिक असमानताओं एवं भेदभाव पर आधारित हो और रूढ़िबद्धता से भरपूर हो तो वह शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में कभी भी लैंगिक संवेदना उत्पन्न नहीं कर सकेगा। पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय उसके लैंगिक समानता संबंधी पहलू को याद रखना आवश्यक है। पाठ्यक्रम द्वारा विद्यार्थियों में लैंगिक समानता लाने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं–

1. पाठ्यक्रम बनाते समय निर्माताओं को बालक या बालिका वर्ग समूह को अलग से प्रदर्शित नहीं करना चाहिए, बल्कि उन्हें अपनी पाठ्यक्रम नीति में समजातीय समूह का समावेशन करना चाहिए।
2. आज भी गणित, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान जैसे विषयों पर लड़कों का ही आधिपत्य है। लड़कियों को पाठ्यक्रम के इन विषयों का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
3. पाठ्यक्रम के अंतर्गत शैक्षिक एवं पाठ्य–सहगामी, सभी प्रकार की गतिविधियों में लड़कियों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाए।
4. विषय चयन में परिवार, शिक्षक, सहयोगी समूह आदि के द्वारा लड़कियों में प्रेरणा उत्पन्न की जाए।
5. सभी प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक कोर्सों को अनिवार्य स्तर पर लागू किया जाना चाहिए।
6. नृत्य, गायन, अभिनय व कला जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए बालिकाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार पाठ्यक्रम के अंतर्गत विषय–प्रणाली में परिवर्तन तथा पाठ्यक्रम–विस्तार द्वारा लैंगिक–असमानता को कम किया जा सकता है। प्राथमिक, उच्च–प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर लड़के एवं लड़कियों के लिए एक जैसा पाठ्यक्रम हो।

2.3.1 पाठ्यपुस्तक और लैंगिक प्रतिनिधित्व

विद्यालयी पाठ्यक्रमों में लैंगिकता आधारित वर्गीकरण मूर्त एवं अमूर्त दोनों ही रूपों में विद्यमान होता है। यह अंतर विद्यालयों द्वारा पढ़ाए जा रहे विषयों एवं उन विषयों के लिए बनाए गए पाठ्यक्रमों की पाठ्यपुस्तकों प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपेण होता है।

टिप्पणी

पाठ्यपुस्तकें एवं लैंगिकता

पाठ्यपुस्तकें हमारी शिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यपुस्तकों के महत्व का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अक्सर पाठ्यपुस्तकों को ही पाठ्यक्रम मान लिया जाता है। विद्यालयों में पाठ्यक्रम के रूप में सिर्फ और सिर्फ पाठ्यपुस्तकों का ही प्रयोग किया जाता है और ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित कर दिया जाता है। हम पाठ्यपुस्तकों के ज्ञान को ही अंतिम ज्ञान मान लेते हैं। कक्षा में कुछ नया करने की आवश्यकता महसूस ही नहीं की जाती। चूंकि पाठ्यपुस्तकें ही विद्यालय में एक मात्र ज्ञान का साधन बन कर रह गई हैं इसलिए पाठ्यपुस्तकों के निर्माण पर ध्यान देना और भी अधिक आवश्यक हो जाता है। पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करते हुए हमें उसके लैंगिक संवेदनशीलता के पहलू को ध्यान में रखना होगा। हमें ये भी ध्यान रखना होगा कि पाठ्यपुस्तकें कहीं समाज में मौजूद लैंगिक रूढ़िबद्धता को बढ़ावा देने में योगदान तो नहीं दे रहीं? इसके लिए समय–समय पर इनकी समीक्षा की जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तकों पर हुए शोध के परिणाम को पुस्तकों का निर्माण करते समय ज़रूर ध्यान में रखना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों को लैंगिकता मुक्त करना बेहद आवश्यक है। वर्तमान समय में पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में सुधार का कार्य बहुत ही गंभीर रूप से किया जाता है। एनसीईआरटी द्वारा तैयार किया गया National Curriculum Framework 2005 के अनुसार, "सुधरी हुई पाठ्यपुस्तकें जो सावधानीपूर्वक लिखी और नियोजित की गई हों, व्यावसायिक रूप से संपादित और जांची गई हों और जो बच्चों को केवल तथ्यात्मक जानकारी न देकर अंतःक्रिया के मौके दें, महत्वपूर्ण होती हैं।" (पृष्ठ–101) अतः ये कहा जा सकता है कि समानता के लिए हमें पाठ्यपुस्तकों का प्राथमिक उपकरण की तरह उपयोग करना चाहिए, क्योंकि यह शिक्षा हेतु बहुत बड़ी संख्या में विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए प्राप्य संसाधन हैं।

हालांकि पाठ्यपुस्तकों से भी इतर सामग्री का प्रयोग कक्षा में पढ़ते हुए होता है परंतु इनका उपयोग कम ही शिक्षक करते हैं। इस संदर्भ में NCF 2005 कहता है कि "पाठ्यक्रम का सुधार और भी बहुत आगे जा सकता है अगर पाठ्यपुस्तकों के साथ और बहुत सारी अन्य सामग्री विकसित की जाए। उदाहरण के लिए विषय का शब्दकोश तैयार कर किताबों को परिभाषाओं और विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के बोझ से बचाया जा सकता है जिससे शिक्षक को यह मौका मिलेगा कि वह अवधारणाओं की समझ पर बल दे पाए। अगर पाठ्यपुस्तकों के लेखक अवधारणाओं के विस्तार, गतिविधियों, समस्याओं पर अचरज करने के अवसर देने पर, चिंतनात्मक सोच को बढ़ावा देने वाले अभ्यासों पर एवं छोटे समूह में कार्य करने पर ध्यान दें तो कक्षा में जल्दी–जल्दी पढ़ाने, भारी–भरकम गृहकार्य और निजी ट्यूशन के तनाव वाले त्रिकोणीय संबंध को कमजोर किया जा सकता है।"

पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है कि लैंगिक समानता के दृष्टिकोण का विकास करने वाली विषय सामग्री का समावेश इनमें किया जाए। पाठ्यपुस्तक में बच्चों में लैंगिक समानता का विकास करने वाली सामग्री का समावेश हो तो निश्चित रूप से बच्चों की मानसिकता में लैंगिकता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होगा। इसका कारण यह है कि पाठ्यपुस्तकें ही एकमात्र ऐसा साधन हैं, जो विद्यालय जाने वाले प्रत्येक बच्चे को सुलभ होती हैं और

पाठ्यपुस्तकें ही एकमात्र ऐसा संसाधन हैं जो कोई भी शिक्षक, शिक्षण प्रक्रिया के दौरान भले ही किसी भी सहायक सामग्री का उपयोग न करे पर पाठ्यपुस्तकों का उपयोग तो करता ही है।

टिप्पणी

एनसीईआरटी के अनुसार नई पाठ्यपुस्तकें लिखते और तैयार करते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि बच्चों को कम उम्र से ही लैंगिक संवेदनशील बनाना है तथा उन्हें लैंगिक पक्षपात से दूर रखना है। इसके पीछे सम्पूर्ण भावना है कि विद्यार्थी यह महसूस कर सकें कि महिलाएं पुरुषों से कम योग्य अथवा समर्थ हैं, इस सोच का कोई आधार नहीं है। वर्तमान संदर्भ में उठने वाले मुद्दों के आधार पर कहा जा सकता है कि एनसीएफ़ 2005 में प्रस्तावित सुधार स्वागत के योग्य है और इसके आधार पर जिन पुस्तकों का निर्माण किया गया वह पिछली पाठ्यपुस्तकों से अधिक बेहतर और लैंगिकता के प्रति संवेदनशील नज़र आती हैं। परंतु लैंगिक दृष्टि से किए गए शोध अभी भी ये बताते हैं कि अभी भी बहुत सारी पाठ्यपुस्तकों में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जहां लैंगिक रूढ़िबद्धताएं दर्शाई गई हैं। स्त्री एवं पुरुष में से पुरुष को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। स्त्री एवं पुरुषों की छवियों को पारंपरिक तरीके से दर्शाया गया है।

राज्य और राष्ट्रीय एजेंसी पाठ्य–पुस्तकें निर्मित करते हैं। लिंग आधारित समानता को शामिल करते हुए पहचाने हुए मार्मिक मूल्यों को पाठ्यपुस्तकों में शामिल करने का प्रयास जारी है। कुछ राज्यों ने ऐसी पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास पुस्तकें बना ली हैं जो लिंग आधारित भेदभाव से मुक्त तो हैं ही, साथ ही लड़के–लड़कियों, महिला–पुरुषों को साझेदारी से काम करते हुए दर्शाती हैं। ये सामग्री में महिलाओं को गैर–परंपरागत कार्यों में संलग्न दिखाती हैं और उसमें उनका योगदान बताती हैं। फिर भी अधिकांश शिक्षकों को अभी भी उन पुस्तकों का प्रयोग ही करना पड़ेगा जिसमें बालिका का कमजोर और रूढ़िवादी स्थिति में ही लड़के और लड़कियों का चित्रण किया गया है। इनमें महिलाओं की स्थिति दयनीय है जबकि पुरुषों की वर्चस्ववादी। लैंगिक भेदभाव से परिपूर्ण पुस्तकों में कुछ इस प्रकार के चित्रण मिलते हैं–

- पुरुष पात्रों एवं पुरुष लेखकों का बाहुल्य।
- पुरुष प्रायः प्रमुख भूमिका में होते हैं और कुछ महिलाएं जिनका जिक्र भी होता है वे परिचारिका की भूमिका में ही होती हैं जिनसे सहायक कार्य ही अपेक्षित होते हैं।
- निडर, हिम्मत, बहादुरी आदि जैसे गुण पुरुषों के बताए जाते हैं जबकि महिलाओं को भीरु, असंगठित, कमजोर एवं मूर्ख दर्शाया जाता है।
- पुरुषों की कर्मशीलता, शिक्षक, नेता, डॉक्टर, किसान आदि के रूप में दिखाई जाती है और महिलाओं को गृहणी, मां, परिचारिका आदि में अधिक जबकि अन्य भूमिकाओं में बहुत कम दर्शाया जाता है।

नीचे पाठ्यपुस्कों में से कुछ उदाहरण लिए गए हैं। इनको पढ़कर इनमें से लैंगिक रूढ़िबद्धता की पहचान कीजिए।

1. सोना : दादाजी, दो दिन बाद हमारे विद्यालय में उत्सव है। मेरी सहेली मोना और मैं नृत्य करेंगे। मोना की मां उत्सव में भाग लेने आएंगी।

दादाजी : बेटी, मोना की मां ग्राम पंचायत की सरपंच है इसलिए उन्हें मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया होगा।

2. अपूर्वा : हां, मैं पिताजी से कहूंगी कि अपने नए मकान में लकड़ी के दरवाजे नहीं, प्लास्टिक के दरवाजे लगाएं।

टिप्पणी

3. घर का सबसे बड़ा व्यक्ति परिवार का मुखिया होता है।

   वह परिवार के सभी सदस्यों की देखभाल करता है।

4. पद्मिनी बहुत रूपवती थी। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन को इसकी जानकारी मिली। खिलजी उसे प्राप्त करना चाहता था।

   खिलजी ने रावल रतन सिंह को संदेश भिजवाया कि वह केवल पद्मिनी को देखकर ही दिल्ली लौट जाएगा। रानी पद्मिनी ने चित्तौड़ को विनाश से बचाने के लिए खिलजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। किले में पद्मिनी का प्रतिबिंब दिखाने की व्यवस्था की गई। खिलजी चाह कर भी पद्मिनी को प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सका।

   खिलजी के मन में पद्मिनी को पाने की इच्छा बनी रही। कुछ समय बाद खिलजी ने पुनः चित्तौड़ पर आक्रमण किया।

इसी प्रकार के उदाहरण पाठ्यपुस्तकों में भरे पड़े हैं। पाठ्यपुस्तकों में लैंगिक भेदभाव के निम्नलिखित कारक हो सकते हैं–

1. **अदृश्यता** : अदृश्यता से अभिप्राय है किसी भी एक लिंग लड़का या लड़की के कार्य शामिल होते हुए भी उनका नाम न होना। या फिर पूर्णतः उनके कार्य कों शामिल न किया जाना। ऐसा अक्सर पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में होता है जब पुरुषों के कार्यों, उनकी खोजों को ही पाठ्यपुस्तकों में शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में महिला लेखिकाओं की रचनाओं को कम ही शामिल किया जाता है।

2. **रूढ़िबद्धता** : पाठ्यपुस्तकों में रूढ़िबद्धता के बहुत से उदाहरण देखने को मिल जाते हैं। जब किसी भी पात्र को किसी पारंपरिक भूमिका में या प्रचलित छवि में बांधकर दिखाया जाता है तो वह रूढ़िबद्ध छवि होती है। पहले दिए गए उदाहरणों में आप ऐसी रूढ़िबद्धता को देख सकते हैं।

3. **अलगाव** : पाठ्यपुस्तक के संदर्भ में अलगाव का मतलब है जब किसी भी महिला या अल्पसंख्यक के कार्यों को अलग से बहुत ही कम प्रतिनिधित्व मिलता है तो वह अलगाव कहलाता है। इसमें किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर बहुत कम सामग्री या नगण्य सामग्री मिलना भी शामिल है। उदाहरण के लिए किन्नरों (परलैंगिकता) पर हमारी पाठ्यपुस्तकों में शायद ही कोई सामग्री मिले।

4. **अयथार्थता** : कई बार किसी महत्वपूर्ण मुद्दे को पाठ्यपुस्तकों में या तो शामिल ही नहीं किया जाता या फिर उसकी जटिलता को बहुत ही साधारण तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए महिलाओं को उत्पादन क्षेत्रों में सीधे तौर पर शामिल नहीं दिखाया जाता, जबकि वास्तविकता यह है कि महिलाएं भी सीधे तौर पर उत्पादन प्रक्रिया में शामिल होती हैं।

5. **भाषायी भेदभाव** : भाषा भेदभाव का एक सशक्त संवाहक है। पाठ्यपुस्तकों की भाषा अक्सर पुरुष प्रधान होती है। एक उदाहरण देखिए–

भेदभावपूर्ण भाषा	लैंगिक निष्पक्ष भाषा
गांव के हॉस्पिटल में स्वास्थ्य कार्यकर्ता काम करता है।	गांव के हॉस्पिटल में स्वास्थ्य कार्यकर्ता की नियुक्ति होती है।
आदिमानव शिकार करता था।	आदिमानव शिकार करते थे।

टिप्पणी

दरअसल भाषा का विकास भी पितृसत्तात्मक ढांचे एवं समाज द्वारा स्त्री के लिए गढ़े गए मिथकों के अंतर्गत ही हुआ है। कृष्ण कुमार (2011) लिखते हैं कि "भाषा और साहित्य दोनों का विकास जिन मिथकों की छत्रछाया में हुआ है, वे स्त्री को कमजोर और अकेला बनाने के सांस्कृतिक साधन रहे हैं। उनमें समाए रूपक लड़कियों के मानस शिल्प को इस प्रकार से गढ़ते हैं कि वे अपनी निरूपायता को एक प्राकृतिक सत्य मान लें और उसकी परिधि में रहकर ही सुख या खुशी की कल्पना करें।

6. **दृश्य चित्रण में भेदभाव** : यदि पाठ्यपुस्तकों में चित्रों में किसी एक लिंग का प्रतिनिधित्व अधिक पाया जाता है जो यह दृश्य चित्रण में भेदभाव कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कई बार चित्रों में पारंपरिक छवियों का चित्रण ही किया जाता है।

7. **कॉस्मेटिक पूर्वाग्रह** : कई बार पाठ्यपुस्तकों की कॉस्मेटिक सज्जा 'समानता का भ्रम' उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिए किसी पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर किसी महिला वैज्ञानिक का चित्र हो, परंतु सामग्री में महिला वैज्ञानिकों के योगदान के बारे में बहुत ही कम लिखा गया हो।

इसलिए अभी भी पाठ्यपुस्तकों व पाठ्यक्रमों में लैंगिक पक्षपात को कम करने की आवश्यकता है– कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं–

- शैक्षिक सामग्री का उत्पादन संविधान में निहित भावना एवं संवैधानिक मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। इनमें मौलिक अधिकार और समानता, स्वतन्त्रता, बंधुता एवं न्याय के मूल्यों को शामिल किया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में वहां संशोधन करने की आवश्यकता है जहां महिलाओं एवं पुरुषों का चित्रण रूढ़बद्ध तरीके से किया जाता है। इनकी छवियों को बदलने का प्रयास किया जाए। पुरुषों के समान महिलाओं की उपलब्धियों को शामिल करने की आवश्यकता है। यह भी किया जा सकता है कि पिता खाना बना रहा है, माता बल्ब लगा रही है, लड़की स्कूल से साइकिल पर लौट रही है तथा लड़का झाड़ू लगा रहा है। परंतु ऐसा भी न हो कि केवल चित्र में परिवर्तन करके लैंगिक संवेदनशीलता की दिशा में उठाए गए इस कदम को ही सब कुछ मान लिया जाए। चित्रों के साथ–साथ विषयवस्तु का चुनाव भी बहुत महत्वपूर्ण है।
- बालिकाओं के स्थान के बारे में सतही सोच से लिखने के बजाय लेखकों को परिवार में बालिकाओं की वास्तविक स्थिति को महसूस करके लिखना चाहिए।

टिप्पणी

- आज बहुत कम महिलाओं की आत्मकथा पढ़ाई जाती है, क्योंकि महिलाओं की आत्मकथाएं कम संख्या में निर्मित हैं इनकी संख्या बढ़ा कर बालिकाओं को प्रेरित किया जा सकता है।
- पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन को एक साधारण क्रिया की तरह नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि इस पर राज्य सरकार का पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण होना चाहिए।
- लिंग–भेद को दर्शाने वाली शिक्षण सामग्री को परिवर्तित कर देना चाहिए।
- कला, संगीत, गृह विज्ञान आदि महिलाओं के विषय जबकि भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित आदि विषयों को पुरुषों से संबंधित माना जाता था, उसमें परिवर्तन करना।
- समय–समय पर पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण किया जाए जिससे उनकी खामियां उजागर हो और उसके बाद उनमें संशोधन भी किया जाए।
- महिलाओं द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किए गए कार्यों को भी पाठ्यपुस्तकों में उचित स्थान दिया जाना चाहिए। केवल चित्रों में वैज्ञानिक और डॉक्टर दिखा देने से संवेदनशीलता विकसित नहीं होगी बल्कि उनके कार्यों को भी शामिल किया जाए।
- पाठ्यपुस्तकों में उदाहरण भी लैंगिकता के दृष्टिकोण से सकारात्मक होने चाहिए। एक उदाहरण देखिए–

सकारात्मक उदाहरण	नकारात्मक उदाहरण
बेगम हजरत महल ने क्रांति का नेतृत्व करते हुए अंग्रेज़ सेना से युद्ध किया।	पद्मिनी बहुत ही रूपवती थी। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन को इसकी जानकारी मिली। खिलजी उसे प्राप्त करना चाहता था।

पहले उदाहरण में किसी महिला में नेतृत्व के गुण को दर्शाया गया है जबकि नकारात्मक उदाहरण में महिला को एक सुंदर वस्तु के रूप में चित्रित किया है जिसको कोई पाना चाहता है।

विद्यालय एवं पाठ्यपुस्तकों में लैंगिक भेदभाव

विद्यालय में जो पाठ्यपुस्तकें बच्चों को पढ़ाई जाती हैं उनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है, एक तरफ तो यह पुस्तकें सूचना का स्रोत होती हैं तथा दूसरी तरफ इन पुस्तकों के माध्यम से समाज में सही तथा स्वीकार्य की छवि बनाने में भी सहायक होती है। पाठ्यपुस्तकों को बच्चों में वांछित व्यवहार उत्पन्न करने का प्रमुख उपकरण माना जाता है। इस प्रकार की मान्यता है कि विद्यालय की पाठ्यपुस्तक में बच्चों को जो भी पढ़ाया जाता है वह उनके वास्तविक व्यवहार में प्रदर्शित हो ही जाएगा। पाठक पुस्तकों में दिए गए व्यवहार के अनुसार स्वीकार्य मानकों के अनुसार ही व्यवहार करने लगेगा। इस कारण से पाठ्यपुस्तकों को विद्यालय में बच्चों की नीव बनाने के लिए पढ़ाया जाता है। अतः यह बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि पाठ्यपुस्तकों की प्रस्तुति एवं उनके संबंध का चयन करते समय बहुत सावधानी बरती जाए तथा पुरुष एवं महिला का प्रस्तुतीकरण भी इस प्रकार से हो कि वह किसी प्रकार के लिंग भेद से बचा रहे।

टिप्पणी

जब कोई बच्चा या छात्र विद्यालय में पढ़ रहा होता है तो उसकी विचारधारा बाहरी परिवेश में हो रही घटनाओं से अछूती नहीं रहती है, फलतः यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि कक्षा में पढ़ाते समय लिंग भेदभाव को भी धरातल पर रखकर समझाया जाए। इस समय अध्यापक की भूमिका एवं उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है इसके पश्चात पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य अध्ययन सामग्री के चयन का भी प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पाठ्यपुस्तक एवं पाठ्यसामग्री भी प्रशिक्षु को प्रभावित करती है। अध्यापकों को अध्ययन सामग्री का चयन करते समय बहुत सूक्ष्म निरीक्षण कर लेना चाहिए तथा अपनी कक्षाओं में लिंग तथा इससे संबंधित प्रथाओं के प्रभाव पर भी विचार–विमर्श अवश्य ही करना चाहिए। इससे छात्र पुस्तकों से प्रभावित हुए बिना अपना स्वयं का निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

जब कोई व्यक्ति, किसी पद के बारे में कोई विशेष दृष्टिकोण रखता है तो वह व्यक्ति उस विशेष घटना अथवा पद के प्रति उसी प्रकार का व्यवहार एवं क्रिया भी करता है। उदाहरण के लिए जैसे हम यह छवि बना लेते हैं कि महिला खाना बनाती है तथा पुरुष बाहर कार्य करते हैं। इस प्रकार का छायांकन सभी समाजों में पुरुष एवं महिलाओं की भूमिकाओं की संबंधता को प्रभावित करता ही है। इस प्रकार की भूमिकाएं दोनों प्रकार के मापदंडों में होती हैं। इस प्रकार से लिंग से संबंधित मानदंड पारस्परिक विश्वासों, तथ्यों के आधार पर साझा किए जाते हैं। इससे किसी व्यक्ति द्वारा महिला एवं पुरुष के चरित्र से संबंधित व्यक्तिगत विचार बनाने में बाधा आती है। इस प्रकार के मानदंडों द्वारा मनुष्य यह सोचने लग जाते हैं कि एक प्रकार के मानदंड ही उस लिंग से संबंधित सभी व्यक्तियों पर एक समान रूप से लागू हो सकते हैं। यह एक साधारण विश्वास है कि महिलाएं अधिक मातृत्व का प्रदर्शन पुरुषों की अपेक्षा कर सकती हैं तथा वह बच्चों का पालन पोषण भी बेहतर कर सकती है। इसी प्रकार से पुरुष भावनात्मक रूप से अधिक मजबूत होता है तथा वह परिवार की आजीविका का अर्जन करते हैं। पुरुष एवं महिला के मध्य भेद करने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर अनेक प्रकार की श्रेणियां हैं, अतः अध्यापक को चाहिए, कि वह इन भेदों को स्पष्ट करते हुए छात्रों की जिज्ञासाओं का उन्मूलन करते रहें तथा बिना किसी पूर्वाग्रह के दोनों लिंगों को समान रूप से सम्मान देते हुए इन मानदंडों (Stereotypes) को परिवर्तित करने के प्रश्न करने चाहिए। पुस्तकों में दिए गए लिंग संबंधी मानदंडों द्वारा छात्रों में लैंगिक पहचान को और सुदृढ़ता प्रदान होती है। अतः पाठ्यपुस्तकों में दिए गए लैंगिक प्रस्तुतीकरण को बहुत सूक्ष्मता के साथ परीक्षण किया जाना चाहिए तथा इनके द्वारा कोई गलत सूचना का प्रसारण होने से रोकना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा छात्र की संपूर्ण वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। पाठ्यपुस्तकों में दी गई जानकारी के द्वारा छात्र लैंगिक भूमिकाओं को अपने अनुसार समझ सकते हैं क्योंकि पुस्तकों में दी गई अध्ययन सामग्री तथा छवियां लैंगिक भेदभाव का प्रस्तुतीकरण करती हैं। अनेक कथाओं की पुस्तकों में पुलिस वाले को सदैव ही एक पुरुष के रूप में दिखाया जाता है जिससे कि पाठकों में यह संदेश जाता है कि पुलिस वाले सदैव पुरुष ही हो सकते हैं तथा महिला यह कार्य नहीं कर सकती है।

पुस्तक की विषय सामग्री को लिखते समय लेखक छवियों को इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं कि वह मानव व्यवहार एवं उनकी भूमिकाओं को स्पष्ट कर रहे हो। इस प्रकार

के प्रस्तुतीकरण के द्वारा एक निश्चित प्रतीक पुरुषों के बारे में बन जाता है कि एक पुरुष ही पुलिस वाला हो सकता है, लिंग भेद को समाप्त करने के लिए पाठ्यपुस्तकों में इस प्रकार के मापदंडों एवं छवियों को प्रस्तुत करने से परहेज करना चाहिए।

टिप्पणी

छात्र व्यक्तिगत स्तर पर जो पढ़ रहे होते हैं, वह विचार प्रक्रम द्वारा प्रदर्शित होता है। इसी प्रकार से पाठ्यपुस्तकों में जो भी सामग्री दी जाती है उनके द्वारा भी छात्रों के दृष्टिकोण के निर्माण एवं विश्वास तथा फलस्वरूप आचरण में प्रभाव पड़ता है। जिसका प्रमुख कारण यह है कि बच्चा अपने आसपास हो रही घटनाओं तथा मनुष्यों को देखकर ही स्वयं की छवि का निर्माण करता है और यदि पुस्तकों में यह दिखाया गया हो कि लड़कियों की यह भूमिका होती है जबकि लड़कों की अलग प्रकार की भूमिका होती है तो उनके मस्तिष्क भी उसी के अनुसार सीमित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप इस प्रकार की छवियों एवं भूमिकाओं के प्रस्तुतीकरण के कारण बच्चे वह आचरण करने लगते हैं जो उनके व्यक्तित्व के अनुसार तथा व्यवहार के अनुरूप नहीं होता है, बजाय इसके वह अलग तरीके से व्यवहार करने लग जाते हैं। वह ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जो कि उपयुक्त लगता है। वास्तव में तथ्य तो यह है कि पाठ्यपुस्तकों में जो छवियां दिखाई जाती हैं वह किसी के व्यक्तित्व, व्यवसाय, स्वयं की शक्ति तथा अवसर के बारे में गलत अवधारणा एवं दृष्टिकोण की रचना कर देते हैं। यदि किसी पाठ्यपुस्तक में एक फोटोग्राफर पुरुष के रूप में दिखाया गया है तो इसका प्रभाव यह होगा कि लड़कियां फोटोग्राफर के व्यवसाय को नहीं करना चाहेंगी क्योंकि यह उनके बस की बात ही नहीं है। अतः लेखक को चाहिए कि वह अपने इस प्रकार के लैंगिक दृष्टिकोण को अपनी पाठ्यसामग्री में इस प्रकार से प्रस्तुत करें कि छात्र, मुक्त रूप से अपने हुनर एवं व्यक्तित्व का विस्तार कर सकें। लैंगिक विशेषताओं की कट्टरता प्रदान करते समय (Orthodoxy) उनका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। मूल्यांकन में छात्रों के उचित व्यवहार का आधार भी पाठ्यसामग्री में निर्मित होना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक छात्र के अलग मूल्य, व्यवहार एवं विचार होते हैं अतः यह अध्यापक के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह अपनी कक्षा में लैंगिक समानता को बनाकर रखने का प्रयास करें। अनेक शोधकर्ताओं ने अपने शोधकार्यों द्वारा इसकी स्वीकृति दी है कि छवियों के मापदंड के द्वारा छात्रों के विकास पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवहार एवं मानदंडों के द्वारा बालिका से महिला एवं बालक से पुरुष बनने की प्रक्रिया को हर जगह हमारे समाज में बनाया जाता है। छोटी उम्र की लड़कियां एवं लड़कों से अलग–अलग तरीके से व्यवहार किया जाता है। अतः पाठ्यपुस्तकों में बहुत सारे मापदंडों को स्थान दिया जाता है तथा उनके द्वारा अनेक प्रकार के विश्वास बनते हैं जो कि बच्चों के द्वारा अपनी प्रारंभिक आयु में ही विद्यालय में सीख लिए जाते हैं। वस्तुतः अध्यापक का कार्य कक्षा में विषय संबंधी अध्ययन करवाना ही नहीं होता है वरन उनको उपलब्ध साहित्य का मूल्यांकन एवं आकलन भी करना होता है। मूल्यांकन के माध्यम से अध्यापक ही यह चयन करता है कि किस मापदंड को अध्ययन सामग्री से हटा देना है एवं किसे उपयुक्त मानकर अध्ययन करवाना है। यदि परिस्थितिवश अध्यापक को यह अधिकार नहीं है कि वह साहित्य को परिवर्तित कर सके तो कम से कम उन्हें यह चाहिए कि उनको वर्तमान मानदंडों एवं उनकी समस्याओं के बारे में तथा उनके संभावित भविष्य एवं होने वाले परिणामों से अवगत अवश्य ही करवा देना चाहिए। परिणाम अध्यापक का लक्ष्य छात्रों

के उत्साहवर्धन तथा उनके अध्ययन प्रक्रम पर केंद्रित होना चाहिए जिससे कि सभी छात्रों को एक प्रकार के अवसर मिल सकें।

2.3.2 स्कूली गतिविधियां : लैंगिक पूर्वाग्रह

टिप्पणी

लिंग समानता अकसर उपयोग किया जाने वाला शब्द है लेकिन पर्याप्त रूप से अनुवादित नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में अवधारणा की पर्याप्त समझ से शिक्षा कार्यक्रम विकसित करना और विकसित करने के लिए शिक्षा के प्रोग्रामर को सक्षम किया जा सकता है, जिसको अच्छी तरह से प्रबंधित और मूल्यांकित किया जा सकता है। यथार्थवादी होने के लिए, रूपरेखा को लैंगिक समानता, लिंग समानता और लिंग समानता की अवधारणाओं को निश्चित तौर पर स्पष्ट करना चाहिए। उन दोनों के बीच अंतर को पर्याप्त रूप से उजागर किया जाना चाहिए और शर्तों से संबंधित मुद्दों को भी निपटाया जाना चाहिए। लिंग समानता दोनों लड़कों/पुरुषों और लड़कियों/महिलाओं को समान अवसर और अधिकार देने वाले होते हैं, और आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विस्तार से समान रूप से योगदान और लाभ प्राप्त कर सकते हैं। समानता और निष्पक्षता शिक्षा में समानता की रीढ़ है। यूनेस्को के अनुसार, लिंग समानता तब प्राप्त होती है, जब लड़के और लड़कियां समान अनुपात में होते हैं और उनके विशिष्ट आयु समूहों के अनुसार शैक्षिक प्रणाली में शामिल होते हैं। हालांकि, सिर्फ प्रणाली में दाखिला लिया जाना ही पर्याप्त नहीं है, प्रणाली में स्तरों के माध्यम से पारित किया जाना भी उतना ही जरूरी है। नामांकन समानता की दिशा में पहला कदम लिंग निष्पक्षता लड़कियों और लड़कों के लिए उचित उपचार की प्रथा है। समाज में मौजूदा चुनौतियों से मुकाबला करने के लिए उचित उपचार कदमों की गारंटी लेनी चाहिए ताकि लिंग निष्पक्षता को हासिल किया जा सके।

निष्पक्षता का एक मूलभूत मानक सभी के लिए समान अवसर प्रदान कर रहा है और उन्हें अपनी क्षमता और प्रतिभा के आधार पर क्षेत्र में उत्कृष्टता प्रदान कर रहा है। मानदंड उनके लिंग, वित्तीय स्थिति या जाति पर आधारित नहीं होना चाहिए। यूएसएआईडी के प्रावधानों के अनुसार, नामांकन के समय लिंग समानता प्राप्त करने के लिए निष्पक्ष उपकरण जैसे छात्रवृत्ति स्थापित की जा सकती है। लिंग समानता प्राप्त करने का दूसरा तरीका उन विषयों में अतिरिक्त कोचिंग देना है जहां छात्रों की कमी है। उदाहरण के लिए, यूएसएआईडी/मिस्र ने 28,000 लड़कियों को समानता को कम करने के लिए शैक्षणिक व्यवस्था में दाखिला दिलाया है। तंजानिया में, यूएसएआईडी ने छात्रों को अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए विज्ञान शिविर प्रदान किया। इस तरह की निष्पक्ष योजनाएं बाद में लम्बे समय में लैंगिक समानता प्राप्त करने में मदद करती हैं। इन प्रावधानों को पर्याप्त रूप से लागू किया जाना चाहिए और शिक्षकों और समाज को अपने अस्तित्व के बारे में पता होना चाहिए। लैंगिक समानता प्राप्त करने की दिशा में प्रगति की एक छानबीन आवश्यक है और इसके लिए, डेटा पुरुषों और महिलाओं पर गतिविधियों में अंतर की स्थिति को स्पष्ट करना चाहिए।

यूएसएआईडी के काम के अनुसार, लड़कियों को शिक्षित करने के लिए एक सफल योजना में समता और साथ ही निष्पक्षता के मामले में समानता पर ध्यान देना आवश्यक है। एजेंसी ने टिप्पणी की है, कि लड़कियों की ओर से बदलावों को शिक्षा सुधार की एक सुसंगत समग्र रणनीति में एकीकृत किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

गुणवत्ता और समानता के बीच संबंध

विद्यालय में नामांकन पहला कदम है, लेकिन उसके बाद, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है। लेकिन यह अकेले समानता स्थापित नहीं करेगा। दोनों लिंगों के लिए समान अवसर प्रदान करना सबसे महत्वपूर्ण है। सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की गारंटी देने के लिए पहुंच, गुणवत्ता और प्रासंगिकता के बीच संतुलन स्थापित करने का एक साधन है। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए लिंग–संवेदनशील पाठ्यक्रम और शिक्षण तकनीक उपलब्ध कराने के द्वारा यह संभव हो सकता है।

शिक्षा में गुणवत्ता और समानता निकटता से जुड़े हैं। जो छात्र गरीब परिवारों के हैं, सबसे अधिक संभावना में, उनके माता–पिता अशिक्षित होंगे और स्वयं बहुत कुछ नहीं पढ़ पाएंगे। इसलिए, उन्हें शिक्षक से अधिक ध्यान देने की जरूरत है। पर्याप्त शिक्षा की अनुपस्थिति में, ये छात्र बुरी तरह से प्रदर्शन और शिक्षाविदों में रुचि खोने के लिए बाध्य होते हैं। लड़कियों में लड़कों की तुलना में शिक्षकों की गुणवत्ता से प्रभावित होने की अधिक संभावना होती है। कई अवसरों पर, शिक्षा आज के रोजगार और वयस्कता के लिए छात्रों को तैयार करने में असमर्थ होती है क्योंकि जीवन जीने के लिए और आत्मनिर्भर बनने के लिए उपयुक्त कौशल प्रदान नहीं किए जाते हैं।

सीखने के तरीकों में समानता

सीखने के तरीकों में समानता, लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए समान सीखने के अवसर प्रदान करना शामिल है। इस प्रक्रिया में भी पर्याप्त ध्यान देने और दोनों को समान रूप से प्रबंधित करना शामिल है। दोनों के लिए एक ही पाठ्यक्रम के लिए प्रावधान आवश्यक है और इस आधार पर शिक्षण शैली दोनों को समायोजित करने के लिए अनुकूलित किया जाना चाहिए। संपूर्ण शिक्षण प्रक्रिया किसी भी प्रकार के लिंग पूर्वाग्रह को प्रतिबिंबित नहीं करनी चाहिए और लेबल और टाइपकास्ट से मुक्त होना चाहिए। दोनों का अकादमिक और गैर–शैक्षिक कौशल का पता लगाने के लिए उपयोग होना चाहिए।

शैक्षिक उपलब्धियों की समानता

अकादमिक उपलब्धियों की समानता एक ऐसी प्रणाली को संदर्भित करती है जिसमें लड़कियों और लड़कों को अपने सपनों को पूरा करने और प्राप्त करने के लिए समान अवसर मिलना चाहिए। ये उपलब्धियां विद्यार्थियों के प्रयासों और प्रतिभाओं के अनुसार पूरी तरह से होनी चाहिए और उनके लिंग से प्रभावित किसी भी पूर्वनिर्धारित धारणा पर आधारित नहीं होना चाहिए। स्कूलों को छात्रों के हितों को प्रोत्साहित करना चाहिए और मूल्यांकन के सेट पैटर्न के आधार पर उनके प्रदर्शन का मूल्यांकन करने की हमेशा कोशिश नहीं करनी चाहिए। हालांकि मूल्यांकन प्रणाली आवश्यक है, यह केवल मापदंड नहीं होना चाहिए। ये प्रतिबंधित मूल्यांकन प्रतिभा और आत्मविश्वास के स्तर को रोक सकते हैं और छात्रों के दिमागों में संदेह पैदा कर सकते हैं। दोनों लड़कियों और लड़कों को अपने कैरियर की वरीयता का चयन करने के लिए समान स्वतंत्रता होनी चाहिए और उन्हें प्राप्त करने में सक्षम होने के समान अवसरों के साथ प्रदान किया जाना चाहिए।

2006 में अंतर्राष्ट्रीय छात्र आकलन कार्यक्रम (पीआईएसए) द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के मुताबिक, इस आयाम में लैंगिक समानता को प्राप्त करने में काफी अंतर था क्योंकि लड़कियों और लड़कों का आकलन उनके प्रदर्शन के आधार पर किया जा रहा था। गणित के लिए कम रुचि को दर्शाने के लिए लड़कियां हमेशा ही कम रही थीं, जबकि लड़कों ने गणित में बेहतर स्कोर बनाया। अकेले टेस्ट स्कोर को संकेतक नहीं माना जाना चाहिए। यह पता लगाया जाना चाहिए कि दोनों समान अवसर प्राप्त कर रहे हैं और कभी–कभी अगर प्रदर्शन एक ही स्तर पर है, तो यह जरूरी नहीं कि न्यायसंगत उपचार का संकेत मिलता है। इन पहलुओं ने कक्षा गतिशीलता को पर्याप्त रूप से व्याख्या करने के महत्व पर जोर दिया और यह पता लगाने की कोशिश की कि कैसे इन पहलुओं ने भविष्य के विकल्प और कैरियर विकल्प के सही चयन को प्रभावित किया।

टिप्पणी

लैंगिक भेदभाव

शिक्षा के लिए अधिक महत्व लड़कों को दिया जाता है लड़कियों को नहीं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 5–8 वर्ष की आयु के लगभग 80 प्रतिशत बच्चे स्कूल में दर्ज हैं शेष 20 प्रतिशत बच्चे निम्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के कारण कभी स्कूल नहीं गए। अनुसूचित जाति–जनजाति के बच्चों का औसत नामांकन बहुत कम है जबकि लड़कियों को स्कूल जाने के साथ–साथ घर की जिम्मेदारियां भी निभानी पड़ती हैं अतः उन्हें अपने स्कूल का गृह कार्य करने का समय नहीं मिला और सामान्यतः अनुपस्थित रहती हैं। लड़कियों द्वारा प्राथमिकता घरेलू कार्य को दी जाती है जबकि लड़कों द्वारा शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। लड़कियों को पुरस्कृत तब किया जाता है जब वे घर का काम ज्यादा करती हैं या छोटे भाई बहनों को अच्छी तरह संभालती हैं जबकि लड़कों को उनके स्कूल की परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने पर पुरस्कृत किया जाता है।

बदलता दृष्टिकोण

भारतीय समाज में लड़की के जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता है किन्तु शिक्षित परिवारों में और अन्य वर्ग की विचारधारा में अब निश्चित रूप से परिवर्तन आया है। कुछ समाज शास्त्रियों का मानना है कि यह परिवर्तन शिक्षित शहरी मध्यमवर्गीय महिलाओं में आई जागृति का परिणाम है। वे नहीं चाहतीं कि उनकी बेटियां भी दमन का जीवन व्यतीत करें। यह भी प्रकाश में आया है कि हाल के वर्षों में दिल्ली एवं मुंबई के शिक्षित वर्ग की महिलाओं में भ्रूण जांच परीक्षण के विषय में प्रतिकूल विचार उत्पन्न हुए हैं। इस विषय में राष्ट्र संघ की कुछ एजेंसियों यूनिसेफ एवं यूनिफेम के योगदान को हमेशा याद रखा जाएगा।

विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रतिभा एवं मानसिक योग्यताओं के संबंध में स्त्री और पुरुष दोनों समान हैं। कई क्षेत्रों में तो लड़कियों ने लड़कों से बेहतर प्रदर्शन किया है और उन क्षेत्रों में अपना नाम विख्यात किया है जो पहले पुरुष प्रधान क्षेत्र माने जाते थे। आज लड़कियों को पसन्द किया जाता है क्योंकि वे अपने माता–पिता से भावनात्मक स्तर पर निकटता निरन्तर बनाए रखती हैं।

लिंग के आधार पर असमानता को कम करने के लिए भरसक प्रयास किए गए हैं। शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी के परिणामस्वरूप ही यह सुधार संभव हुआ है।

टिप्पणी

इसी तरह स्कूलों में लड़कियों की भर्ती में भी इजाफा हुआ है। उच्च शिक्षा में भी स्थिति सुधरती नजर आ रही है। अतः कहा जा सकता है कि भारत में शनै–शनै लड़कियों के प्रति नजरिया बदल रहा है। लड़कियों का समाजीकरण पारम्परिक मान्यताओं, सामाजिक मानक एवं मूल्यों तथा परिवार एवं वैवाहिक संस्थानों से प्रभावित होता है अतः परम्परागत मान्यताओं को तोड़ते हुए हर वर्ग के लोगों के बीच नये सामाजिक प्रतिमान स्थापित करने होंगे। इसके अतिरिक्त परम्परागत विचारधाराओं और प्रथाओं में सुधार करना होगा। सामाजिक परिवर्तन के लिए मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन अत्यंत अनिवार्य है। लड़कियों के साथ लिंग के आधार पर असमानता तथा भेदभाव को दूर करने के लिए समान विकास तथा कानूनी नीतियों को अपनाना होगा।

2.3.3 लड़कियों की स्कूली शिक्षा : लड़कियों का नामांकन, प्रतिधारण एवं कारण

स्वतन्त्रता से अब तक देश में महिला साक्षरता दर में निःसंदेह वृद्धि हुई है। सन 1951 में स्त्री साक्षरता मात्र 9 प्रतिशत थी,जबकि 1991 में यह 40 प्रतिशत के लगभग पहुंच गई, किन्तु साक्षरता की तुलना में यह आंकड़े बहुत उत्साहजनक नहीं हैं। सन 1950–51 में प्रति 100 लड़कों की तुलना में प्राथमिक स्तर पर 39 लड़कियां, उच्च माध्यमिक स्तर पर 15 लड़कियां और उच्च शिक्षा में 13 लड़कियां थीं। जो 2013–14 में प्राथमिक स्तर पर 93 एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर 89 था। (डाटा स्रोत : U-DISE-NUEPA) स्त्री शिक्षा में वृद्धि होने के बावजूद भी इन आंकड़ों का आकलन हम लैंगिकता की दृष्टि से करें तो ये हमारे समाज में व्याप्त असमानता को दर्शाते हैं। इस संदर्भ में विमला रामचंद्रन (2016) लिखती हैं कि "सर्वविदित है कि शिक्षा में लैंगिक समानता और बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धता को प्रोत्साहन दिए जाने पर तीन अंतर्संबंधित मुद्दोंः शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था, समाज एवं संस्कृति की सर्वांगीणता, सामग्री एवं प्रक्रिया का प्रभाव होता है। "वास्तव में शिक्षा में इस लैंगिक असमानता को सामाजिक, क्षेत्रीय एवं स्थानीय संदर्भों में देखने की आवश्यकता है। भारत बहु–सांस्कृतिक एवं विविधताओं वाला देश है। यहां सामाजिक–आर्थिक विषमताओं एवं लैंगिक असमानताओं का जाल बिछा हुआ है। हालांकि सामाजिक एवं आर्थिक विषमताएं बहुत महत्वपूर्ण हैं परंतु फिर भी कुछ शोधकर्त्ता ये मानते हैं कि भारत में महिला शिक्षा को सांस्कृतिक विश्वास एवं रीतियां आदि अधिक प्रभावित करती हैं।

बालिकाओं की कम भागीदारी एवं विद्यालय छोड़ने की ऊंची दर के कारण

बालिकाओं के नामांकन व ठहराव को बढ़ाने हेतु किए गए अनेक प्रयासों के बावजूद शैक्षिक संस्थाओं में बालिकाओं के नामांकन की स्थिति पुरुषों के मुकाबले कम है। विद्यालय छोड़ने की दर बालिकाओं में बालकों के मुकाबले सार्थक रूप से अधिक है। ऐसे बहुत सारे कारक हैं जो कि बालिकाओं के नामांकन व ठहराव को प्रभावित करते हैं। इन कारकों को तीन विस्तृत क्षेत्रों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. पारिवारिक एवं सामाजिक कारक– इसके अंतर्गत चार प्रमुख कारण हैं जो बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करते हैं–

(अ) पारिवारिक परम्पराएं एवं कम उम्र में शादी

(आ) पर्दा प्रथा

(इ) सामाजिक एवं पारिवारिक अपेक्षाएं

(ई) शिक्षा का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उच्च व्यय

2. शैक्षणिक सुलभता तथा इसको प्रदान करने वाली व्यवस्थाओं में कमी–

(अ) घर से विद्यालयों की अधिक दूरी

(आ) विद्यालयी समय सारणी में लचीलेपन का अभाव

(इ) महिला अध्यापिकाओं की कमी

(ई) बालिका विद्यालयों की अनुपस्थिति।

3. शिक्षा की विषयवस्तु का बालिकाओं की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होना–

(अ) अव्यावहारिक शिक्षण विधियां

(आ) पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में बालिकाओं की उपेक्षा।

टिप्पणी

बालिकाओं की शिक्षा तक असमान पहुंच को प्रभावित करने वाले कारण

एक समाज का विकास समाज में प्रचलित शैक्षिक असमानता की सीमा से लगाया जा सकता है। लड़की/लड़के या पुरुष/महिला छात्रों के बीच शैक्षिक साधनों के असंतुलित आवंटन की घटना देश के विकास के हर चरण को भंग करती है। शिक्षा पर विश्व सम्मेलन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार, सभी बच्चों, विशेष रूप से लड़कियों, को 2015 तक गुणवत्ता की शिक्षा तक पहुंच होनी चाहिए थी। हालांकि, लक्ष्य अपरिहार्य है। राष्ट्र के विकास के लिए, किसी भी असमानता के बिना दोनों लिंगों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यूनेस्को द्वारा प्रदान किए गए आंकड़े बताते हैं कि लड़कों की तुलना में लड़कियों को समान शैक्षणिक अवसरों तक कम पहुंच है। नामांकन दर लगभग तुलनात्मक है लेकिन लड़कों की तुलना में लड़कियों के लिए निरंतरता की दर बहुत कम है। परिणामस्वरूप, पूरी दुनिया में लड़कियों को कम शिक्षा प्राप्त होती है। असमानता के लिए कई कारण जिम्मेदार होते हैं। बेहतर समझने के लिए, इन कारणों पर निम्न शीर्षकों के तहत चर्चा की गई है।

1. आर्थिक कारण

- **अभिभावकों का रवैया** : माता–पिता कभी–कभी एक लड़की की शिक्षा पर धन खर्च करने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। यद्यपि उनके पास बच्चों के लिए समान स्नेह होता है, उनके लिंग के बावजूद, उन परिवारों में जहां माता–पिता के धन में बाधाएं होती हैं, शिक्षा में निवेश करते समय माता–पिता लड़के के समर्थक होते हैं। बच्चों के कल्याण में माता–पिता का निवेश कभी–कभी लिंगीय पक्षपातपूर्ण हो सकता है। आम धारणा यह है कि वृद्धावस्था में बेटे अपने माता–पिता की देखभाल करते हैं।
- **विद्यालय का ऊंचा शुल्क** : उच्च विद्यालय की फीस लड़कियों को पर्याप्त शिक्षा तक पहुंचने से रोकती है, क्योंकि कुछ अवसरों पर माता–पिता अपना धन खर्च करने के लिए तैयार नहीं हैं। नतीजतन, या तो लड़की को शिक्षा से वंचित किया जाता है या स्कूल को बीच में छोड़ने के लिए कहा जाता है। माता–पिता परिवार के लड़के के लिए पर्याप्त शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए अपने धन का

टिप्पणी

प्रबंध करते हैं। शोवन गोश और सुष्मिता सेनगुप्ता ने एक लड़की की स्कूली शिक्षा की कीमत पर केस स्टडी आयोजित करते हुए महसूस किया कि यह अंतर बड़ा है और ग्रामीण भारत के गरीब परिवार इकाइयों में अधिक दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि इन क्षेत्रों में माता–पिता एक बच्चे को एक सुरक्षित भविष्य के लिए एक निवेश के रूप में शिक्षित करने पर विचार करते हैं। अधिकतर परिवारों में, बच्चों को शिक्षा की मात्रा तय करने में कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि वे अपने बच्चों को शिक्षित करने के खर्चों को सहन करते हैं, न कि स्कूल की फीस पर न केवल यात्रा पर भी लेकिन कई अप्रत्यक्ष लागतें और कई अन्य/अतिरिक्त गैर–शैक्षणिक गतिविधियों की लागत शामिल हैं। इसके अलावा, लड़कियों के मामले में, माता–पिता को सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं को बनाए रखने और सुरक्षा की गारंटी देने की अतिरिक्त लागत का सामना करना पड़ता है। इसलिए, एक लड़की की शिक्षा को शिक्षित करने की लागत लड़कों की तुलना में अधिक हो जाती है।

2. घरेलू कारण

- **घरेलू कार्य** : ग्रामीण क्षेत्रों में यह देखा गया है कि लड़कियां बहुत ही कम आयु में दैनिक घरेलू गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर देती हैं। बड़ी लड़की को कई मामलों में छोटे भाई–बहनों की देखभाल करनी होती है, जबकि माता–पिता अपने खेतों में काम करते हैं या अन्य नियमित कार्य करते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि इस जिम्मेदारी को ज्यादातर बेटियों द्वारा लिया जाता है, न कि परिवार के पुत्रों के द्वारा।
- **माता–पिता की इच्छा** : सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर फुलर और लिआंग के अनुसार, यदि घर का नेतृत्व करने वाली महिला होती है तो लड़की के शिक्षित होने की संभावना अधिक होगी क्योंकि महिला प्रमुख को निर्णय लेने का अधिकार होगा। एकल माता–पिता के परिवारों में वित्तीय संकट भी अधिक हो सकता है जिस वजह से बालिकाओं की शिक्षा अवरूद्ध हो सकती है।

3. विद्यालयी कारण

- **गैर–शैक्षणिक गतिविधियों में नगण्य भागीदारी** : स्कूल में बहुत ही कम लड़कियां गैर–शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि स्कूलों में लड़कियों को ऐसी गतिविधियों का एक हिस्सा बनने के लिए पर्याप्त सुविधाएं नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए, इनमें से अधिकतर गतिविधियां स्कूल के बाद होती हैं और कभी–कभी छात्रों को ऐसी गतिविधियों में भाग लेने के लिए परिवहन प्रदान नहीं किया जाता है। इसलिए, माता–पिता अकसर अपनी परवरिश को ऐसी गतिविधियों में शामिल होने से हतोत्साहित करते हैं। लड़कों की तुलना में खेल में लड़कियों की भागीदारी बहुत कम होती है। मुस्लिम लड़कियों को सांस्कृतिक प्रतिबंधों को भुगतना पड़ता है, जिससे उन्हें शॉर्ट परिधान पहनने से रोक दिया जाता है; उन्हें कपड़े बदलने या अपने घरों के अलावा किसी भी जगह में नहाने से रोका जाता है।
- **महिला शिक्षिकाओं की स्कूलों में कमी** : विकासशील देशों में, लड़कियों को महिला प्रशिक्षक की अनुपस्थिति के कारण लैंगिक असमानता का शिकार

होना पड़ता है। माता–पिता प्राथमिक स्कूल के बाद लड़कियों की शिक्षा को बंद करने की प्रवृत्ति रखते हैं। अन्य क्षेत्रों में लिंग की समानता नहीं हो रही है जिससे महिलाओं की आबादी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

टिप्पणी

- **गैर उपस्थिति** : लड़कियां स्कूल में अधिक अनियमित होती हैं, जो खराब ग्रेड की ओर ले जाता है। इसके लिए जिम्मेदार कारक कभी–कभी घर के कामकाज से संबंधित होते हैं, जिससे उन्हें स्कूल छोड़ना पड़ता है। कुछ मामलों में उचित स्वच्छता और शौचालयों की कमी को एक कारक माना जा सकता है क्योंकि मासिक धर्म चक्र के दौरान लड़कियों को शौचालय की सुविधा की आवश्यकता होती है।
- **स्कूलों में लड़कियों के लिए सुविधाएं** : माता–पिता लड़कियों के लिए स्कूल में सुरक्षित वातावरण चाहते हैं और वे सुविधाओं की कमी के बारे में लगातार चिंता करते हैं। कभी–कभी विद्यालय बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने में विफल होते हैं, जैसे साफ शौचालय या परिवहन। लड़कियों को कुछ पहलुओं पर अतिरिक्त सहायता और मार्गदर्शन और गोपनीयता की आवश्यकता होती है, जो स्कूल अकसर प्रदान करने में विफल रहते हैं। यह कम उपस्थिति की ओर जाता है। इससे कक्षाओं में छात्राएं पिछड़तीं हैं और उनका पढ़ाई में खराब प्रदर्शन दिखाना इसका परिणाम बनता है। यूनिसेफ मानकों के अनुसार, सभी छात्रों के लिए अलग–अलग और स्वच्छ शौचालय उपलब्ध कराना स्कूल के लिए अनिवार्य है।
- **शिक्षक का व्यवहार** : छात्रों के प्रति शिक्षक का रवैया एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक के रूप में है। जब छात्र स्कूल में अपने शिक्षकों के साथ सबसे ज्यादा बात करते हैं। यह देखा गया है कि कई अवसरों पर शिक्षक लैंगिक पूर्वाग्रहों का अभ्यास करते हैं। कुछ शिक्षक छात्रों के साथ बातचीत करते समय उपयोग की जाने वाली भाषा के प्रति सचेत नहीं होते हैं। शिक्षक कभी–कभी कक्षा में विशेष छात्रों की तरफ ध्यान देते हैं। कुछ कक्षाओं में लड़कियों के प्रति शिक्षकों के रुखे व्यवहार के कारण स्कूल छोड़ दिया जाता है।
- **घर के आसपास के क्षेत्र में स्कूलों की कमी** : एक और पहलू है, जो छात्राओं के लिए शिक्षा तक पहुंच कम कर देता है वह है स्कूल की दूरी। ग्रामीण क्षेत्रों में, माता–पिता स्कूल जाने के लिए दूरदराज के स्थानों की यात्रा करने के इच्छुक नहीं हैं। जब लड़कियों की बात आती है तो विद्यालय छोड़ने के लिए दूरी एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। इस मुद्दे पर किए गए कई अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि स्कूल की दूरी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि उनकी बेटी को दूर तक यात्रा करना पड़ता है तो माता–पिता अच्छा महसूस नहीं करते हैं। मनोवैज्ञानिक मैरी एन्सवर्थ के अनुसार, आसपास के स्कूलों में लड़कियों के नामांकन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

4. सांस्कृतिक कारण

- **कम उम्र में शादी** : माता–पिता अकसर अपनी बेटियों की एक बहुत कम उम्र में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शादी करते हैं। वे उनकी शिक्षा पूरी करने की अनुमति देने के लिए उत्सुक नहीं होते हैं। वास्तव में, यदि लड़की शिक्षित होती

टिप्पणी

है जो अधिकांश गांवों में माता–पिता असुरक्षित महसूस करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि वह अधिक योग्य होती है, तो इसे एक उपयुक्त लड़का पाने के लिए अधिक मुश्किल का सामना करना होगा। भारत की प्रोबई टीम (1999) ने पाया कि माता–पिता को लगता है कि उनकी बेटी के शिक्षित होने पर शादी की लागत बढ़ जाएगी। उनके अनुसार, गरीब परिवारों की लड़कियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोई भी प्रस्ताव प्राप्त करने की संभावना नहीं है। बांग्लादेश जैसे देशों में भी ऐसा ही मामला है।

- **किशोर गर्भावस्था** : कई शोधकर्ताओं ने लड़कियों के लिए शिक्षा के कम पहुंच के लिए काफी हद तक किशोर गर्भावस्था को कारण बताया है। अध्ययनों ने यह बताया है कि जो लड़कियां स्कूल में बुरा प्रदर्शन करती हैं या छोड़ने वाली होती हैं या निचली आर्थिक स्थिति से संबंधित होती हैं, वे किशोर गर्भावस्था के लिए अधिक ज़िम्मेदार होते हैं।
- **सांस्कृतिक विश्वास** : 2005 में एक गैर सरकारी संगठन सेव द चिल्ड्रन द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, धार्मिक विश्वासों और पारंपरिक मानदंड अकसर सबसे विकासशील देशों में पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करने से लड़कियों को रोकने के कारण हैं। कई संस्कृतियों में, यहां तक कि वर्तमान समय में, यह माना जाता है कि महिला की भूमिका घर का ख्याल रखना और बच्चों को संभालना है; और इन कार्यों को करने के लिए स्कूल शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती है। प्रोफेसर जेन फाल्किंगहेम और एग्नाला बेस्छेरी के अनुसार, ताजिकिस्तान जैसे देशों में, लड़कियों को आध्यात्मिक कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति है, जो उन्हें एक आदर्श पत्नी बनने के लिए कौशल प्रदान करता है। मुस्लिम समुदायों में 'पर्दा' या महिलाओं के एकांत की परंपरा, शिक्षा में लिंग असमानता के लिए योगदान करने वाला एक और महत्वपूर्ण कारक होता है। 2010 में यूनेस्को द्वारा किए गए शोध के अनुसार, अधिकांश विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक मूल्यों की मजबूत उपस्थिति है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज में कई जुड़े कारक होते हैं जिनका महिलाओं की आबादी के लिए शिक्षा की पहुंच पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कुछ मामलों में, लिंग दोनों के लिए कारक बनता है। यह अध्ययन इस तथ्य को उजागर करता है कि शहरी आबादी की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवारों की लड़कियों पर इन कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. पाठ्यपुस्तकों में लैंगिक भेदभाव का निम्न में से कौन–सा कारक है?

(क) रूढ़िबद्धता (ख) अलगाव

(ग) भाषाई भेदभाव (घ) ये सभी

4. पाठ्यक्रम का वाहक किसे माना जाता है?

(क) विद्यालय (ख) पाठ्यपुस्तक

(ग) शिक्षक (घ) समाज

2.4 लैंगिक समानता : नीतिगत हस्तक्षेप

टिप्पणी

लैंगिकता एवं लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए मानव अधिकार के रूप में महिला तथा आर्थिक वृद्धि पर विशेष ध्यान आकर्षित करते हुए सकारात्मक धारणा बनी। वैश्विक संस्थाएं जैसे यूनिसेफ ने लैंगिक समानता को इस प्रकार से परिभाषित किया है: लैंगिक समानता का अर्थ है कि पुरुष एवं महिला, लड़का या लड़की एक समान है तथा उन्हें एक समान अधिकार, स्रोत, अवसर एवं सुरक्षा के अधिकार प्राप्त होने चाहिए। इसमें यह नहीं होना चाहिए कि लड़का या लड़की एक जैसे हैं वरन इसका अर्थ यह है कि उन दोनों को एक जैसा समझना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संगठन की संस्था यूएनएफपीए ने भी मानव अधिकारों के प्रति अपना रुख स्पष्ट किया है तथा यह महसूस किया है कि 'अनेक मानव अधिकारों से संबंधित अनेक अंतरराष्ट्रीय समझौतों के हो जाने के बाद भी यह देखा जा रहा है कि महिला, पुरुष के समान नहीं है तथा वह निर्धन और अनपढ़ बनी हुई है। महिलाओं को, रोजगार प्रशिक्षण में एवं संपत्ति के अधिकार अभी तक नहीं दिए गए हैं। महिलाएं अभी तक भी राजनीतिक गतिविधियों से बहुत दूर हैं तथा घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। यह आवश्यक है कि लैंगिक समानता को बेहतर सामाजिक ढांचे के लिए आवश्यक माना जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि हम अरब देशों में महिलाओं के साथ होने वाली असमानता को देखें तो यह संयुक्त राष्ट्र की एक समिति द्वारा 2008 में बहुत ही निंदनीय घोषित की गई थी। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि इस प्रकार के भेदभाव के कारण ही पूर्व के आर्थिक रूप से समृद्ध राष्ट्र अभी भी विकसित राष्ट्र नहीं बन सके हैं। इस प्रकार के बर्ताव के कारण देश की सांस्कृतिक समृद्धि नहीं हो सकती है। अनेक पश्चिमी देशों ने तो यहां तक भी चेतावनी दी है कि यदि यह राष्ट्र किसी प्रकार का लैंगिक भेदभाव करते रहेंगे तो इन देशों के साथ उनके आर्थिक संबंध बेहतर नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार के बर्ताव एवं आचरण को बदलने की जरूरत है अन्यथा यह राष्ट्र अपने आर्थिक लाभ को खो सकते हैं। पिछले कुछ समय में लैंगिक समानता का विषय बहुत सावधानीपूर्वक लिया गया है। अनेक देशों ने कानून के द्वारा समाज में होने वाली असमानता को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के नियम लागू भी किए हैं। लैंगिक समानता को लागू करने के लिए यूरोपीयन संघ ने यूरोपीय लैंगिक समानता संस्थान की स्थापना वर्ष 2010 में की है। यह संस्थान विलनियस, लिथुआनिया (Vilnius, Lithuania) में स्थित है तथा इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था में लैंगिक समानता के प्रति जागरुकता को बढ़ावा देना है। इंग्लैंड सहित अनेक यूरोपीय देशों में लैंगिक समानता देश की शैक्षणिक व्यवस्था का प्रमुख पाठ्यक्रम भी कर दिया गया है। इन पाठ्यक्रमों में व्यक्तिगत सुरक्षा, स्वास्थ्य संस्कृति एवं सामाजिक विकास को पाठ्यक्रम तथा शोध का प्रमुख अंग बनाया गया है जिनका कि समाज के ऊपर परोक्ष प्रभाव पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों में अनेक शोधकर्ताओं ने अपने शोध कार्यों के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि लैंगिक असमानता एवं भेदभाव के कारण स्वास्थ्य एवं व्यक्तिगत विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या एवं फंड के अनुसार महिला सशक्तीकरण एवं लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न कार्यक्रमों को बनाते समय नीति निर्धारकों को यह चाहिए कि वह बहुत नियोजित प्रकार के कार्यक्रमों को ही सम्मिलित करें। इन कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य स्वास्थ्य, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक

अधिकार होने चाहिए। इसी प्रकार यूएनएफपीए के अनुसार इन कार्यक्रमों में केवल महिलाओं को ही नहीं वरन पुरुषों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए जिससे समानता स्थापित करने में महती सफलता प्राप्त हो सके।

लैंगिक समानता एवं महिलाओं के प्रति हिंसा

टिप्पणी

महिलाओं के प्रति असमानता दर्शाने के लिए आक्रामकता एक प्रमुख सूचक है। हमारे पुरुष प्रभुता वाले समाज में लैंगिक भेदभाव होने के कारण महिलाओं के खिलाफ अकसर हिंसा होती है। संयुक्त राष्ट्र घोषणा के अनुसार जिसमें महिलाओं के खिलाफ हिंसा के निवारण के तहत महिलाओं के खिलाफ होने वाले हिंसात्मक व्यवहार की सीमाओं को बिल्कुल स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। 'यह एक ऐसा कृत्य है जो सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत जीवन में किसी लिंग आधारित अवधारणा के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ हो जिसमें किसी महिला को शारीरिक, यौन संबंधी, मनोवैज्ञानिक हानि पहुंचाने का प्रयास हो या इस प्रकार की कोई धमकी दी गई हो। इस घोषणा के अनुसार इस प्रकार की लैंगिक हिंसा प्राचीन काल से होती रही है। महिला एवं पुरुष के मध्य शक्ति का वितरण भी असमान है तथा यही एक कारण है जिसके कारण दोनों के मध्य इस प्रकार का भेद होता है। इसमें यह भी कहा गया है कि पुरुष ने ही महिला के संपूर्ण विकास को सदैव समाज में रोकने का प्रयत्न ही किया है। पुरुष नहीं चाहता है कि महिला अधिक ज्ञान अर्जन करें तथा वह इस ज्ञान की योग्यता के आधार पर पुरुष के ऊपर अपना वर्चस्व स्थापित कर सके। यूरोप की काउंसिल के अनुसार महिलाओं को समानता के अधिकार देने की तरफ पहली पहल उनके खिलाफ होने वाली हिंसा को रोकना है। इस काउंसिल की इस्तांबुल में होने वाली कॉन्फ्रेंस में कहा है कि सभी प्रकार की लड़ाइयों को रोकने के लिए सबसे पहले यह अनिवार्य है कि वह महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा को रोके। यूएनएफपीए द्वारा कराए गए एक अध्ययन के अनुसार महिलाओं के खिलाफ होने वाले कुछ हिंसात्मक कृत्य दैनिक गतिविधियों का परिणाम होते हैं। यूएनएफपीए ने स्पष्ट रूप से कहा है कि,' कुछ विकासशील देशों में पत्नी की पिटाई करना, सम्मान के नाम पर हत्या कर देना, कन्या भ्रूण हत्या करना तथा दहेज के लिए हत्या कर देना महिलाओं को हानि पहुंचाने के लिए अभी भी किए जा रहे हैं। इस प्रकार के हिंसात्मक व्यक्तियों के द्वारा यह समझा जा सकता है कि यह असमानता के प्राथमिक स्रोत हैं। अनेक प्रकार के कानून बनाए गए हैं जिनके द्वारा इस प्रकार के व्यक्तियों को रोकने में मदद मिलती है तथा यह कानून महिला एवं पुरुष के संबंधों के इतर बनाए गए हैं।

मानवाधिकारों के यूरोपीयन न्यायालय तथा यूरोप की काउंसिल ने महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसात्मक विकृतियों को भी महिलाओं के खिलाफ होने वाली असमानता के रूप में व्यक्त किया है। इस्तांबुल कंवेंशन के आर्टिकल 3 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि महिलाओं के खिलाफ होने वाले हिंसात्मक कृत्यों को मानवाधिकारों का उल्लंघन तो माना ही जाता है एवं साथ ही साथ इसे महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव के रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए।

विश्व में कुछ ऐसे समाज भी हैं जिनमें महिलाओं के खिलाफ होने वाले हिंसात्मक व्यवहार के अभ्यास के लिए परिवार के पुरुष सदस्यों को उत्तरदाई ठहराया जाता है। इस प्रकार के कृत्य के द्वारा उस परिवार के पूर्व सदस्य दूसरे परिवार की महिलाओं से हिंसा करके बदला या प्रतिशोध लेने का कार्य भी करते हैं।

टिप्पणी

अनेक सार्वजनिक स्थलों पर इस प्रकार के इश्तिहार लगाए जाते हैं जिनसे कि गर्भपात एवं प्रसव पूर्व लिंग की जांच करने को अपराध की संज्ञा दी जाती है। समाज में व्यक्तियों को निरंतर इस बारे में जागरूक बनाया जा सकता है जिससे कि समाज में लिंगानुपात में उचित व्यवस्था बरकरार रहे। बीजिंग में होने वाले महिलाओं से संबंधित चौथे विश्व ट्रांसपरंट तथा संयुक्त राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन जो कि जनसंख्या एवं कार्यक्रमों की क्रिया से संबंधित था, में कहा गया है कि लैंगिक समानता तभी प्राप्त की जा सकती है जब प्रत्येक महिला को अपने संबंधित निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान कर दी जाए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एचआईवी एड्स जैसी बीमारियों की रोकथाम के लिए भी लैंगिक समानता आवश्यक है। यूएनएफपीए ने अपनी एक रिपोर्ट ने कहा है कि अनेक देशों में मातृ मृत्यु दर किस कारण से अधिक है क्योंकि उन देशों में महिलाओं के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं का सर्वथा अभाव पाया जाता है। और यदि कोई राष्ट्र अपने यहां पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं नहीं दे रहा है तो यह मानव अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है। अनेक राष्ट्रों में महिलाओं को लैंगिक स्वतंत्रता नहीं है तथा उन्हें जबरन विवाह करने के लिए विवश किया जाता है यहां तक कि बाल विवाह भी होते हैं। अधिकारों को ना देना भी महिलाओं के खिलाफ असमानता के रूप में देखा जाता है जैसा कि एमनेस्टी इंटरनेशनल के महासचिव ने भी कहा है कि,' 21वीं शताब्दी में यह अविश्वसनीय है कि अनेक देशों में बाल विवाह, वैवाहिक बलात्कार, गर्भपात तथा एक व्यक्ति के साथ संबंध रखना अभी भी जारी है। इस प्रकार की परंपराओं के द्वारा लैंगिक स्वास्थ्य तथा पुनरुत्पादन प्राप्त करना कठिन हो जाता है, मानवाधिकारों के उच्चायुक्त ने कहा है कि महिलाओं को उनके लिंग के हितों के अनुसार निर्णय लेने की स्वतंत्रता दे दी जानी चाहिए। जिसको इस रूप में 'महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा को लैंगिक तथा पुनरुत्पादन करने की भूमिका के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। महिला को अकसर संपत्ति समझा जाता है तथा उन्हें विवाह के लिए बेच दिया जाता है या फिर लैंगिकता के लिए मानव तस्करों के हाथों बेच दिया जाता है। महिलाओं के खिलाफ होने वाले अधिकांश हिंसात्मक कृत्य लैंगिक अपराध की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार की हिंसा से ग्रस्त व्यक्तियों को भाग्य के सहारे छोड़ दिया जाता है या किसी बांझ औरत को उसके पति द्वारा छोड़ भी दिया जाता है। अनेक देशों में यह चलन है कि विवाहित स्त्री अपने पति के साथ संबंध बनाने से मना नहीं कर सकती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कराए गए एक अध्ययन के अनुसार लैंगिक हिंसा तथा लैंगिक असमानता का प्रमुख कारण समाज में होने वाले लैंगिक पहचान का निर्माण है। इस प्रकार की समस्या के कारण के रूप में यह देखा जा सकता है कि महिलाएं सर्वथा शुद्ध रूप से उपलब्ध है तथा उनके ऊपर पुरुषों का अधिकार ललित आधार पर है।

महिलाओं द्वारा सामाजिक कार्य में संलिप्तता का प्रकार प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में अलग–अलग तरह से है। यह अंतर पारंपरिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं के आधार पर होता है। अनेक देशों की संस्कृतियों में महिला का परिवार से बाहर रहना स्वीकार्य नहीं होता है। अनेक एशियाई देशों में इस प्रकार की परंपरा 10 वीं शताब्दी तक चल रही थी। अनेक देशों में महिला की स्वतंत्रता को कानून के द्वारा भी नियंत्रित किया जाता। यमन में महिलाओं को अपने घर से बाहर अपने पति के बिना जाने की

आज्ञा नहीं होती है। उनके कानून की संख्या 15 के अनुसार महिलाओं को साथ चलने की पूर्ण स्वतंत्रता है यदि वे एक साथ रहने का चयन करते हैं। इसके बावजूद भी महिलाओं को अनेक धार्मिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं के कारण स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त नहीं। अनेक मुस्लिम देशों में महिलाओं के लिए पर्दे की परंपरा अभी भी चल रही है जैसे कि पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा भारत में।

टिप्पणी

कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव एवं समानता अभी भी इस विश्वास के कारण चल रही है कि स्त्री का कार्य घर संभालना होता है तथा वह एक गृहिणी होती है परंतु जब कोई महिला अपने लिए व्यवसायिक भूमि का चयन करना चाहती है तो उसे कार्यस्थल पर अनेक प्रकार की असमानताओं का सामना करना पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि महिलाओं का कार्य क्षेत्र से बाहर रहने के कारण आर्थिक विकास प्रभावित होता है। महिलाओं को कार्य क्षेत्र से बाहर रखने का मुख्य कारण उनके मातृत्व तथा पुनरुत्पादन अधिकारों का भी है। यह दो पहलू यूरोपीयन यूनियन की नीतियों में भी पूर्णतः स्पष्ट रूप से नहीं समझाए गए हैं। परंतु इसके बावजूद रोजगार देने वाले को गर्भवती कार्यकर्ता की नियमावली कथा पितृत्व छुट्टी निर्देशों को मानना ही होता है। कुछ महिलाओं को यह अनुबंध करना होता है जिसमें उन्हें बच्चा पैदा करने से रोका जाता है। अलबत्ता कुछ देशों में महिला को बच्चा पैदा करने से रोकना एक दंडनीय अपराध माना जाता है जिसके लिए रोजगार देने वाले को दंडित किया जाने का भी प्रावधान किया गया है।

कानून के प्रति जागरूकता तथा राष्ट्र निर्माण

अनेक प्रकार के ऐसे क्षेत्र हैं जिनको तुरंत समझने की आवश्यकता है जिससे कि लैंगिकता के बारे में सकारात्मक धारणा का निर्माण हो सके। लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार होना चाहिए, अन्य राजनीति में हिस्सा, संपत्ति, तथा आर्थिक स्थायित्व के लिए भी बराबर अधिकार दिया जाना चाहिए। विश्व संस्थाओं के द्वारा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के नियम एवं कानून बनाए गए हैं। इस प्रकार के नियमों की सार्थकता उसी स्थिति में सिद्ध हो सकती है जबकि महिला स्वयं में जागरूक एवं शिक्षित हो तथा शिक्षा के माध्यम से वह बनाए गए नियमों, कानूनों तथा उनके लागू करने एवं अपने अधिकार लेने के प्रति जागरूक हो।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि लिंग भेदभाव तभी समाप्त हो सकता है जब महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो तथा उनके लिए एक नियमबद्ध कानून व्यवस्था का प्रावधान किया गया हो। संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद 4डी में घोषणा की गई है जिसमें महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा को समाप्त करने के लिए वर्ष 1993 में यह कहा गया था कि राष्ट्र को चाहिए कि वह महिलाओं को उनके अधिकारों के बारे में बताएं तथा बताने के लिए एक स्वतंत्र यंत्रावली की स्थापना भी करें।

सुरक्षात्मक कानून बना देने से आक्रामकता के खिलाफ लड़ाई किसी काम की नहीं होती है। यदि पीड़ित व्यक्ति को अपने अधिकारों के बारे में नहीं पता है तो कानून का कोई लाभ नहीं। हंगरी में वैवाहिक बलात्कार से संबंधित करवाए गए सर्वे में पाया गया है कि 62 प्रतिशत महिलाएं ऐसी थीं जिन्हें कि यह पता ही नहीं था कि उनके खिलाफ किसी प्रकार की कोई हिंसा हो रही है।

टिप्पणी

नैरोबी केन्या में होने वाले 1985 के संयुक्त राष्ट्र विकास समिति के तीसरे विश्व सम्मेलन में यह प्रस्तावित किया गया कि लैंगिकता से संबंधित विचारधारा की अवधारणा को मुख्यधारा में लाना चाहिए। इस प्रकार की अवधारणा एक जन्म नीति से संबंधित होती है जिसमें महिला तथा पुरुष की भूमिका को नियोजित नीति क्रिया के द्वारा हल किया जाना चाहिए। इसका उद्देश्य सभी स्तरों पर ध्यान आकर्षित करना था जिससे कि संपूर्ण लैंगिक समानता प्राप्त की जा सके। इसमें लैंगिक मुख्यधारा को परिभाषित किया गया था जिसमें यह सुनिश्चित करने को कहा गया था कि लिंग से संबंधित परिप्रेक्ष्य तथा ध्यानाकर्षण लैंगिक समानता को सभी गतिविधियों की केंद्रीय भूमिका में होना चाहिए।

यूरोपीय काउंसिल की परिभाषा के अनुसार, लैंगिक मुख्यधारा में लाने का अभिप्राय, संगठन में नीति प्रमुख का विकास एवं उनका मूल्यांकन करना होता है। जिसमें सभी अवस्थाओं में, सभी स्तरों पर नीतियों में लैंगिक समानता के परिप्रेक्ष्य को सम्मिलित किया जा सके तथा जिसमें नीति निर्माण करने वालों को भी सम्मिलित किया जाए। इस उपागम का प्रयत्न यह है कि एक ऐसी गतिविधि तैयार की जा सके जिससे कि समानता की स्थिति प्राप्त की जा सके। मुख्यधारा में लाने की नीति के अलावा संयुक्त राष्ट्र तथा इसके आधिकारिक संगठनों ने लैंगिक समानता स्थापित करने के निरंतर एवं अनेक प्रयास किए हैं। यूनिसेफ ने समानता के मानवाधिकारों को बहुत स्पष्ट किया है कि लैंगिक समानता प्राप्त करने में लैंगिक भेदभाव सबसे प्रमुख तत्व है। यह भी विचार किया गया कि लिंग संबंधी पूर्व अवधारणा का सामना युवाओं को करना पड़ता है।

नीति प्राथमिकता क्रिया नियोजन जो कि एक दिवसीय कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य उन क्षेत्रों में कार्य करना है जिनसे कि लैंगिक समानता प्राप्त की जा सके।

भारत में कोई ऐसी विशेष नीति नहीं है जो भेदभाव रोधी हो तथा इससे संबंधित कोई कानून भी नहीं है जबकि लिंग समानता के लिए अनेक प्रकार के नियम एवं कानून उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए कानूनी नियंत्रण के लिए जैसे मातृत्व लाभ कानून 1961, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना 2005। भारत सरकार ने इन नियमों को इसलिए भी लागू किया है जिससे कि महिलाओं द्वारा महसूस किए जा रहे भेदभाव को समाप्त किया जा सके। इसी प्रकार से महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा को रोकने के लिए 2005 में एक कानून बनाया गया। अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग की महिलाओं के खिलाफ होने वाले आक्रामक व्यवहार को रोकने के लिए वर्ष 1989 में एक कानून बनाया गया है।

सरकार ने अनेक संवैधानिक समितियों का निर्माण किया है जिससे कि मानव अधिकारों की रक्षा हो सके, जिनमें प्रमुख हैं– राष्ट्रीय मानवाधिकार कमीशन तथा राष्ट्रीय महिला कमीशन। इन कमीशनों को यह उत्तरदायित्व दिया गया है कि वे जो क्रिया नीतियां बनाई गई हैं वह प्रभावी रूप से लागू हो तथा मानव अधिकारों तथा इनके दुरूपयोग को रोका जा सके। इन कमीशनों की एक कमी यह है कि प्रदेश सरकार इनके द्वारा सुझाए गए व्यक्तिगत शिकायतों के समाधान को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

टिप्पणी

2.4.1 लैंगिक न्याय समानता : संवैधानिक प्रावधान

हमारे भारतीय संविधान में लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने के लिए अनेक प्रावधान किए गए हैं। इनमें से कुछ मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं–

1. संविधान के अनुच्छेद 15(1) के अनुसार "राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।
2. महिलाओं के विकास के लिए अनुच्छेद 15(3) सबसे अधिक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान है। इसके अनुसार राज्य को यह शक्ति दी गई है कि वह स्त्रियों व बालकों के लिए विशेष कानून बना सके। महिलाओं के लिए विभेदकारी कानून बनाने की शक्ति राज्य को इसलिए दी गई है जिससे वे मातृत्व रूपी प्राकृतिक दायित्व को निभा सकें तथा सदियों से पुरुष प्रधान समाज के कारण उन पर हो रहे शारीरिक, मानसिक, आर्थिक व सामाजिक शोषण का सामना कर सकें।
3. अनुच्छेद 14 में भी महिलाओं को पुरुषों के समान ही कानून के समक्ष समानता तथा कानून के अनुसार संरक्षण का अधिकार दिया गया है।
4. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (ख) के अनुसार पुरुषों तथा स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन।

पंचायती राज में महिला आरक्षण

पंचायती राज में भी महिलाओं के लिए अनेक प्रावधान किए गए हैं। इस संबंध में निम्न अनुच्छेदों का उल्लेख करना आवश्यक है–

1. पंचायती संस्थाओं में आरक्षित पदः अनुच्छेद पद 243 घ (4) के अनुसार पंचायती संस्थाओं के प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कम से कम एक तिहाई (3/4) पद महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।
2. अनुच्छेद 243 (4) के द्वारा व्यवस्था की गई है कि नगरपालिका संस्थाओं में अध्यक्षों के पदों की कुल संख्या के कम से 1/3 स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे।

73वें और 74वें संविधान संशोधनों के अनुसार सभी राज्यों में कानून बनाकर महिलाओं के लिए 33% आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

अन्य प्रावधान

1. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 जिसमें स्त्री व पुरुष को समान कार्य के लिए समान वेतन मिलेगा।
2. 1955 का हिन्दू विवाह अधिनियम जो कि 1976 में संशोधित हुआ, इसमें परिपक्वता से पहले लड़की को अधिकार है कि उसका बाल विवाह न हो।
3. हिन्दू दत्तक तथा पालन–पोषण अधिनियम 1956 के तहत हिन्दू पुरुष तथा स्त्री पुत्र या पुत्री को कानूनी रूप से गोद ले सकते हैं।

टिप्पणी

4. अनैतिक तस्करी (निरोधक) अधिनियम 1956 को 1986 में संशोधित किया गया तथा पुनः दिया गया। इसके अनुसार स्त्री व पुरुष को लैंगिक शोषण करना, एक संज्ञेय अपराध है।
5. दहेज निषेध अधिनियम 1961 में तथा 1984 में संशोधन हुआ जिसके तहत महिलाओं पर क्रूरता एक संज्ञेय अपराध है। 1986 के दूसरे संशोधन में यदि महिला अपने विवाह के 7 वर्ष के भीतर आत्महत्या करती है तथा सिद्ध हो कि उस पर क्रूरता की गई है तो पति व ससुराल पक्ष को दण्ड दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त इंडियन पीनल कोड में एक नया क्रिमिनल अपराध 'दहेज हत्या' के रूप में जोड़ा गया है।
6. फैक्टरी एक्ट 1948 जिसे 1976 में संशोधित किया गया, के अंतर्गत यदि 30 महिलाएं कहीं कार्य करती हैं तो शिशु पालना गृह की स्थापना की जाए।
7. 1983 के क्रिमिनल लॉ के संशोधन के अनुसार सात साल की कैद साधारण बलात्कार के लिए 10 वर्ष की कैद कस्टोडियल रेप केस के संबंध में, व अधिकतम दण्ड आजीवन कारावास तक हो सकता है।
8. महिलाओं के अभद्र प्रस्तुतीकरण अधिनियम 1986 के नए संस्करण तथा सती निरोधक कानून 1987 की महिलाओं की गरिमा की रक्षा करने तथा उनके खिलाफ हिंसा तथा शोषण रोकने के लिए किए गए।
9. पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन का प्रतिषेध) अधिनियम 1994 के अनुसार भारत में कन्या भ्रूण हत्या और गिरते लिंग अनुपात को रोकने के लिए भारत की संसद द्वारा यह कानून पारित किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत प्रसव पूर्व लिंग–निर्धारण पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया गया है। और साथ ही प्री–नेटल डायग्नोस्टिक टेकनीक 'पी एन डी टी' एक्ट 1996 के तहत जन्म से पूर्व शिशु के लिंग की जांच पर पाबंदी है। यह अधिनियम प्रसव पूर्व निदान तकनीक के रूप में लिंग संबंधी लिंग–निर्धारण तथा लिंग चयनित उन्मूलन को रोकने और उसके दुरूपयोग पर रोक लगाता है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

यह कानून परिवार के अंदर हिंसा की शिकार और संबंधित मामलों से कष्ट पाने वाली महिलाओं के अधिकारों को प्रभावी सुरक्षा देने के लिए लागू किया गया है। इस कानून का लाभ यह है कि यह घरेलू संबंध में रहने वाली महिलाओं के लिए अन्य मौजूदा कानूनों की तुलना में तत्काल राहत देता है। इस कानून के तहत आवेदन का निपटान दंडाधिकारी द्वारा सूचना की तिथि से 60 दिनों के अंदर किया जाता है। इस कानून के प्रावधान घरेलू हिंसा के पीड़ित को एक अल्पावास गृह में रहने की सुविधा, तुरंत चिकित्सा सहायता और घर के बाहर रहने पर दी जाने वाली अन्य समान समर्थन सेवाएं देते हैं।

यह राज्य का कर्तव्य है कि वे गरीब, दरिद्र, महिलाओं और बच्चों को कानूनी सहायता प्रदान करें, जिनके पास घरेलू हिंसा संरक्षण कानून 2005 के तहत राहत हेतु कानूनी कार्यवाही के पर्याप्त साधन नहीं हैं। महिलाएं और बच्चे दोनों दंडाधिकारी के

टिप्पणी

पास शिकायत देकर कानूनी सहायता ले सकते हैं और घरेलू हिंसा के मामले में पी. डबल्यू.डी.वी.ए. 2005 के तहत राहत पा सकते हैं। गरीब या बेरोजगार महिलाएं और उनके बच्चे जिनके पास पर्याप्त साधन नहीं हैं, वकील द्वारा निःशुल्क सलाह और कानूनी सेवाएं दी जाती हैं। पूरे देश में मुफ्त कानूनी सहायता देने के लिए राज्य कानूनी सहायता बोर्ड, जिला कानूनी सेवा समिति और ताल्लुका कानूनी सहायता समिति का गठन किया गया है।

पीड़ित महिला और बच्चों को घरेलू हिंसा से होने वाले खतरों और असुरक्षाओं से सुरक्षित बनाने के लिए दंडाधिकारी द्वारा दिए गए आदेश के परिणामस्वरूप निम्न प्रावधान किए गए हैं–

- घर पर घरेलू हिंसा से बचाव।
- घर पर शांति और आराम का माहौल।
- धन, गहने आदि वापस पाना।
- चिकित्सा सहायता, सलाह और कानूनी सलाह।
- घरेलू हिंसा करने वाले व्यक्तियों द्वारा संविदा या संचार पर नियंत्रण।
- शारीरिक और मानसिक चोट या अन्य धन की हानि के लिए मुआवजा।
- विभिन्न अदालती शिकायतों में कानून के तहत कानूनी कार्यवाही का अधिकार।

बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006

बाल विवाह वह है जिसमें लड़के या लड़की की कम उम्र में शादी की जाती है। इस प्रथा का इतिहास काफी पुराना है। वर्तमान में विवाह के लिए लड़की की न्यूनतम आयु 18 वर्ष और लड़कों की न्यूनतम आयु 21 वर्ष है। इससे कम आयु में यदि विवाह होता है तो उसको बाल विवाह माना जाता है। इसको ही बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006 द्वारा प्रतिबंधित किया गया है।

18 वर्ष से अधिक लेकिन 21 वर्ष से कम उम्र का बालक जो विवाह करता है और उसके माता–पिता, संरक्षक अथवा वे व्यक्ति जिनकी देखरेख में बालक/बालिका हैं, वे सब इस विवाह के लिए दोषी माने जाएंगे। इसके अतिरिक्त जो भी व्यक्ति इस विवाह को सम्पन्न या संचालित करें, विवाह करने के लिए जो प्रोत्साहित करें, निर्देश दे या बाल विवाह को रोकने में असफल रहे ये सभी व्यक्ति इस अधिनियम के तहत दोषी माने जाएंगे। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मजिस्ट्रेट के विवाह निषेध संबंधी आदेश की अवहेलना करे वह भी दोषी है। बाल विवाह प्रतिषेध अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह–

1. बाल–विवाहों के अनुष्ठापन का ऐसी कार्यवाई करके, जो वह उचित समझे निवारण करे।
2. इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के प्रभावी अभियोजन के लिए साक्ष्य संग्रह करे।
3. बाल–विवाह के अनुष्ठापन का संवर्धन करने, सहायता देने या होने देने में अंतर्वलित न होने के लिए व्यष्टिक मामलों में सलाह दे या क्षेत्र के निवासियों को साधारणतया परामर्श दे।

4. बाल–विवाह के परिणामस्वरूप होने वाली बुराई के प्रति जागृति पैदा करे।
5. बाल–विवाहों के मुद्दे पर समाज को सुग्राही बनाए।
6. ऐसी नियतकालिक विवरणियां और आकड़े दे, जो राज्य सरकार निर्देशित करे।
7. ऐसे अन्य कृत्यों और कर्तव्यों का निर्वहन करे जो राज्य सरकार द्वारा उसे समनुदेशित किए जाएं।

टिप्पणी

जो भी 18 वर्ष से अधिक आयु का पुरुष वयस्क होते हुए, बाल–विवाह करेगा, वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रूपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से दंडनीय होगा। बाल विवाह कानून के तहत किसी महिला को कारावास की सजा नहीं दी जा सकती। उसको केवल जुर्माना भरना पड़ेगा।

महिलाएं एवं संपत्ति कानून

इस अधिनियम के प्रभाव में आने से पूर्व हिन्दू नारी का उसकी संपत्ति पर पूर्ण नियंत्रण नहीं था। उसके पास केवल सीमित संपत्ति थी। एक बार यदि उसकी मृत्यु हो गई तो यह संपत्ति उसके उत्तरभोगी के पास चली जाती थी न कि उसके उत्तराधिकारी के पास। हिन्दू नारी का संपत्ति में उसका वास्तविक एवं पूर्ण नियंत्रण प्रदान करने के उद्देश्य से 17 जून, 1956 को हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम लागू किया गया।

अब स्थिति यह है कि, एक हिन्दू महिला का स्वयं अर्जित अथवा भेंटस्वरूप मिली हुई या वसीयत के आधार पर प्राप्त किसी भी संपत्ति पर पूर्ण अधिकार है बशर्ते कि वह वयस्क हो। यदि वह उचित समझे तो अपनी संपत्ति का परित्याग कर सकती है, किसी को उपहारस्वरूप दे सकती है अथवा वसीयत द्वारा किसी के नाम कर सकती है। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 14(1) उसे स्वामित्व का अधिकार प्रदान करती है। इसके द्वारा महिलाओं को समान दर्जा प्रदान किया गया है। यह धारा महिलाओं को अधिकार प्रदान करती है। संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार, इसके प्रबंध एवं विशिष्ट उपभोग का अधिकार, अपनी इच्छा से त्यागने अथवा वसीयत बनाने का अधिकार तथा संपत्ति के स्वामी की मृत्यु होने पर संपत्ति उत्तरभोगी द्वारा संपत्ति के उत्तराधिकारियों को सौंपी जाए।

उपरोक्त संवैधानिक कानूनों के विवेचन से स्पष्ट है कि स्त्रियों को संविधान में पुरुषों की बराबरी का दर्जा ही नहीं दिया गया, अपितु उनकी प्रगति के लिए विशेष संवैधानिक उपबंध किए गए तथा समय–समय पर संसद द्वारा अनेक कानून बनाए गए।

2.4.2 कमेटियां, आयोग एवं नीतिगत घोषणाएं और लैंगिक समानता

महिला सशक्तीकरण एवं लैंगिक समानता को साकार करने के लिए सरकार की तरफ से भी प्रयास किए जाते हैं। कई बार ये प्रयास आंदोलनों द्वारा डाले गए दबाव के कारण होते हैं तो कई बार स्वतः ही समाज कल्याण की भावना से सरकार समय–समय पर विभिन्न नीतियों एवं योजनाओं को बनाने के लिए विभिन्न आयोगों का गठन करती है जो तय उद्देश्यों के लिए कार्यक्रम निर्धारित करती है। तत्पश्चात इन नीतियों के सफल क्रियान्वयन का प्रयास किया जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने

के लिए एवं उनको समाज में सम्मानित स्थान दिलाने के लिए समय–समय पर विभिन्न आयोगों का निर्माण किया और उसमें स्त्री शिक्षा के लिए प्रावधान रखे गए जो लैंगिक समानता के लिए बहुत बड़ा कदम था।

टिप्पणी

भारतीय संविधान में धारा 15(3) में स्त्रियों और बच्चों के लिए शिक्षा की विशेष व्यवस्था बनाने की सरकार को छूट दी है। धारा 45 में 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। यह फैसला सुप्रीम कोर्ट द्वारा लिया गया था जिसमें शिक्षा के अधिकार को मूलाधिकार माना गया था। और इसको संविधान की धारा 21 में दिए गए जीने के अधिकार के साथ जोड़ दिया गया है। धारा 46 में कमजोर वर्गों खासकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की शिक्षा और आर्थिक हितों के संरक्षण पर जोर दिया गया है।

आयोगों एवं समितियों की रिपोर्ट

प्रमुख आयोग एवं समितियों का विवरण इस प्रकार है–

1. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53)

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारत में महिला साक्षरता दर केवल 6 प्रतिशत थी जो यह इंगित करता है कि महिलाओं की शिक्षा को लेकर समाज में न तो जागरूकता थी और न ही इसको प्राथमिकता दी जाती थी। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जो नीतियां बनीं उनमें स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए प्रावधान किए गए। हालांकि आज उनको पढ़कर यह लग सकता है कि ये बेहद सीमित प्रयास थे परंतु उस समय स्त्री शिक्षा की दिशा में ये बहुत ही महत्वपूर्ण कदम थे। चूंकि उस समय मानसिकता ऐसी थी कि लोग बालिकाओं को पढ़ाना ही नहीं चाहते थे, विद्यालय भेजना तो दूर की बात थी। ऐसे में ये भरोसा बनाना जरूरी था कि लड़कियां पढ़–लिख कर घर को बेहतर तरीके से संभाल सकती हैं। इसलिए 1952 में आए माध्यमिक शिक्षा आयोग में स्त्री शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य उनको एक ऐसी घरेलू महिला बनाना था जिसके लिए उसका परिवार ही सबसे महत्वपूर्ण हो। इस आयोग ने लड़कियों के लिए नर्सिंग, टीचिंग, कला, संगीत एवं नृत्य शिक्षा को सर्वोचित माना। यह एक विरोधाभास था कि एक तरफ तो महिलाओं को शिक्षा देकर उनसे राष्ट्र निर्माण में आर्थिक सहयोग की उम्मीद की जा रही थी तो दूसरी तरफ उनकी शिक्षा के लक्ष्य को बेहद सीमित दृष्टिकोण से देखा जा रहा था।

2. राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958–59)

1957 में स्त्री शिक्षा के मुद्दे को प्रमुखता से उठाते हुए एवं इस दिशा में अध्ययन के लिए एक समिति के गठन का प्रस्ताव पास किया गया। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख जी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति कहा गया। इस समिति ने सुझाव दिया कि आने वाले कई वर्षों तक स्त्री शिक्षा के मुद्दे को हर समिति एवं नीति में शामिल किया जाए। इस समिति ने पुरुष एवं स्त्री शिक्षा के बीच की दूरी को भरने का भी सुझाव दिया। इसके लिए कहा गया कि लड़कियों को परंपरागत पाठ्यक्रम के साथ–साथ वाणिज्य, इंजीनियरिंग एवं मेडिसिन जैसे पाठ्यक्रम भी पढ़ाए जाए। इसके लिए लघु अवधि के लिए कोर्स चालू किए जा सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा मद के लिए आबंटित राशि को स्त्री शिक्षा पर भी उचित प्रकार से खर्च किया जाए। केंद्र

सरकार को स्त्री शिक्षा के लिए आगे बढ़कर कदम उठाने होंगे। राज्य सरकारें भी स्टेट काउंसिल का गठन करें और स्त्री शिक्षा का प्रचार–प्रसार करें एवं इसके लिए योजनाओं का निर्माण करें। प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के नामांकन को बढ़ाने के लिए गरीब परिवारों की सहायता की जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष कदम उठाने चाहिए। गांव–कस्बों आदि में बच्चियों का दाखिला विद्यालय में करवाने पर इनाम देने की व्यवस्था की जाए। अत्यधिक गरीब घरों के बच्चों को मुफ्त शिक्षा दी जाए। इसके अलावा इस समिति ने बालिकाओं के लिए अन्य विषय के अतिरिक्त उनको संगीत, कला, पाक–कला, नृत्य, सिलाई–बुनाई आदि सिखाने का समर्थन भी किया। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए अधिक सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाएं। साथ ही यह भी सुझाव दिया कि माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा लड़कों की शिक्षा से अलग होनी चाहिए। इसके अलावा अध्यापिका की ट्रेनिंग के लिए शिक्षण संस्थाएं खोलने का महत्वपूर्ण सुझाव भी इस समिति ने दिया।

टिप्पणी

3. हंसा मेहता समिति (1961–62)

स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने में अगली कड़ी दि नेशनल काउंसिल फॉर वीमेन्स एजुकेशन द्वारा गठित हंसा मेहता समिति थी जिसकी अध्यक्ष हंसा मेहता थीं। इस समिति का प्रमुख उद्देश्य हर स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा में आने वाले अवरोधों को दूर करना, उनकी पाठ्यक्रम संबंधी समस्याओं को हल करना एवं स्त्री शिक्षा के विकास के लिए सुझाव देना था। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 1962 में दिया। इस रिपोर्ट में सुझाव दिया गया कि किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र में व्यक्ति के पास अपनी शिक्षा के चयन का अधिकार उसकी अपनी योग्यता, रुचि एवं रुझान के अनुसार होना चाहिए न कि उसके लिंग के आधार पर उसको शैक्षिक अवसर प्रदान किए जाएं। समाज में बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा में भेदभाव नहीं होना चाहिए। इस समिति ने प्राथमिक स्तर पर लड़के एवं लड़कियों के लिए एक जैसी शिक्षा व्यवस्था एवं समान पाठ्यक्रम का सुझाव दिया जबकि माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर अलग–अलग पाठ्यक्रम रखने का सुझाव दिया। जैसे लड़कियों के लिए उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह–विज्ञान,संगीत एवं कला जैसे विषयों को चयनात्मक विषय के रूप में रखने का सुझाव दिया जबकि लड़कों के लिए ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया गया। इसके अलावा इस समिति ने पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करते समय लिंग समानता का ध्यान रखने की सिफारिश की। माध्यमिक स्तर पर सेक्स एजुकेशन देने का सुझाव भी इस समिति द्वारा दिया गया। यह पहली ऐसी समिति थी जिसने शिक्षा में व्याप्त लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने की ओर इस दिशा में कदम उठाने की बात कही थी।

4. भक्तवत्सलम कमेटी (1963)

'दि नेशनल काउंसिल फॉर वीमेन्स एजुकेशन' ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के लिए लोगों के समर्थन न देने के कारणों को जानने के लिए भक्तवत्सलम कमेटी का गठन किया। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिए कि महिला शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए राज्यों को कदम उठाने होंगे, उनको सेमिनार एवं कॉन्फ्रेंस करवानी होंगी। रेडियो पर प्रचार किया जा सकता है और इस संबंध में साहित्य द्वारा प्रचार किया जा सकता है। महिला स्वयंसेवकों की नियुक्ति जिससे वे स्त्री शिक्षा के बारे में

टिप्पणी

लोगों को जागरूक बनाए और लड़कियों को विद्यालय तक ला सकें। कन्या विद्यालयों में महिला अध्यापिका की और सह–शिक्षा में अधिक से अधिक महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाए। वे महिला अध्यापक जो विवाह के उपरांत पढ़ाना छोड़ देती हैं, उनको वापस लाने के प्रयास किए जाएं। केंद्र सरकार को स्त्री शिक्षा के लिए चलाए जा रहे विशेष कार्यक्रमों के लिए फंड की व्यवस्था करनी चाहिए। सभी राज्यों को माध्यमिक स्तर तक स्त्री शिक्षा को मुफ्त बनाने के प्रयास करने चाहिए और इसके लिए फंड भी देना चाहिए। इनमें भी ग्रामीण क्षेत्रों की बालिकाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इस प्रकार इस समिति ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के विकास के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

5. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66)

1964 में डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में बना राष्ट्रीय शिक्षा आयोग जिसे हम कोठारी कमीशन के नाम से ही जानते हैं, एक ऐसा आयोग था जिसने भारतीय शिक्षा के लिए मील के पत्थर का काम किया। इस समिति की रिपोर्ट में कहा गया कि हमारे मानव साधनों के सम्पूर्ण विकास के लिए महिला शिक्षा, पुरुषों की शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। एक शिक्षित महिला की भूमिका अब घरेलू महिला से आगे बढ़कर हो गई है। वह केवल घर और बच्चों को ही नहीं संभालती बल्कि पुरुषों के बराबर जिम्मेदारियों को निभाने में अपना योगदान देती है। जिस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए महिलाएं कंधे से कंधा मिलाकर पुरुषों के साथ चली थीं उसी प्रकार वे अपना योगदान समाज में व्याप्त गरीबी, भुखमरी, अस्वस्थता आदि से लड़ने में भी दे सकती हैं। इस कमेटी ने, नेशनल काउंसिल फॉर वीमेन्स एजुकेशन द्वारा गठित दोनों समितियों (हंसा मेहता समिति, भक्तवतसलम कमेटी) की सभी सिफारिशों को स्त्री शिक्षा के संदर्भ में पूर्णतः समर्थन दिया और इन दोनों समितियों की सभी सिफारिशों को लागू करने की सिफारिश की। इसके साथ ही इस समिति ने उस समय की जरूरत को देखते हुए पहली बार महिलाओं को रोजगारपरक शिक्षा एवं प्रशिक्षण देने की बात कही। इसमें कहा गया कि महिलाएं केवल कला एवं गृह विज्ञान ही न सीखे बल्कि अपनी इच्छानुसार गणित, विज्ञान एवं व्यावसायिक प्रशासन जैसे विषयों की शिक्षा भी ग्रहण करें। लड़कियों के लिए उनकी शिक्षा के दौरान छात्रावास की व्यवस्था भी की जाए एवं उनको छात्रवृत्तियां भी प्रदान की जाए। प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च–माध्यमिक सभी स्तर पर स्त्री शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए। इसके लिए शिक्षा व्यवस्था में महिला शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए जिससे लड़के एवं लड़कियों की शिक्षा के बीच व्याप्त अंतर को समाप्त किया जा सके। इस तरह की शिक्षा के लिए योजनाएं बनाने एवं उनके क्रियान्वयन के लिए फंड की व्यवस्था को प्राथमिकता दी जाए। केंद्र एवं राज्य दोनों को मिलकर स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाने होंगे। महिला शिक्षा को बढ़ावा देने से संबंधित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं योजनाओं के लिए आधिकारिक एवं गैर–सरकारी संगठन साथ मिलकर कार्य करें और ये विशेष कार्यक्रम तब तक लागू किए जाए जब तक स्त्री एवं पुरुष शिक्षा में व्याप्त अंतर समाप्त न हो।

इसके अतिरिक्त महिला रोजगार एवं प्रशिक्षण से संबंधित समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए। आयोग द्वारा यह भी सिफारिश की गई कि 1961 की जनगणना के अनुसार लाखों महिलाएं, जिनकी उम्र 24 वर्ष से कम व शिक्षा 12वीं तक है और जो केवल घरेलू कामों में कार्यरत हैं वे राष्ट्र के निर्माण में अपना बहुमूल्य

सहयोग दें। यह भी सिफारिश की गई कि जो महिलाएं अविवाहित हैं उनको पूर्णकालिक रोजगार प्रदान किया जाना चाहिए। विवाहित महिलाओं के पास बच्चों के स्कूल जाने लायक होने के बाद काफी समय रहता है। ऐसे में वे अध्यापन, नर्सिंग, सामाजिक सेवा जैसे कार्यों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

टिप्पणी

बालक एवं बालिका के लिए अलग पाठ्यक्रम के मुद्दे पर भी समिति अपनी राय व्यक्त करती है। इस समिति के अनुसार शिक्षा, व्यक्तिगत क्षमताओं, रुचियों एवं योग्यताओं से प्रभावित होती है जो लिंग आधारित नहीं है इसलिए लड़के एवं लड़कियों के लिए अलग पाठ्यक्रम की आवश्यकता नहीं है। साथ ही समिति ने यह भी स्पष्ट किया कि स्त्री एवं पुरुष के बीच कुछ मनोवैज्ञानिक अंतर है जिसके आधार पर वे कुछ सामाजिक कार्य कर सकते हैं और इस आधार पर लड़के एवं लड़कियों के लिए अलग पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है। परंतु इस बात का ध्यान रखा जाए कि ये अलग पाठ्यक्रम उनके विकास में किसी भी प्रकार से बाधक न हों। यह आयोग दसवीं तक समान पाठ्यक्रम की बात करता है और इसके बाद कार्य अनुभव एवं भाषा के लिए ही चयन की सुविधा होनी चाहिए। इसके लिए समिति ने कुछ अन्य सुझाव दिए–

- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर गृह–विज्ञान भी एक विकल्प होना चाहिए। परंतु यह विकल्प लड़कियों के लिए अनिवार्य नहीं होना चाहिए।
- संगीत एवं कला को भी शामिल किया जाना चाहिए। इनको बड़े स्तर पर सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- लड़कियों को गणित एवं विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और गणित एवं विज्ञान पढ़ाने के लिए महिला अध्यापिकाएं भी होनी चाहिए।

इसके बाद यह समिति उच्च शिक्षा में स्त्री की बात करती है। समिति यह रेखांकित करती है कि उच्च शिक्षा में महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत काफी कम है। 1955–56 में केवल 13 प्रतिशत महिलाएं नामांकित थीं एवं 1965–66 में लगभग 21 प्रतिशत। लड़कों एवं लड़कियों का शिक्षा में अनुपात 4:1 था। यह अनुपात बदलते भारतीय समाज के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में बाधक है। महिलाओं का उच्च शिक्षा में नामांकन बढ़ाने के लिए समिति ने दो प्रमुख सुझाव दिए–

- विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाली महिलाओं को आर्थिक सहयोग एवं छात्रवृत्ति प्रदान की जाए।
- महिलाओं के लिए सस्ते छात्रावास उपलब्ध करवाए जाए जहां उनकी मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सुविधाएं उपलब्ध हो। इसके लिए केंद्र एवं राज्य सरकारें दोनों ही अनुदान दें ताकि मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियां उच्च शिक्षा का लाभ उठा सके।

इस प्रकार इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में स्त्री शिक्षा के बहुत सारे पहलुओं पर अपनी राय दी और स्त्री शिक्षा की दिशा में एक कदम और बढ़ाने में मदद की।

6. फूलरेनु गुहा समिति (1971–1974)

1971 में महिलाओं की स्थिति को जानने–समझने के लिए एक डॉ. फूलरेनु गुहा की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया गया। इस समिति द्वारा बनाई गई रिपोर्ट को 'towards equality' या 'समानता की ओर' कहा जाता है। इस रिपोर्ट में भारत में

टिप्पणी

महिलाओं की स्थिति का बहुत विस्तृत अध्ययन करने के बाद उसका वर्णन एवं विश्लेषण किया गया है। इसमें महिला जीवन के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं की जांच–पड़ताल की गई है। इस रिपोर्ट में बहुत सारी चौंकाने वाली बातें सामने आईं। इस अध्ययन में यह पाया गया है कि स्वतन्त्रता के लगभग 25 वर्ष बाद भी स्त्रियों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया है। इस रिपोर्ट में महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह एवं परिवार, कानून, आर्थिक भागीदारी आदि जैसे मुद्दों पर स्त्री की स्थिति को जानने की कोशिश की गई है। इन सभी स्थितियों में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। केवल शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन जरूर बढ़ा है।

नीतियां

भारत सरकार के द्वारा लैंगिक समानता को स्थापित करने के लिए प्रत्येक स्तर पर शिक्षा में अनेक प्रकार के कदम उठाए गए हैं। इनमें से 1986 में राष्ट्रीय शैक्षिक नीति का बनाया जाना प्रमुख है जिसे वर्ष 1992 में संशोधित भी किया गया था। इसी प्रकार महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति 2001 के द्वारा भी प्रयास किया गया है। इस नीति के अंतर्गत इस प्रकार का पाठ्यक्रम बनाया गया है कि वह संपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था में लिंग भेद रहित व्यवस्था को स्थापित करने में सहायक हो सके। इसके अतिरिक्त भारत की राष्ट्रीय नीति में बढ़ावा, पढ़ाना तथा रोजगार देना भी सम्मिलित किया गया है। भारत सरकार के विभाग राष्ट्रीय शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण के द्वारा भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम को अनुमोदित किया गया है जिसके द्वारा लैंगिक हितों का ध्यान रखा जाए। इसके अंतर्गत पाठ्यक्रम में इस प्रकार से संशोधन किए गए जिनके द्वारा लिंग भेद की समस्या का समाधान किया जा सके जिनको वर्ष 1975, 1988 से 2000 एवं 2005 में संशोधित भी किया जाता रहा है। इन संशोधनों की आवश्यकता समय अनुसार महसूस की जाती रही है। शिक्षा में लिंग संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं जिसके द्वारा वैश्विक एकीकरण आधुनिकता तथा तकनीकी विकास भी सम्मिलित किया गया है। स्वतंत्र तथा पक्षपात रहित लैंगिक समस्याओं के समाधान तथा आर्थिक विकास के लिए भी यह आवश्यक है। वर्तमान समय में यह अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हो गया है कि परंपरागत सोच, उपागम तथा प्रतिमानों को परिवर्तित करने की आवश्यकता हो गई है जो कि, परिवार, समुदाय, विद्यालय एवं कार्यक्षेत्र में चलकर हो सकती है।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रजातांत्रिक व्यवस्था प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के विद्यालयों से संबंधित लिंग समस्याओं को एक साथ ही तथा समग्रता के साथ समाधान किया जाए। भारत सरकार के द्वारा इस समस्या के समाधान के लिए निरंतर एवं अनेक कदम उठाए गए। इनमें से कुछ विधिक रूप से लिए गए कार्यक्रम भी है जिसमें की शिक्षा के क्षेत्र में आने वाले लैंगिक पक्षपात को सम्मिलित किया गया है। वर्ष 2009 में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान प्रारंभ किया गया था जोकि माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए था। इसी प्रकार से माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी ध्यान देने की आवश्यकता है जिसमें 14 से 18 वर्ष के बालक बालिकाएं अध्ययन करती हैं। यह 14 से 18 वर्ष तक के बालक–बालिकाएं संपूर्ण जनसंख्या का 1/5 भाग है। माध्यमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा की तरफ जाने में यह एक संक्रमणकालीन समय होता है। इस समय बचपन से युवावस्था की तरफ जाते हैं तथा यह किशोरावस्था गुणवत्ता वाली शिक्षा

तथा उच्च गुणवत्ता वाली समझ उत्पन्न करने का होता है। इस प्रकार की नीतियों के द्वारा बालक बालिकाओं का उज्ज्वल भविष्य बनाया जा सकता है तथा उन्हें उचित शिक्षा व प्रशिक्षण देकर रोजगार की तरफ भी ले जाया जा सकता है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आरएमएसए (The Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan, RMSA) प्रोग्राम को लागू किया गया जिसमें वर्ष 2005–6 में 75 प्रतिशत जनसंख्या को सम्मिलित करने का निर्धारित किया गया था जो कुल जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत था। इस नीति के द्वारा माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के मानकों में बेहतरी करने का लक्ष्य था तथा इसके द्वारा सामाजिक बाधाओं को दूर करते हुए लैंगिक भेदभाव को दूर करना भी था। आरएमएसए नीति के तहत समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए गुणवत्ता वाली शिक्षा देना था तथा समाज के अल्पसंख्यक तथा कमजोर वर्गों को भी इसमें सम्मिलित किया गया था। इस नीति के अंतर्गत निर्धन वर्ग की छात्राओं को विद्यालय में प्रवेश लेने एवं शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित भी किया गया था जैसे कि महिला अध्यापकों को रोजगार देना, बेहतर शौचालय की व्यवस्थाएं प्रदान करना इत्यादि सम्मिलित था।

टिप्पणी

आरएमएसए द्वारा बनाई गई नीति का प्रमुख ध्यानाकर्षण लड़कियों की शिक्षा तथा लिंग भेदभाव से संबंधित उपागमों में रुढ़िवादी तथा परंपरागत नीतियों में परिवर्तन करना भी सम्मिलित था। विद्यालय निरंतर इस प्रकार के प्रयास करते रहे कि वे इन समस्याओं को समय रहते ठीक कर सकें। वर्ष 1952–53 में बनाए गए माध्यमिक शिक्षा कमीशन के द्वारा व्यावसायिक प्रतियोगिता नेतृत्व करने की क्षमता में वृद्धि करना तथा व्यक्तित्व निखार जैसी व्यवस्थाओं को सम्मिलित किया गया था। यह नीति विभिन्न क्षेत्रों, जैसे मानविकी तथा सामाजिक क्षेत्र में थी जोकि माध्यमिक शिक्षा में आवश्यक कर दी गई थी। इस नीति को इस समस्या के निराकरण के लिए बहुत उपयोगी माना गया तथा इसके द्वारा देश के नागरिकों में अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होने में सहायता मिली। इसका उद्देश्य यह भी था कि विद्यालय ऐसी संस्थाएं हैं जो सही सामाजिक संज्ञान के साथ छात्रों में समानता की शिक्षा देने में सहायक हो सके।

नीति से संबंधित विशेषज्ञों ने यह महसूस किया कि विद्यालय ही ऐसी संस्थाएं हैं जो छात्रों में सही सामाजिक विकास उत्पन्न कर सकती हैं इस कारण से इस नीति में इस बात पर बल दिया गया कि वह तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में इस प्रकार की विषय सामग्री सम्मिलित करें जिनके द्वारा लिंगभेद की समस्या के समाधान की संभावना उपलब्ध हो तथा इसमें अत्याधुनिक तकनीक का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया हो।

CABE समिति 2005 में बनाई गई थी जिसने माध्यमिक शिक्षा में दोनों ही लिंगों के छात्रों के लिए द्वितीय स्तर माध्यमिक शिक्षा की आवश्यकता को वर्ष 2016 तक पूरा करने की आवश्यकता पर बल दिया गया था। इसके द्वारा वर्ष 2015 तक उद्देश्य पूरा करना था तथा 18 वर्ष तक के छात्रों के लिए यह समय सीमा वर्ष 2020 थी। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा नीति के अनुसार यह काल शारीरिक परिवर्तन का होता है जिसमें बालक बालिका की पहचान बनती है। साथ ही इस समय छात्रों में बहुत ऊर्जा होती है। इस समय काल में छात्र अपने आसपास होने वाली घटनाओं के बारे में प्रश्न पूछते हैं एवं उनके कारणों को भी जानने का प्रयत्न करते हैं। इस अवस्था में बच्चों का व्यक्तिगत विकास होता है तथा इस कारण आसपास का माहौल बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है।

टिप्पणी

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968

भारत की प्रथम शिक्षा नीति 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति थी। इस नीति ने कोठारी आयोग की लगभग सारी मुख्य सिफारिशों को मानने पर बल दिया। साथ ही इस नीति पर बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान देने को कहा गया। इसके लिए विशेष राशि आबंटित करने की सिफारिश की गई। लड़कियों के लिए व्यावसायिक शिक्षा की कमी को सुधारने के लिए आई.टी.आई एवं पोलिटेक्नीक की स्थापना करने का सुझाव दिया गया। इनमें पढ़ने वाली लड़कियों के लिए रोजगार का प्रबंध करने का सुझाव भी दिया गया।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 को शिक्षा में समानता के मूल्य को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण माना गया। इसमें शिक्षा को महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में देखा गया है। यह नीति स्पष्ट रूप से महिलाओं के लिए शिक्षा व्यवस्था को मजबूत करने को अपना प्रथम लक्ष्य मानती है। "अतीत से चली आ रही विकृतियों और विषमताओं को खत्म करने के लिए शिक्षा व्यवस्था का स्पष्ट झुकाव महिलाओं के पक्ष में होगा।" (NPE, 1986)

शिक्षा द्वारा महिलाओं को सशक्त एवं समर्थ बनाने का प्रयास किया जाएगा। इसके लिए महिलाओं से संबंधित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यक्रमओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जाएगा और शिक्षा संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया जाएगा। महिलाओं में साक्षरता के प्रसार के लिए, इसकी राह में रुकावट बनने वाले कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाएगा। यह भी सुझाव दिया गया है कि विभिन्न स्तरों पर तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी पर खास जोर दिया जाएगा। इसकी नीति के अनुसार, "लड़के एवं लड़कियों में किसी प्रकार का भेदभाव न बरतने की नीति पर पूरा जोर देकर अमल किया जाएगा ताकि तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पारंपरिक रवैयों के कारण चले आ रहे लिंगमूलक विभाजन को खत्म किया जा सके तथा गैर–परंपरागत आधुनिक काम–धंधों में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ सके। इसी प्रकार मौजूदा नई प्रौद्योगिकी में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जाएगी।" (NPE, 1986)

अपने छोटे–छोटे भाई–बहनों की देखभाल करने के कारण बहुत सारी लड़कियां प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। इसके लिए शिशुओं की देखभाल के केंद्र खोलने का सुझाव दिया गया है जिससे अपने छोटे भाई–बहनों की देखभाल करने वाली लड़कियों को स्कूल जाने की सुविधा मिल सके। इस नीति में महिला सशक्तीकरण को देश के लिए आवश्यक बताते हुए स्त्री के बारे में अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए तथा स्त्री विकास कार्यक्रम में भाग लेने के लिए शिक्षण संस्थानों को प्रोत्साहित करने को कहा गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पुनरावलोकन एवं क्रियान्वयन के लिए एक और समिति का गठन किया गया जिसे हम कार्य योजना 1992 या 'Plan of Action 1992' के नाम से जानते हैं। इसके अध्यक्ष आचार्य राममूर्ती थे। इस प्रतिवेदन में समाज में स्त्री सशक्तीकरण एवं समानता के लिए शिक्षा को एक अनिवार्य तत्व बताया है। इसके लिए काफी सारे सुझाव भी दिए गए जैसे हर संस्थान में महिला विकास के कार्यक्रमों को

सुनिश्चित किया जाए। अध्यापकों को महिला सशक्तीकरण के लिए अभिकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया जाए। महिला अध्यापकों की नियुक्ति को प्राथमिकता दी जाए। लिंग समानता को बढ़ावा देने वाली पाठ्य सामग्री को विकसित किया जाए। इसके अतिरिक्त इस रिपोर्ट में महिलाओं के लिए तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने और महिला अध्ययन एवं महिलाओं से जुड़े शोधों को बढ़ावा देने की बात भी की गई।

टिप्पणी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसरण में कार्यान्वयन रणनीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- सम्पूर्ण प्रणाली को इस प्रकार तैयार करना कि यह महिलाओं को अधिकार प्रदान करने में सकारात्मक हस्तक्षेप का साधन बन सके।
- महिलाओं का स्तर बढ़ाने और सभी क्षेत्रों में महिलाओं के अधिक विकास हेतु सक्रिय कदम उठाने के लिए शैक्षिक संस्थानों को प्रोत्साहित करना।
- महिला–पुरुष में भेदभाव के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर व्यावसायिक तकनीकी और पेशेगत शिक्षा के सभी स्तरों पर महिलाओं को शामिल करना।
- गतिशील प्रबंध ढांचे का सृजन करना जिससे इस जनादेश द्वारा सामने आई चुनौतियों का सामना किया जा सके।

इनकी पूर्ति के लिए महिलाओं को अधिकार प्रदान करने का प्रावधान रखा गया जिसके घटक निम्नलिखित हैं–

- महिलाओं का आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास बढ़ाना।
- समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था में महिलाओं को मान्यता प्रदान करके महिलाओं की सकारात्मक छवि का निर्माण करना।
- समालोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता विकसित करना।
- सामूहिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्णय लेने की क्षमता विकसित करना और कार्रवाई करना।
- शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य (विशेषकर प्रजनन स्वास्थ्य) जैसे क्षेत्रों में महिलाओं को जानकारी देकर विकल्प चुनने योग्य बनाना।
- विकासात्मक प्रक्रियाओं में समान सहभागिता सुनिश्चित करना।
- आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए सूचना, ज्ञान और कौशल प्रदान करना।
- समाज में महिलाओं के अधिकारों से संबंधित कानूनी जानकारी और सूचना तक उनकी पहुंच बढ़ाना ताकि सभी क्षेत्रों में समान आधार पर उनकी सहभागिता बढ़ाई जा सके।

3. कार्य योजना, 1992

कार्य योजना, 1992 के अनुसार उपरोक्त प्रावधानों के क्रियान्वयन एवं पूर्ति के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाएंगे–

- महिला विकास के लिए प्रत्येक शिक्षण संस्था सक्रिय कार्यक्रम प्रारम्भ करेगी।
- सभी शिक्षकों और प्रशिक्षकों को महिलाओं को अधिकार प्रदान करने वाले एजेंट के रूप में प्रशिक्षित किया जाएगा। इसके लिए शिक्षा एवं शिक्षण कार्यों से

टिप्पणी

संबंधित संस्थाएं एनसीईआरटी, डाइट, नीपा, राज्य एससीईआरटी आदि, प्रशिक्षण तैयार करेंगे। संबद्ध संगठनों और महिला दलों की सहायता से नवाचारी प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किए जाएंगे।

- शिक्षक–प्रशिक्षकों और प्रशासकों के लिए लिंग और निर्धनता के प्रति संवेदनशील होने के कार्यक्रम विकसित किए जाएंगे। एक ऐसा माहौल तैयार किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षा क्षेत्र के सभी अनुभाग लिंग–भेद के आधार पर असमानता दूर करने में भूमिका के प्रति सचेष्ट और संवेदनशील होंगे।
- आर्थिक आत्मविश्वास उत्पन्न करने तथा अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए माता–पिता को प्रेरित करने के लिए अध्यापिकाओं की भर्ती को प्राथमिकता दी जाएगी।
- सामान्य कोर–पाठ्यक्रम महिलाओं की सकारात्मक छवि बनाने का एक सशक्त माध्यम है। महिला अध्ययन विभाग एवं एनसीईआरटी लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील पाठ्यक्रम विकसित करने, पाठ्यपुस्तकों से इससे संबंधित पूर्वाग्रह दूर करने और प्रशिक्षकों/शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के क्षेत्र पहले ही प्रारम्भ की गई गतिविधियों को तेज करेंगे। एससीईआरटी तथा राज्य स्तर के संबंधित बोर्ड और संस्थाएं इसी प्रकार के कार्य प्रारम्भ करेंगे।
- ऐसी चेतना और समर्थन से संबंधित सभी कार्यकलापों के लिए सभी बजटों में धन आबंटित किया जाना चाहिए।

4. शिक्षा में लैंगिक मुद्दे पर राष्ट्रीय फोकस समूह, 2005

शिक्षा में लैंगिक मुद्दे पर राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र में लैंगिक समानता के लिए सिफारिशें की गई हैं। इसकी कुछ सिफारिशें इस प्रकार हैं–

- शिक्षा की पहुंच सभी लड़कियों तक हो।
- लड़कियों को स्कूल छोड़ने से बचाने के लिए विद्यालयों की आधारभूत संरचना एवं गुणवत्ता में सुधार किया जाना आवश्यक है।
- लैंगिकता को अलग विषय के रूप में पढ़ाने से छात्रों पर उल्टा बोझ बढ़ेगा इसलिए इसे अन्य विषयों के साथ एकीकृत करके पढ़ाया जाए।
- इस अवधारणा को सुदृढ़ किया जाए कि लैंगिकता केवल महिलाओं का मुद्दा नहीं है अपितु एक सामाजिक मुद्दा है।
- लड़कों को भी उसके समाजीकरण एवं पुरुषत्व की अवधारणा के संदर्भ में प्रश्न करना सिखाया जाए।
- स्त्री शोध से जुड़े मुद्दों को पाठ्य पुस्तकों में सुझाव के तौर पर शामिल किया जाए।
- किशोरावस्था एवं लैंगिकता की जानकारी के लिए विशेषज्ञों की मदद ली जाए।
- लैंगिक संवेदनशील सामग्री का निर्माण किया जाए और ये सामग्री उपलब्ध करवाई जाए।
- लैंगिकता के दृष्टिकोण से पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण किया जाए।
- महिला सशक्तीकरण के लिए प्रयास किए जाएं।

नई शिक्षा नीति

टिप्पणी

2019 में भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया गया। नई शिक्षा नीति समानता के मूल्य को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसका उद्देश्य "एक समतामूलक और समावेशी शिक्षा व्यवस्था स्थापित करना है जिससे सभी बच्चों के सीखने और सफल होने के समान अवसर उपलब्ध हों और परिणामस्वरूप वर्ष 2030 तक सभी लैंगिक और सामाजिक वर्गों की शिक्षा में भागीदारी और सीखने के प्रतिफल के स्तर पर समानता सुनिश्चित हो।"

नई शिक्षा नीति के अनुसार शिक्षा में भेदभाव का प्रमुख कारण गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा तक बच्चों की पहुंच का न होना है। बच्चे विद्यालय तक पहुंच ही नहीं पाते। इसका एक मुख्य कारण गरीबी है। जहां स्कूल उपलब्ध है भी वहां गरीबी के कारण मां–बाप अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते। स्कूली शिक्षा में लैंगिक भेदभाव का प्रमुख कारण समाज में प्रचलित रस्मों–रिवाज और पूर्वाग्रहों को बताया गया है। जैसे लड़कियों के बारे में यह कहा जाता है कि वे पढ़–लिख कर क्या करेंगी, उनको तो घर ही संभालना है इसलिए उनको औपचारिक शिक्षा लेने की जरूरत नहीं है। भेदभाव एवं असमानता को बढ़ाने में स्कूली पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें भी अपनी भूमिका निभाती हैं। कई बार औपचारिक शिक्षा और विद्यार्थियों के जीवन के बीच कोई समन्वय नहीं होता जिससे शिक्षा बहुत उबाऊ प्रतीत होने लगती है।

नई शिक्षा नीति में शिक्षा को समावेशी बनाने के लिए कई प्रावधान हैं। जैसे–

- अल्प प्रतिनिधित्व वाले समूहों के छात्रों के लिए अलग से प्रावधान।
- विशिष्ट शिक्षा क्षेत्रों की स्थापना करना।
- शिक्षकों की तैयारी में समवेशी शिक्षा।
- स्कूलों में समावेशी वातावरण का निर्माण करना। इसके लिए डराने–धमकाने, भेदभाव और उत्पीड़न को दूर करने हेतु व्यवस्था स्थापित करना।
- समावेश का उल्लंघन करने वाली प्रक्रियाओं को समाप्त करना।
- शिक्षार्थियों को संवेदनशील बनाना।
- समावेशी पाठ्यक्रम का निर्माण करना।
- विद्यार्थियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।

नई शिक्षा नीति में शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी और नेतृत्व को बढ़ावा देने के लिए कहा गया है। इसके लिए स्कूल की सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाएगी एवं स्कूल अनुपस्थिति को बढ़ाने वाली सामाजिक प्रथाओं और लिंग संबंधी रूढ़ियों को दूर करने का प्रयास किया जाएगा। इसके अतिरिक्त लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने हेतु 'लिंग समावेश कोष' को बनाने का भी प्रावधान है जिसका मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित होगा–

- स्कूल व्यवस्था में 100 प्रतिशत और उच्च शिक्षा में अधिकाधिक लड़कियों की भागीदारी को सुनिश्चित करना।
- सभी स्तरों पर शैक्षिक उपलब्धि में लड़के एवं लड़कियों के बीच के अंतर को कम करना।

- लैंगिक समता और समावेश हेतु मानसिक बदलाव लाना और नुकसानदेह प्रथाओं को समाप्त करना।
- लड़कियों में नेतृत्व क्षमता को बढ़ावा देना जिससे वर्तमान समय और भविष्य में रोल मॉडल तैयार हों।
- जो भो प्रभावी तरीके और सीख उपलब्ध हों उनके प्रसार के लिए सिविल सोसाइटी के साथ संवाद को बेहतर करना।

टिप्पणी

इस नीति की सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि नई शिक्षा नीति में परलैंगिक बच्चों की शिक्षा पर भी बात की गई है। ऐसा पहली बार हुआ है कि किसी भी नीति में परलैंगिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है और इनको भी समाज का हिस्सा माना गया है। इन बच्चों का एक डाटा बेस बनाया जाएगा और इनकी शिक्षा के लिए हर संभव प्रयास किए जाएंगे। साथ ही पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में परलैंगिक बच्चों से जुड़े मुद्दों और उनके सरोकारों को ध्यान में रखकर आवश्यक बदलाव किए जाएंगे।

योजनाएं

स्त्री शिक्षा का विस्तार करने के लिए एवं 1986 की शिक्षा नीति में महिला सशक्तीकरण के लिए दिए गए सुझावों को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विभिन्न योजनाओं को प्रारम्भ किया गया। वैसे तो इन सभी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य अलग–अलग था परंतु एक सामान्य उद्देश्य यह था कि ये सभी योजनाएं स्त्री को सशक्त बनाने के लिए और उनकी शिक्षा में आने वाली बाधाओं विशेषकर आर्थिक बाधाओं को दूर करने के लिए प्रयासरत थी। भारत में स्त्री शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। स्त्रियों को यदि स्कूल भेज भी दिया जाता है तो बीच में ही बड़ी संख्या में स्त्रियां अपनी पढ़ाई छोड़ देती हैं। ऐसे में ये सुनिश्चित करना कि कोई भी लड़की अपनी पढ़ाई न छोड़े, इन योजनाओं के माध्यम से संभव है। आइए इनके बारे में जानते हैं–

1. पंचवर्षीय योजनाएं

12वीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार बालिका शिक्षा पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986/92 में दिए गए विस्तृत विवरण के परिप्रेक्ष्य से विचार किया जाना चाहिए, जिसके अनुसार शिक्षा को एक रूपांतरकारी बल मिलना चाहिए जो कि महिलाओं में आत्म–विश्वास का निर्माण कर समाज में उनकी स्थिति में सुधार कर सके। इसका मुख्य लक्ष्य साक्षारता दर में लिंगभेद में कमी कर 10 प्रतिशत से कम करना। इसके लिए लिंग संवेदी पाठ्यक्रम को विकसित करने, शिक्षा शास्त्रीय पद्धतियों, अध्यापक प्रशिक्षण और मूल्यांकन पर विशेष ध्यान देने का सुझाव दिया गया है। विद्यालयों को समावेशित रूप से और सुरक्षित स्थानों पर विकसित करने के साथ ही इस बात पर भी बल दिया गया है कि यौन उत्पीड़न और हिंसा संबंधी मुद्दों पर विशिष्ट सामग्री को विकसित करके, अध्यापक प्रशिक्षण डिजाइन में एकीकृत किया जाए। इसके साथ ही 12वीं पंचवर्षीय योजना बालिका शिक्षा में सुधार के लिए मुख्यतः तीन बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करती है–

- केजीबीवी का सुदृढ़ीकरण और विस्तारण।
- NPEGEL कार्यक्रम में सेतु बंधन केन्द्रों को चलाना।

- महिला समाख्या कार्यक्रम को स्वायत्तता के साथ एक स्वतंत्र कार्यक्रम के रूप में जारी रखना।

2. कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना–2004

टिप्पणी

भारत में विद्यालय न जाने वाले बच्चों की संख्या भी काफी अधिक है। इनमें भी ग्रामीण क्षेत्रों एवं निर्धन वर्गों की बालिकाओं की संख्या सबसे अधिक है। बालिकाओं के विद्यालय न जाने की बहुत सारी वजह हैं परंतु सबसे प्रमुख वजह है– निर्धनता, जिसके कारण मां–बाप अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते, इसके बजाय वे उनको किसी काम पर लगा देते हैं जिससे वे दो वक्त की रोटी जुटाने में उनका सहयोग कर सकें। इसके अतिरिक्त स्कूल का घर से काफी दूर होना, उनमें मूलभूत सुविधाओं का न होना, सुरक्षा का अभाव होना ये सब भी वे कारण हैं जिसकी वजह से लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता। हमारी शिक्षा नीतियों में लड़कियों की शिक्षा को लड़कों की शिक्षा जितना ही महत्वपूर्ण बताया गया है। ऐसे में इनकी शिक्षा के लिए प्रबंध करना सरकार की जिम्मेदारी है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 2004 में भारत सरकार ने अनुसूचित जातियों व जनजातियों और पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के लिए ग्रामीण इलाकों में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना के उद्देश्य से कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना को प्रारम्भ किया। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना का प्रारम्भ प्रथम दो वर्षों तक एक अलग योजना के रूप में सर्व शिक्षा अभियान एवं बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा दिलाने हेतु योजना एवं महिला समाख्या कार्यक्रम के साथ सामंजस्य बैठाते हुए किया था। लेकिन वर्ष 2007 में सर्व शिक्षा अभियान के एक अलग घटक के रूप में इसका प्रारम्भ हो गया।

यह योजना उन बालिकाओं से संबंधित है जिनका कभी भी विद्यालय में नामांकन नहीं हुआ या फिर किसी कारणवश उनको विद्यालय छोड़ देना पड़ा। यह योजना मुख्य रूप से उन स्थानों पर लागू की गई जहां पर वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर कुल औसत साक्षरता दर से काफी कम थी और लैंगिक भेदभाव का स्तर काफी अधिक था। वास्तव में दूर–दराज के ग्रामीण इलाकों एवं वंचित वर्गों की बालिकाओं की स्थिति आज भी बेहद दयनीय है। शिक्षा प्राप्त करना इनके लिए किसी स्वप्न के पूरे होने जैसा था। इनके परिवारों एवं आस–पास के क्षेत्रों में लैंगिक भेदभाव बहुत अधिक है। बड़ी संख्या में लड़कियां अपने घरों में ही रहती हैं और शिक्षा से वंचित हैं। ऐसे में इस योजना का ठीक प्रकार से क्रियान्वयन करना बेहद आवश्यक है।

इस योजना के तहत सरकार ने कई प्रकार की सुविधाओं का प्रावधान किया है–

- सभी बालिकाओं को आवास उपलब्ध करवाना।
- पुस्तकें एवं शिक्षण सामाग्री उपलब्ध करवाना।
- स्कूल यूनिफॉर्म, जूते आदि उपलब्ध करवाना।
- दैनिक उपयोग की आधारभूत वस्तुएं उपलब्ध करवाना (साबुन, तेल, चप्पल, सैनिटरी नैपकिन आदि)।
- प्रतिमाह 100 रूपए बालिकाओं के निजी बैंक खाते में जमा करवाना जिसे वे अपनी जरूरत के समय खर्च कर सकें।

2019 से कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय जो पहले 8वीं कक्षा तक थे अब उनको 12वीं कक्षा तक मंजूरी दे दी गई। इसके लिए कक्षा 9 से 12 तक की कक्षाओं को संचालित करने के लिए नए शैक्षिक ब्लॉक एवं नए छात्रावासों का निर्माण किया गया। यह योजना लगभग 28 राज्यों में क्रियान्वित की जा रही है।

टिप्पणी

3. महिला समाख्या कार्यक्रम

महिला समाख्या कार्यक्रम महिलाओं में आत्म–विश्वास एवं आत्म–सम्मान की पुनर्स्थापना करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। समाख्या शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। पहला शब्द है सम जिसका अर्थ है समान, दूसरा शब्द है आख्या जिसका अर्थ है संवाद या बातचीत। इस प्रकार समाख्या शब्द का अर्थ है– समान लोगों के बीच बातचीत। समान लोगों का अर्थ है– एक जैसी सोच वाले लोग। यह कार्यक्रम मुख्य रूप से आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रूप से पिछड़ी हुई महिलाओं के लिए है। महिला समाख्या को वर्ष 1988–89 में 10 राज्यों के 105 जिलों, 425 ब्लॉकों और 33577 गांवों में कार्यान्वित किया गया। उसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा एवं संगठन के द्वारा ग्रामीण–निर्धन महिलाओं में जागरूकता पैदा करना है। यह महिलाओं की सामूहिक शक्ति को बढ़ाने पर बल देता है। यह योजना देश के पांच राज्यों में चल रही है– उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश। यह कार्यक्रम सरकार एवं स्वयंसेवी संगठन दोनों ही मिलकर चलाते हैं। इसमें ट्रेनिंग का सारा भार महिला संस्थाओं को ही दिया जाता है। इसके अंतर्गत महिलाओं को स्वयं अपने समूह बनाने, स्वयं निर्णय लेने, योजनाएं बनाने एवं उनका संचालन करने के लिए तैयार किया जाता है। उनको शिक्षित किया जाता है जिससे वे अपनी स्थिति में परिवर्तन के लिए ठोस कदम उठा सकें। इसके अतिरिक्त सूचना, ज्ञान एवं कौशल के माध्यम से उनको आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना भी इस कार्यक्रम का लक्ष्य है।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान महिला समाख्या की अच्छी प्रक्रिया को देखते हुए इसको जारी रखने को कहा गया है। "महिला समाख्या से सम्बद्ध प्रशिक्षित महिलाओं के बड़े समूह का उपयोग आरटीई के उद्देश्यों को प्राप्त करने में किया जा सकेगा। नामतः शिक्षा में और शिक्षा के माध्यम से साम्य और समानता। बाह्य निधीयन के पूर्णतः उपयोग हो जाने पर, इस कार्यक्रम को 100 प्रतिशत आंतरिक निधीयन के साथ आरटीई अनुकूल सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत लाया जा सकेगा। मुख्यधारा में लैंगिक व्यवधानों का निराकरण करने के लिए महिला समाख्या कार्यक्रम की विविध अंतर्दृष्टियों को महिलाओं के सशक्तीकरण, शिक्षा प्राप्ति, अभिकरण, लड़कियों की शिक्षा और संस्थान निर्माण पर लाने के लिए मजबूत राज्य स्तरीय अथवा क्षेत्रीय इकाइयों के साथ एक राष्ट्रीय संसाधन केंद्र को स्थापित किया जा सकेगा। यह कार्यक्रम, स्वयं में सुदृढ़ होगा और बारहवीं योजना के दौरान अपनी व्याप्ति के साथ–साथ क्षेत्र/भूमिका, दोनों में विस्तारित होगा।" (बारहवीं पंचवर्षीय योजना)

4. लाड़ली योजना

लाड़ली योजना का प्रारम्भ दिल्ली सरकार द्वारा 2008 में किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य लड़कियों को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाना है। इस योजना के पीछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या एवं बालिका विवाह को रोकना भी है। इस योजना का क्रियान्वयन सभी सरकारी विद्यालयों में भी किया गया है और व्यक्तिगत

रूप से भी इसके अंतर्गत पंजीकरण करवा सकते हैं। इसके अंतर्गत जिन लड़कियों के मां–बाप की आय 100000 रूपए वार्षिक से कम है उनकी अधिकतम दो बेटियों को इस योजना का लाभ मिलेगा। यह योजना आर्थिक सहायता पर आधारित है। इसमें बालिका के जन्म के समय एवं कक्षा 1, 6, 9, 10 एवं 12 में प्रवेश के समय निर्धारित राशि कन्या के नाम से जमा होती रहती है। यह राशि बालिका को 12वीं पास करने के पश्चात या आयु 18 वर्ष होने पर दी जाती है।

टिप्पणी

5. किशोरी शक्ति योजना

किशोरी शक्ति योजना का प्रारम्भ वर्ष 2000 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार द्वारा किशोर छात्राओं की रोजमर्रा की पोषणिक, शैक्षिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार करने के लिए एवं इनके अच्छे स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं पोषण को बढ़ावा देने के लिए किया गया है। इसके अंतर्गत छात्राओं को कृमि रहित करने के लिए दवाई देने के साथ–साथ उनको आयरन आवश्यकता की पूर्ति हेतु खुराक दी जाती है। स्वच्छता के लिए हर महीने छात्राओं को सैनिटरी पैड भी बांटे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त भी बहुत सी योजनाएं हैं जो महिला सशक्तीकरण एवं समानता की स्थापना करने के लिए चलाई जा रही हैं। सीबीएसई ने लड़कियों की शिक्षा के लिए 'उड़ान' जैसा कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके अंतर्गत इंजीनियरिंग कॉलेजों में छात्राओं के दाखिलों को बढ़ाना और सभी को मुफ्त ऑनलाइन संसाधन उपलब्ध कराने के माध्यम से उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में गणित एवं विज्ञान शिक्षण को बढ़ावा देना है। इसी प्रकार 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' अभियान की शुरुआत भी महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए की गई।

2.4.3 लैंगिक असमानता को दूर करने के उपाय

हम स्त्री शिक्षा एवं उसमें मौजूद असमानताओं एवं बाधाओं के बारे में पढ़ चुके हैं। अब हम समाधान की ओर जाएंगे और इस विषय पर चर्चा करेंगे कि शिक्षा तक अधिक से अधिक लड़कियों की पहुंच कैसे बढ़ाई जाए। और उन उपायों की भी चर्चा करेंगे जिससे लड़कियां विद्यालय शिक्षा को पूर्ण करके ही विद्यालय से बाहर निकलें और उनका किसी भी प्रकार से बहिष्कार न किया जाए।

शिक्षा में लैंगिक भेद की समस्या का समाधान करना आसान नहीं है। असमानता की परतों एवं जाति तथा समुदाय आधारित लामबंदी की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए नामांकन एवं बदलाव के मानक सूचकों से परे जाने एवं स्कूलों में बच्चों के अनुभव को गहराई से देखने की आवश्यकता है। शिक्षा में लैंगिक समानता की प्रगति मापने वाले उपकरण समाज में व्याप्त तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था द्वारा बढ़ाई जा रही असमानताओं की बनावट के बारे में बहुत कम बताते हैं। शिक्षा में लैंगिकता एवं सामाजिक समानता के मुद्दों को ऐसे ढांचे की आवश्यकता है, विषमांगी लैंगिक यथार्थों एवं विविध दोषों को प्रदर्शित कर सके। शिक्षा में लड़कियों की पहुंच बढ़ाने और उसको बनाए रखने के लिए निम्नलिखित उपाय किया जा सकता है–

- **शिक्षा की सार्थक उपलब्धता** : भारत में लैंगिक असमानता का मुद्दा जटिल सामाजिक एवं संस्थागत ढांचे में उलझा है। इसलिए शिक्षा में लैंगिक असमानताओं को एक ओर सामाजिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय विशेष संबंधी

टिप्पणी

असमानताओं और दूसरी ओर वर्तमान स्कूल व्यवस्था के व्यापक ढांचे में देखे जाने की आवश्यकता है। इस बात पर सभी सहमत हैं कि बेहतर नामांकन के लिए अधिक संख्या में स्कूल, बेहतर बुनियादी ढांचे के साथ–साथ बेहतर शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाओं की भी आवश्यकता है। इसके लिए जिन स्थानों पर स्कूल की कमी है वहां नए स्कूल खोले जाए ताकि लड़कियों को स्कूल दूर होने की वजह से स्कूल न छोड़ना पड़े। स्कूल में आधारभूत सुविधाओं जैसे शौचालय, पीने का साफ पानी आदि की सुविधा में वृद्धि की जाए जिससे लड़कियों को स्कूल न छोड़ना पड़े। शिक्षा की सार्थक उपलब्धता से अभिप्राय केवल औपचारिक शिक्षा प्रणाली में भागीदारी के लिए भौतिक साधन उपलब्ध कराना भर नहीं है बल्कि सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करना अधिक महत्वपूर्ण है। किसी भी सामाजिक समूह के बच्चों के लिए स्कूल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के साथ ही यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आड़े–तिरछे कौशल सीखने के बजाय यह बच्चों के सीखने एवं अपनी क्षमताओं को प्राप्त करने के लिए सीखने एवं विकास करने का सुरक्षित स्थान हो। इसके साथ ही शिक्षकों की उपलब्धता भी आवश्यक है, जो सीखने की शैलियों के अनुसार अलग–अलग प्रकार से सहायता करेंगे और उन बच्चों पर विशेष ध्यान देंगे, जिन्हें आगे बढ़ने के लिए सहारे की आवश्यकता है। विद्यालयों में ऐसा सुरक्षित वातावरण बनाने की जरूरत है जहां किसी को भी मखौल एवं भेदभाव के डर के बगैर अपने सामाजिक समूह के अनुसार निर्मित अपने व्यक्तित्व को तलाशने एवं अभिव्यक्त करने की आजादी मिल सके। जहां किसी भी प्रकार का शोषण न हो।

- **सुरक्षित एवं भेदभाव रहित वातावरण** : स्कूल हमारे उस समाज को प्रदर्शित करता है जिसमें हम रहते हैं। समाज में प्रचलित चलन अक्सर स्कूल में भी नजर आते हैं। यदि शिक्षकों को पर्याप्त संवेदनशील नहीं बनाया गया है और पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं दिया गया है तो उनका व्यवहार एवं पूर्वाग्रह स्कूल में भी आ सकते हैं। इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण के समय लैंगिक पाठ्यक्रम एवं संवेदनशीलता को शामिल किया जाना अति आवश्यक है। भारत के संविधान में स्थापित समानता के अधिकार तथा भेदभाव के विरुद्ध अधिकार को देखते हुए शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों को जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र, क्षमता एवं आर्थिक स्तर के आधार पर भेदभाव करने की आजादी नहीं है। स्कूल में सुरक्षा के पुख्ता इंतजाम करवाए जाए और विद्यालय में ऐसे सुरक्षित वातावरण का निर्माण किया जाए जहां विद्यार्थी बिना डरे आराम से अपना ध्यान पढ़ाई पर केन्द्रित कर सकें।
- **पाठ्यपुस्तकों में सुधार** : हमारी पाठ्यपुस्तकों को पूर्वाग्रहों एवं रूढ़ियों से मुक्त कराने के मुद्दे पर दो दशकों से शोर–शराबा हो रहा है लेकिन वास्तविकता यह है कि हमारी पाठ्यपुस्तकें जेंडर असमानताओं एवं सामाजिक ऊंच–नीच की बातों को बढ़ावा देती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं की भूमिकाओं के बारे में, उनके काम–काज के बारे में दकियानूसी विचार अब भी जारी हैं और हमारी पाठ्यपुस्तकों में चित्रों, वाक्यों तथा उदाहरणों में झलकते हैं। शहरी और ग्रामीण रूढ़ियों को बढ़ावा ही नहीं दिया जाता बल्कि शहरी रूढ़ियों को ग्रामीण रूढ़ियों और गैर–आदिवासी को आदिवासी की अपेक्षा बेहतर दिखाया भी जाता है।

विभिन्न विषयों में अधिकतर उदाहरण शहर केन्द्रित होते हैं। नायक एवं नेता पुरुष ही होते हैं और देख–भाल करने एवं घर संभालने वाली हमेशा महिला ही होती है।

इसलिए इनमें सुधार लाने एवं शिक्षा में समानता स्थापित करने हेतु पाठ्यक्रम एवं अध्यापन कला संबंधी विशेष रणनीतियां तैयार करनी होंगी ताकि बच्चों को विशेषकर लड़कियों को कमियों से उबरने एवं अपने अधिकारों तथा पसंदों का प्रयोग करने की क्षमता विकसित करने का मौका मिल सके। लक्ष्य ये होना चाहिए कि व्यवहार में औपचारिक समानता के साथ–साथ स्थायी समानता भी प्राप्त हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षकों एवं पाठ्यक्रम बनाने वालों, पाठ्यपुस्तकें लिखने वालों, शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वालों एवं स्कूलों की निगरानी करने वालों को समानता के स्थायी एवं सटीक रवैये को अपनाना होगा। पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें समतामूलक मूल्यों एवं विविधता तथा असहमति के सम्मान और भेदभाव के प्रति सतर्क रहना सिखा भर सकती हैं। लड़कों को ये सिखाए जाने की आवश्यकता है कि दूसरों का सम्मान करना चाहिए और किसी के इंकार का सम्मान करना चाहिए। यौन दुर्व्यवहार की घटनाओं से लड़ने के लिए यह आवश्यक है। इसके साथ ही स्त्री एवं पुरुष के बीच भेदभाव पर भी सवाल खड़े करने होंगे। इसके अलावा पाठ्यक्रम का निर्माण लैंगिक संवेदनशीलता को ध्यान में रखकर किया जाए और पाठ्यक्रम निर्माण में स्त्री एवं पुरुष दोनों की बराबर भूमिका होनी चाहिए।

टिप्पणी

- **मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा** : शिक्षा में समानता एवं लड़कियों की पहुंच बढ़ाने के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है जिसे हम सब 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009' के नाम से जानते हैं। इस बिल के अनुसार 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाएगी। और साथ में प्राइवेट स्कूलों में आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थियों को भी कुल सीटों में से 25 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है जिससे निर्धन बच्चे भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सकें। परंतु 2009 में शिक्षा का मुफ्त प्रावधान करने के बाद भी बड़ी संख्या में बच्चों को स्कूली शिक्षा उपलब्ध नहीं है। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे स्कूल न होना, स्कूल का दूर होना, घर के लिए आर्थिक सहायता करना, घरेलू कार्यों में मदद करना आदि। ऐसे में सिर्फ कानून बनाकर सबके लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। समय–समय पर इन क़ानूनों की समीक्षा एवं इनके प्रभावों की जांच की जाए। प्राइवेट स्कूलों में केवल फीस माफ है परंतु अन्य खर्चे स्वयं ही उठाने पड़ते हैं,तो कितने गरीब परिवार अपने बच्चों को इन स्कूलों में पढ़ने भेज पाएंगे या उनकी पढ़ाई को चालू रखने में सक्षम हैं। मुफ्त शिक्षा का प्रावधान संभवतः बेहद मददगार साबित हुआ है। इसके प्रभाव से लड़कियों की स्कूल में अनुपस्थिति बढ़ी है। स्कूलों द्वारा दिए जाने वाले मिड–डे मील से भी विद्यार्थियों की संख्या में इजाफ़ा हुआ है जिनमें लड़कियों का भी अच्छा–खासा प्रतिशत है।
- **पाठ्यक्रम को रुचिकर बनाना** : लड़कियों के स्कूल छोड़ने का एक बड़ा कारण उनकी शिक्षा में रुचि न होना है। शिक्षा में रुचि न होने के मुख्यतः दो कारण हो सकते हैं– पहला, पाठ्यक्रम का बोझिल और अरुचिकर होना और

टिप्पणी

दूसरा, शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाओं का रुचिकर न होना। मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित 'शिक्षा बिना बोझ के' रिपोर्ट (1993) में यह कहा गया है कि "शैक्षिक प्रक्रिया में संलग्न शिक्षक और बच्चे दोनों आनंद की भावना ही खो चुके हैं। अधिकतर शिक्षकों और बच्चों के लिए पठन–पाठन केवल नीरस कार्य बनकर रह गया है। प्रतिष्ठित या गिने–चुने संस्थानों में पढ़ने वाले बच्चों को छोड़ कर स्कूल जाने वाले अधिकतर बच्चों के लिए यह स्कूली शिक्षा नीरस, बोझिल, अरुचिकर और कटु अनुभव प्रदान करने वाली प्रतीत होती है।" ऐसा बोझिल पाठ्यक्रम एवं शिक्षण प्रक्रियाओं के कारण ही होता है। इसलिए पाठ्यक्रम को रुचिकर बनाकर, शिक्षण प्रक्रियाओं में सुधार करके एवं पढ़ने के लिए गतिविधियों, चर्चाओं, अनुभवों का प्रयोग करके हम विद्यार्थियों को इस कारण स्कूल छोड़ने से रोक सकते हैं।

- **स्त्री शिक्षा के प्रति समाज में जागरूकता लाने की आवश्यकता** : हमारे समाज में लड़कियों की शिक्षा को बिल्कुल परंपरागत दृष्टिकोण से देखा जाता है। लड़कियों की शिक्षा का उद्देश्य भी बेहद सीमित, अधिकतर विवाह ही होता है। कई बार विवाह की इतनी जल्दी की जाती है कि लड़कियां अपनी पढ़ाई तक नहीं पूरी कर पातीं। विवाह के पश्चात, चूंकि वे आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर होती हैं इसलिए वे अपने लिए कोई निर्णय भी नहीं ले पातीं। ऐसे में समाज में लड़कियों की शिक्षा के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। उनको ये समझाने की आवश्यकता है कि लड़कियां पढ़–लिख कर अपने पैरों पर खड़ी होकर यदि आत्मनिर्भर बनती हैं तभी समाज का कल्याण होता है। वे भविष्य में आने वाली चुनौतियों का बेहतर ढंग से सामना कर सकती हैं।
- **भाषा संबंधी रुकावटों को दूर करना** : लड़कियों के स्कूल छोड़ने का एक कारण उनकी मातृभाषा में पढ़ाई न होना भी है। यदि विद्यार्थियों की मातृभाषा में पढ़ाई नहीं होती तो वे अपने आप को शिक्षा से कटा हुआ महसूस करने लगते हैं। मुख्यतः आदिवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भाषा संबंधी रुकावटों को दूर करके भी लड़कियों की शिक्षा में भागीदारी बढ़ाई जा सकती है। पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी भाषा के मुद्दे को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो पाठ्यपुस्तकों का अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओं में करवाया जा सकता है। ऐसा करने से स्कूल छोड़ने की दर में कमी अवश्य आएगी।
- **महिला शिक्षा विद्यालयों का विकास** : सरकार को अधिक से अधिक महिला शिक्षा विद्यालय खोलने चाहिए। पहले से ही मौजूद महिला शिक्षा विद्यालय जैसे कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के विकास पर एवं उसकी क्षमता बढ़ाने पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। समय–समय पर समीक्षा करके उसके कन्या शिक्षा में योगदान को देखते हुए अन्य आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। जहां पर स्त्री शिक्षा दर काफी कम है वहां पर ऐसी और भी योजनाओं को लाया जा सकता है जो केवल स्त्री शिक्षा को ध्यान में रखकर बनाई गई हो और जिनका उद्देश्य लड़कियों को स्कूल तक लाना एवं ये ध्यान रखना हो कि कोई भी लड़की अपनी शिक्षा पूरी होने से पहले स्कूल न छोड़े। इन विद्यालयों में उनके लिए आधारभूत सुविधाओं के साथ–साथ तकनीकी शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रावधान भी किया जा सकता है। इन विद्यालयों में अधिक से अधिक महिला

शिक्षिकाओं की नियुक्ति करके छात्राओं का मनोबल भी बढ़ाया जाना चाहिए।

- **आंगनवाड़ी केंद्र की सुविधा में वृद्धि** : बहुत से घरों में लड़कियों को कार्य करने के साथ–साथ अपने छोटे भाई–बहनों की देखभाल भी करनी पड़ती है। ऐसे में वे कार्य तो सुबह जल्दी उठकर कर लेती हैं परंतु भाई–बहनों का रख–रखाव उनके लिए स्कूल न आने का एक कारण बन जाता है जो कि बेहद अनुचित है। इसलिए सरकार को अधिक से अधिक आंगनवाड़ी केन्द्रों की स्थापना करनी चाहिए जिससे इन बच्चों की देखभाल आंगनवाड़ी केन्द्रों में भली प्रकार से हो सके और लड़कियों पर इनकी देखभाल का बोझ न आए। इस प्रकार वे अनिवार्य रूप से रोज स्कूल भी आ सकेंगी और पढ़ाई के प्रति अपना ध्यान भी केन्द्रित कर सकेंगी।

टिप्पणी

- **नीतियों में स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता** : स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने, लड़कियों की स्कूलों तक पहुंच बढ़ाने एवं उनको स्कूल में बनाए रखने के लिए ये भी आवश्यक है कि अन्य उपायों के साथ–साथ देश में बनने वाली हर शिक्षा नीति, आयोग आदि में स्त्री शिक्षा के मुद्दे को अलग से संबोधित किया जाए, इसकी आवश्यकता को समझा जाए, इसकी समस्याओं पर विचार किए जाए और इन समस्याओं को दूर करने के लिए हर संभव प्रयत्न किए जाएं। इसके लिए नीति निर्माण में स्वयं महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाया जाए। महिला शिक्षा की दिशा में अधिक से अधिक विश्वसनीय एवं जमीनी स्तर पर शोध किया जाए और उन शोध परिणामों के निहितार्थों का नीति निर्माण करते हुए ध्यान रखा जाए।

इसके अतिरिक्त स्त्री शिक्षा को बढ़ाने में गैर–सरकारी संगठनों द्वारा किया गया कार्य भी महत्वपूर्ण है। आइए इसको समझने का प्रयास करते हैं–

स्त्री शिक्षा में गैर–सरकारी संगठन

प्रारम्भिक शिक्षा में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है परंतु इससे महिला साक्षरता में कोई विशेष सुधार नहीं दिखता है। हम पढ़ चुके हैं कि शिक्षा में लड़कियों के नामांकन के अतिरिक्त गंभीर समस्या शिक्षा के मार्ग में आने वाले अवरोधों की है। विमला रामचंद्रन की प्रारम्भिक शिक्षा के संदर्भ में ये टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार "विगत दस वर्षों में सम्पूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा का महत्व एक अपरिहार्य सामाजिक आवश्यकता बन गई है। सतत अंतर्राष्ट्रीय दबाव में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहायता और ऋण की उपलब्धता को आवश्यक बनाया है, इससे प्रशासकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है।" परिणामस्वरूप गैर–सरकारी संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़े कार्यक्रमों और नए प्रयोग किए जा रहे हैं। यहां हम प्रारम्भिक शिक्षा की स्थिति और एन.जी.ओ. की भूमिका को समझने का प्रयास करेंगे।

यद्यपि सार्वभौमिक प्रारम्भिक शिक्षा (बच्चों के लिए पांच साल की शिक्षा) की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया, परंतु इसकी प्रगति प्रभावशाली नहीं है। प्रारम्भिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार और कुछ फंडिंग एजेंसियों के द्वारा कुछ कार्यक्रम प्रारंभ किए गए परंतु प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात लड़कियों के लिए आगे शिक्षा प्राप्त करने की समस्या गंभीर हो गई। विमला रामचंद्रन उल्लेख करती हैं कि विशेषकर ग्रामीण भारत में, लड़कियों में और उन बच्चों में जो

टिप्पणी

सामाजिक–आर्थिक रूप से कमजोर हैं एवं वे जो सुदूर इलाके में रहते हैं, में प्राइमरी विद्यालयों तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद आगे पढ़ाई की निरंतरता दर में कमी आई है। अब इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि भारतीय समाज के ये कमजोर वर्ग शैक्षिक सुविधाओं तक पहुंचने में समर्थ नहीं हैं या अगर वे नामांकित हो जाते हैं तो मांग और पूर्ति से संबंधित तथ्यों के कारण विद्यालयों से उनका अलग हो जाना (ड्रॉप आउट) ज्यादा होता है। ग्रामीण भारत में 15–19 आयु वर्ग की 30.6 प्रतिशत लड़कियां ही माध्यमिक विद्यालयों से आगे शिक्षा प्राप्त कर पाती हैं जबकि लड़कों का ये प्रतिशत 49.6 है। अधिकतर कम आय समूह वाले परिवार अपनी लड़कियों को शिक्षित करने में असमर्थ होते हैं। परिवार में संसाधनों के अभाव में लड़कियों की शिक्षा सर्वप्रथम प्रभावित होती है।

हम जानते हैं कि आज भी बड़ी संख्या में लड़कियां स्कूल नहीं जा पातीं तो यह प्रश्न उठता है कि इन लड़कियों के साथ क्या घटित होता है? वे क्या करती हैं? कई लड़कियों की शादी जल्दी हो जाती है और संभवतः वे मां भी बन जाती हैं, बहुत सी लड़कियां घरेलू कामों में लगी रहती हैं, खेत में काम करती हैं, छोटे भाई–बहनों की देखभाल करती हैं या फिर अन्य असंगठित क्षेत्रों में काम करती हैं।

विद्यालयों में लड़कियों की नामांकन दर को बहुत से कारक प्रभावित करते हैं। इनमें शैक्षणिक तथ्य जैसे– संरचना, पर्यावरण, विचारधारा, पाठ्यक्रम की मात्रा, शिक्षकों की वचनबद्धता, संस्थात्मक तथ्य, जैसे– विद्यालयों की उपलब्धता, शिक्षा का मूल्य, लड़कियों के लिए अलग विद्यालयों की उपलब्धता, बच्चों की देख–देख संबंधी सुविधा एवं पारिवारिक कारण, जैसे– समाजीकरण, लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण, पारिवारिक आय आदि।

शिक्षा व्यवस्था को संचारित करने में कई अंतर्निहित समस्याएं हैं, जिससे कि एन. जी.ओ. की भूमिका की प्रासंगिकता और निर्णायक हो जाती है।

भारतीय शैक्षणिक इतिहास, विविध समाज सुधार और सामुदायिक संगठनों के योगदान से भरा हुआ है। स्वतन्त्रता पूर्व की अवधि में, साक्षरता आंदोलन, स्वतन्त्रता संग्राम के कार्यवृत में एक महत्वपूर्ण विषय था। स्वतन्त्रता पश्चात के शुरुआती वर्षों में हमने सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य तक पहुंचने का निश्चय किया। इसके लिए विभिन्न समितियों ने अपने बहुमूल्य सुझाव दिए। विभिन्न समितियों के द्वारा साक्षरता अभियान की गति में तीव्रता की अनुशंसा के बाद भी 1978 तक बहुत कम संयुक्त प्रयास दिखते हैं। भारत में राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम और सर्व शिक्षा अभियान प्रारम्भ किए गए। भारत में साक्षरता अभियान की मंद गति ने, इस अभियान में एन.जी.ओ. के सहयोग की आवश्यकता को उत्पन्न किया।

साक्षरता अभियान का तात्पर्य सिर्फ कमाई के लिए शिक्षा का प्रचार नहीं करना था वरन सीखने वाले के अंतःकरण को संकटकालीन मुद्दे के प्रति जागरूक करना और उनमें आत्मविश्वास जाग्रत करना था। सरकार ने इस आवश्यकता को महसूस किया कि गैर–सरकारी संगठनों की सहभागिता से ही लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है और स्वयं गैर–सरकारी संगठनों ने भी महसूस किया कि साक्षरता अभियान में जनता तक सिर्फ अक्षर–ज्ञान ही नहीं पहुंचाना है बल्कि उन्हें नए तरीके और नए परिप्रेक्ष्य से परिचित कराना है।

टिप्पणी

शिक्षा के साथ गैर–सरकारी संगठनों की संबद्धता नई नहीं है। वास्तव में कई एन.जी.ओ.के लिए शिक्षा, समुदाय के विकास कार्य में प्रवेश का साधन है। भारत के कई एन.जी.ओ. विभिन्न प्रकार का कार्य कर रहे हैं। मध्य प्रदेश में किशोर भारती और एकलव्य, महाराष्ट्र में प्रोपेल (PROPEL), राजस्थान के तिलोनिया में शोध केंद्र (रिसर्च केंद्र) उन प्रारम्भिक एन.जी.ओ. में से हैं जिन्होंने महिलाओं की शैक्षिक आवश्यकता को आवश्यक कौशल के संबंध में समझा, जो कि महिलाओं के सीखने का नवीन मार्ग बना। ये एन.जी.ओ. नवनिर्मित महिला संगठनों को आधार देने के साधन के रूप में भी काम कर रहे हैं। मालविका कारलेकर (2000) ने एन.जी.ओ. को शैक्षणिक प्रवर्तक, संस्थागत प्रवर्तक और पारिवारिक प्रवर्तक में बांटने का प्रयास किया। प्रोपेल, लोक जुंबिश, एजुकेशनल गारंटी स्कीम, बोध शिक्षा समिति, प्रथम पहली श्रेणी में आने वाले एन.जी.ओ. हैं। इसके सदस्य समुदाय के व्यक्तियों के साथ 'उनका अपना बनकर' शामिल हो गए। इन संगठनों ने समुदायों की बोली, गीतों और शिल्प–उपकरणों से घनिष्ठता बना ली और इस तरह से समुदायों को शिक्षित करने के लिए गैर–परंपरागत उपकरणों का प्रयोग किया।

दूसरे प्रकार की श्रेणी में शामिल एन.जी.ओ. हैं– लोक जुंबिश, पैलमाइट वर्कर्स डेवलपमेंट सोसाइटी और अवेही (AVEHI)। इन एन.जी.ओ. ने यह महसूस किया कि अपने संगठनों से लड़कियों को जोड़ने में उनके मां के सहयोग की बहुत आवश्यकता है। इन संगठनों के अनुसार शिक्षा के रूपान्तरण की प्रक्रिया में परिवर्तन लाना और उसे लड़कियों की समस्या से जोड़ना जरूरी है। इसलिए शिक्षा से जुड़े सभी कार्यक्रम समय, पाठ्यक्रम, उपस्थिति और पर्यावरण के आधार पर लचीले थे। परिवार में बच्चों की देख–रेख एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से लड़कियां इन शैक्षिक सुविधाओं का लाभ उठा रही हैं। अंततः ये पारिवारिक जीवन का अंग हैं जिसमें महिला समाख्या के कार्यक्रम अगर पर्याप्त रूप से संचालित किए जाते तो ये लड़कियों को बच्चों की देख–रेख के संबंध में पारिवारिक मदद उपलब्ध कराके, उनकी माताओं के साथ संपर्क स्थापित करके और उन्हें अन्य मुद्दे जैसे लैंगिक हिंसा के प्रति संवेदनशील बना सकते थे, जो कि बहुत अर्थपूर्ण होता है।

शिक्षा के लिए एन.जी.ओ. का यह प्रयास उनकी भूमिका की एक झलक प्रस्तुत करता है न कि इससे सभी एन.जी.ओ. के पूरे कामों का विवरण मिलता है। साक्षरता को व्यापक रूप से फैलाने और प्राथमिक शिक्षा से ज्यादा से ज्यादा लोगों को लाभान्वित करने जैसे उद्देश्य की पृष्ठभूमि में, जब राज्य वर्तमान परिस्थितियों को सुधारने में असमर्थ हो गया,तो एन.जी.ओ. ने ऐसे रास्ते दिखाए जिनका पालन करके लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में एन.जी.ओ. शिक्षा के लिए आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध कराने की राज्य की जिम्मेदारी का पूरा भार नहीं ले रहे हैं, ये सक्रिय भागीदार के रूप में काम कर रहे हैं। एन.जी.ओ. अपने निचले स्तर तक के निर्धारित काम के अतिरिक्त लड़कियों को शिक्षित करने की मांग के अनुरूप वातावरण निर्मित करने में भी भरपूर मदद कर रहे हैं। इस प्रकार अपने अन्य कार्यक्रमों के साथ, जैसे जागरूकता को जगाने, हिंसा का विरोध करने, महिलाओं में आत्मविश्वास भरने के अतिरिक्त शिक्षा सशक्तीकरण का भी कार्य किया।

टिप्पणी

निजीकरण एवं बहिष्करण

लैंगिक भेदभाव वाले समाज में, जहां लड़कियों की शिक्षा को कम प्राथमिकता मिलती है, वहां शिक्षा के मूल्य पर लड़कियों का काम करना, शिक्षा के लिए किए जा रहे प्रयासों को हतोत्साहित करने वाला है। इस दिशा में होने वाले कई अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि गरीब परिवारों में महिला शिक्षा पर सबसे पहले आपत्ति आती है। आयु वर्ग और मासिक घरेलू प्रति व्यक्ति व्यय वर्ग में, ग्रामीण परिवारों में जिनकी प्रति व्यक्ति आय 120–140 रु. से कम है, इनमें 10–14 आयु वर्ग में 65.4 प्रतिशत लड़कों की तुलना में 31.1 प्रतिशत लड़कियां विद्यालय में उपस्थित होती हैं। शहरी भारत में इसी आयु वर्ग में, इसी समान (120–140 से कम मासिक आय) आय वर्ग में लड़के 28.3 प्रतिशत हैं तो लड़कियां 6.4 प्रतिशत हैं। शहरी क्षेत्र में इसी आयु वर्ग में लड़के 31.6 प्रतिशत और लड़कियां 17.4 प्रतिशत हैं। जब आय उच्चतर होती है, उदाहरण के लिए, अगर प्रतिमाह आय 560 रु. से अधिक है तो ग्रामीण क्षेत्रों में 10–14 आयु वर्ग में विद्यालय में लड़कियों का प्रतिशत 78.5 है जबकि शहरी क्षेत्रों में यह प्रतिशत 93.5 प्रतिशत है। यह आंकड़ा आय और नामांकन के मध्य संबंध की ओर उसी तरह इशारा करता है जैसे लिंग भेदभाव पर आधारित मूल्य व्यवस्था के संदर्भ में ग्रामीण शहरी परिवेश मे अंतर होता है। इस तरह के परिदृश्य में अगर राज्य,समाज को शिक्षित करने की मदद देने से अपने हाथ खींच लेंगे तो इसका सबसे बुरा असर लड़कियों एवं गरीबों पर ही पड़ेगा। कल्याणकारी राज्य की हैसियत से 'विकास' राज्य का मुख्य उद्देश्य है, इसलिए राज्य ने मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी ले ली। कुछ राज्य उदाहरण के लिए महाराष्ट्र और गुजरात ने लड़कियों को कॉलेज स्तर तक की मुफ्त शिक्षा को उपलब्ध कराने वाली नीतियों को अपनाया। विगत पांच दशकों की अवधि में शिक्षा पर होने वाल व्यय के प्रतिशततः आबंटन के कुछ आंकड़े देखने पर हमें महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखते हैं। उदाहरण के लिए 1970 के दशक में केंद्र में जहां तकनीकी शिक्षा पर 28 प्रतिशत खर्च किया, वहीं यह 1990 के दशक में घटकर 19 प्रतिशत हो गया। हालांकि प्रारम्भिक या माध्यमिक शिक्षा पर व्यय में केंद्र ने स्वयं द्वारा शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय में महत्वपूर्ण कमी की। 1992 की अवधि इसलिए विशिष्ट है कि इस दौरान नई आर्थिक व्यवस्था को अपनाया गया जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण की ओर मोड़ दिया। प्राथमिक शिक्षा को प्रचारित करने वाले कई कार्यक्रम विदेशी फंडिंग से मदद पाते हैं। उदाहरण के लिए जिला प्राइमरी शिक्षा परियोजना के लिए तकरीबन 85 प्रतिशत फंड विदेशी दानदाताओं से आता है। वैसे यह निश्चित है कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम जो महिलाओं और लड़कियों को लक्ष्य करके चलाए जाते हैं, वे सभी विदेशी दाताओं से मदद पाते हैं। संरचनात्मक व्यवस्था के प्रारम्भ की अवधि में विविध क्षेत्रों में सार्वजनिक व्यय की कमी का पालन किया जा रहा था, जिसमें शिक्षा भी शामिल है। उच्च शिक्षा में यह कमी पूर्णतया स्पष्ट है। वर्तमान में यू.जी.सी. द्वारा विभिन्न विश्वविद्यालयों के रख–रखाव से हाथ खींचने के परिणामस्वरूप, विश्वविद्यालयों को मदद हेतु निजी क्षेत्र की ओर देखना पड़ रहा है। फीस में वृद्धि और प्रति व्यक्ति फीस लेने की प्रवृत्ति महिलाओं की शिक्षा को जोखिम में डाल रहा है। संक्षेप में शिक्षा का निजीकरण आर्थिक रूप से कमजोर स्तर की लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा को विशेषकर प्रभावित करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा को रोकने के लिए कानून कब बनाया गया?

   (क) 2002 (ख) 2005

   (ग) 2006 (घ) 2010

6. किस समिति की रिपोर्ट को 'समानता की ओर' या Towards Equality माना जाता है?

   (क) हंसा मेहता समिति (ख) भक्तवत्सलम कमेटी

   (ग) राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (घ) फूलरेनु गुहा समिति

टिप्पणी

2.5 लैंगिकता एवं कक्षा अभ्यास

कक्षायी प्रक्रियाएं, विद्यालय का ऐसा अभिन्न अंग है, जिस पर पूरी शिक्षा व्यवस्था की नींव टिकी हुई है। कक्षायी प्रक्रियाएं दिखने में एकदम सहज प्रतीत होती हैं परंतु यदि गहराई से उनका विश्लेषण किया जाए तो किसी भी विषय की कक्षा में ऐसी बहुत सारी बातें होती हैं जिनमें लैंगिक भेदभाव एवं लैंगिक रूढ़िबद्धता निहित होते हैं और साथ ही ये प्रक्रियाएं लैंगिक भूमिकाओं को भी बढ़ावा देती हैं। इन प्रक्रियाओं में पाठ्यपुस्तकों द्वारा शिक्षण, शिक्षक द्वारा करवाई गई विभिन्न गतिविधियां, शिक्षक द्वारा छात्रों से संवाद के लिए प्रयुक्त की गई भाषा, विभिन्न कार्यों में विद्यार्थियों की भागीदारी, मॉनिटर की भूमिका आदि शामिल है। एक शिक्षक को स्वयं सभी लिंगों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। शिक्षक कक्षा में किस प्रकार संतुलन बनाए रख सकते हैं इसके लिए कुछ सुझाव नीचे दिए गए हैं–

- लड़के एवं लड़कियों का विभाजन प्रारम्भिक स्तर पर अलग–अलग कक्षाओं में न करें। ऐसा करने से लड़के एवं लड़कियों में सहयोग की एवं साथ–साथ काम करने की भावना नहीं पनप पाती। ऐसे में उनके बीच का लिंग भेद और गहरा सकता है। बेहतर यही होगा कि कम से कम प्राथमिक स्तर तक सह शिक्षा दी जाए जिससे उनमें आपसी सहयोग एवं समानता के मूल्य का विकास किया जा सके।
- लड़के एवं लड़कियों को अलग–अलग न बैठाकर एक साथ बैठने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। रोल नंबर के हिसाब से भी बैठाया जा सकता है।
- कक्षा को छात्रों के लिए आरामदायक स्थान बनाया जाना चाहिए। ब्लैक बोर्ड सबको दिखे बैठने के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।
- कक्षा में दर्शाए जाने वाले सामान या पोस्टर ऐसे न हों जो लैंगिक भेदभाव को दर्शाते हो। सभी विद्यार्थियों द्वारा बनाए गए पोस्टर बिना किसी भेदभाव के लगाए जाने चाहिए।
- कक्षा में कोई भी गतिविधि करवाते हुए लैंगिकता किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिए।

टिप्पणी

- प्रत्येक कक्षा में दो मॉनिटर होने चाहिए–एक लड़का एवं एक लड़की। किसी भी सह शिक्षा की कक्षा में यह आवश्यक है। यदि किसी एक को (सिर्फ लड़का या सिर्फ लड़की) कक्षा का मॉनिटर बनाया जाता है तो दूसरे लिंग के प्रति भेदभाव की संभावना हो सकती है। इसलिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- सामूहिक क्रियाकलाप एवं खेलकूद के लिए मिले–जुले समूह बनाए जाए। लड़के एवं लड़कियों के खेलों का बंटवारा न किया जाए। अक्सर देखा गया है लड़कियों को टेनिस और खो–खो जैसे खेल खेलने को कहा जाता है जबकि लड़कों को क्रिकेट, फुटबाल आदि। यह साफ दर्शाता है कि किस प्रकार खेल कूद जैसी साधारण सी दिखने वाली प्रक्रिया में भी लैंगिक भेदभाव छुपा हुआ है।
- लड़कों एवं लड़कियों, दोनों को ही कक्षा में पढ़ने, सुनाने और बोलने के समान अवसर दें जिससे वे अपने विचारों को उन्मुक्त रूप से प्रकट कर सकें। अक्सर देखा गया है कि कक्षा में किसी एक लिंग की सहभागिता अधिक होती है। ऐसे में दूसरा लिंग अलगाव महसूस करने लगता है। शिक्षक को इस बात का खास तौर पर ध्यान रखना चाहिए कि कक्षा में सभी वर्ग, लिंग आदि की सहभागिता समान रूप से हो।
- कक्षा में कम बोलने वाले लड़के–लड़कियों से सवाल पूछे जाएं और उनसे बात की जाए। कई बार कम बोलने वाले लड़के या लड़कियों के पीछे कोई खास वजह हो सकती है। हो सकता है कि उनका किसी प्रकार का शोषण किया जा रहा हो, या कोई अन्य वजह भी हो सकती है जो उनको परेशान कर सकती है। ऐसे में शिक्षक को चाहिए कि वह ऐसे विद्यार्थियों से बात करे और उनकी परेशानी का पता लगाए।
- विद्यालय में आने से पहले ही जो लैंगिक भूमिकाएं लड़के एवं लड़कियां, समाजीकरण की वजह से ग्रहण कर लेते हैं उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करके भेदभाव को दूर करने की कोशिश की जाए। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दा है और इसको परिवर्तित करना इतना सरल नहीं है। कई बार बहुत सी पूर्वधारणाएं विद्यार्थी पहले से ही साथ ले के आते हैं। ऐसे में एक शिक्षक को धैर्यपूर्वक उनकी इन पूर्वधारणाओं को बदलने का प्रयास करना चाहिए।
- लड़कियों को भी आवश्यकता से अधिक संरक्षित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उससे लड़कों के भीतर आक्रोश एवं लड़कियों में आश्रितता पनपती है। कई बार विद्यालय में या कोई शिक्षक लड़कियों को अधिक संरक्षित करने का प्रयास करते हैं ऐसे में यह संभव है कि लड़कों में लैंगिक रूढ़िबद्धता और पूर्वधारणाएं और अधिक बढ़ जाए। अतः शिक्षक को किसी एक के प्रति भेदभावपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहिए।
- शिक्षकों का आपसी व्यवहार भी विद्यार्थियों को बहुत प्रभावित करता है। कई बार पुरुष शिक्षक और महिला शिक्षक स्वयं गुटों में बंटे होते हैं। उनको स्वयं मिल–जुल कर रहना चाहिए। विद्यार्थियों में शिक्षकों द्वारा किए गए व्यवहार का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।
- लड़के एवं लड़कियों को एक दूसरे की बात सुनने एवं सम्मान करना सिखाया जाना चाहिए।

- विभिन्न कक्षा कार्यों के लिए मिले–जुले समूहों का निर्माण किया जाना चाहिए।
- विद्यार्थियों के साथी समूहों में एक दूसरे के सहयोग एवं साझा करने की योग्यता विकसित करना।
- कक्षा के रोज़मर्रा के कार्यों जैसे ब्लैक बोर्ड साफ करना, पानी लाना, नोटिस बोर्ड आदि जैसे कार्य लड़के एवं लड़की दोनों से करवाने चाहिए।
- प्रार्थना के समय विद्यार्थियों को लाइन में लगवाना जैसे कार्य भी दोनों लिंगियों से करवाने चाहिए।
- व्यक्तिगत साफ–सफाई की जांच करने जैसे कार्य एवं गृह कार्य को इकट्ठा करना आदि भी दोनों के द्वारा ही समान रूप से होना चाहिए।
- विद्यार्थियों से किसी भी प्रतियोगता में अपने नेतृत्व का चुनाव स्वयं करने के लिए कहा जा सकता है।
- किसी भी कार्यक्रम से संबंधित महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां भी लड़के एवं लड़की दोनों को ही सौंपनी चाहिए।
- कक्षा में किसी भी शिक्षक को अपनी भाषा का प्रयोग सोच–समझ कर करना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसे वाक्यों का प्रयोग न करें– "अबे तू लड़की है क्या जो रो रहा है।" इस प्रकार कक्षा में ऐसी बहुत सी सूक्ष्म घटनाएं होती हैं जिनका प्रभाव हमें उस समय तो पता नहीं चलता परंतु वो किसी न किसी विद्यार्थी के जीवन को, उसके मन–मस्तिष्क को प्रभावित ज़रूर करती है।
- रोज़मर्रा की कक्षा में होने वाले कोई दो ऐसे उदाहरण दो जो लैंगिक भेदभाव को दर्शाते हैं।
- किसी भी गतिविधि को मिले–जुले समूह में करवाने के क्या लाभ हो सकते हैं?

टिप्पणी

2.5.1 छात्रों की क्षमताओं के बारे में शिक्षक की धारणाओं में लैंगिक पूर्वाग्रह

शिक्षक की भूमिका विद्यार्थियों के लिए वह सुरक्षित स्थान उपलब्ध कराने की है, जिसमें बच्चे अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित कर सकें। जॉन डीवी (1915) इस संदर्भ में कहते हैं, "शिक्षा के अनुक्रम में शिक्षक के हिस्से में प्रमुख काम यह होता है कि वह ऐसा पर्यावरण तैयार करे जिससे अनुक्रियाओं का उद्दीपन हो और शिक्षार्थी को मार्गदर्शन मिले।" वह अंतःक्रिया द्वारा विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करता है। वह विद्यार्थियों के लिए ऐसा धरातल तैयार करता है जहां बच्चे अपने अनुभव दूसरों के साथ बांट सकें। मुख्यतः लड़कियां स्कूल और कक्षा में निर्णय प्रक्रिया के विवेचन के लिए तैयार हो सकें।

शिक्षाशास्त्र और पाठ्यक्रम परिवर्तन वास्तविक रूप नहीं ले सकता जब तक कि शिक्षक की उसमें सशक्त भूमिका न हो। एनसीएफ़ परिवर्तन में शैक्षिक कारकों की भूमिका को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और भी महत्ता प्राप्त है, क्योंकि शिक्षा के द्वारा समाज, संस्कृति, विचार, तकनीकी तथा विज्ञान, ज्ञान, मनोरंजन के साधनों, राष्ट्रीय एकता, आर्थिक गत्यात्मकता, उदार तथा व्यापक धर्म इत्यादि का विकास होता है। अन्य शब्दों में, हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि शिक्षा के द्वारा परिवर्तन के सभी कारक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। शैक्षिक कारकों के अंतर्गत शिक्षा के उद्देश्य,

पाठ्यक्रम, पाठ्य–सहगामी क्रियाएं, शिक्षण विधियां, नवाचार, अनुशासन की प्रणाली, मापन एवं मूल्यांकन, विद्यालय प्रशासन एवं प्रबंधन, बालक तथा अध्यापक आते हैं। सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया के आधार स्तम्भ शिक्षक हैं। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को प्रमुख मानते हुए एडम्स ने इसे 'द्विमुखी प्रक्रिया' नाम दिया है जिसको निम्नलिखित प्रकार देखा जा सकता है–

टिप्पणी

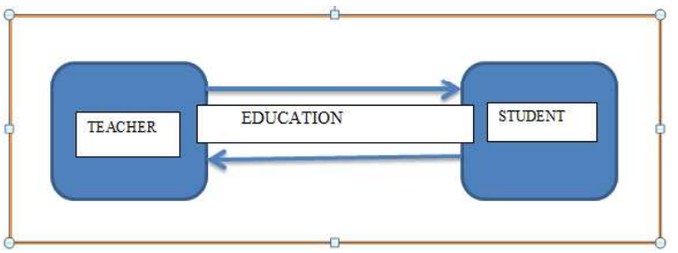

जॉन डीवी ने पाठ्यक्रम को महत्वपूर्ण मानते हुए इसमें जोड़कर इसे 'त्रिमुखी प्रक्रिया' माना जो इस प्रकार है–

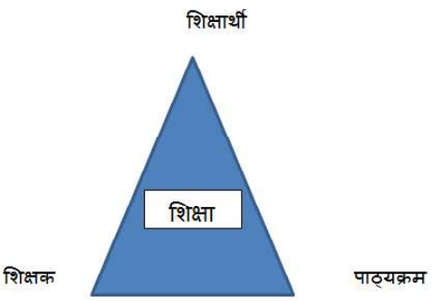

इस प्रक्रिया से इतना तो निश्चित हो जाता है कि परिवर्तन के शैक्षिक कारक में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। शिक्षक परिवर्तन में अपनी भूमिका शिक्षण विधियों, पाठ्यक्रम शिक्षण उद्देश्यों तथा पाठ्य–सहगामी क्रियाओं आदि के द्वारा सम्पन्न करता है। शिक्षक परिवर्तन अभिकर्ता के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन निम्न प्रकार से करता है–

- शिक्षक अपने प्रभावी व्यक्तित्व तथा उदारता के द्वारा परिवर्तन लाता है।
- शिक्षक पाठ्यक्रम के विषयों और प्रकरणों को समुचित तथा संतुलित ढंग से प्रस्तुत करके शिक्षार्थियों के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालता है, जिससे परिवर्तन आता है।
- शिक्षक का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण परिवर्तन में सहायक बनता है।
- शिक्षक समाज और विद्यालय के मध्य संबंध स्थापित कर परिवर्तन का साधन बनता है।
- शिक्षक लिंग, धर्म, जाति, ऊंच–नीच, गरीब–अमीर इत्यादि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करता है जिसके कारण धीरे–धीरे इन विषयों के प्रति सकारात्मक संदेश और परिवर्तन आता है।
- शिक्षक पाठ्य–सहगामी क्रियाओं के आयोजन द्वारा सामाजिक कुरीतियों, समसामयिक मुद्दों आदि पर कार्यक्रमों का आयोजन करके परिवर्तन लाने का कार्य करते हैं।

टिप्पणी

- शिक्षक विज्ञान तथा तकनीकी के प्रयोग द्वारा परिवर्तन लाने का कार्य सम्पन्न करते हैं।
- शिक्षक शिक्षार्थियों को स्वानुशासन हेतु प्रशिक्षित कर परिवर्तन में भूमिका निभाता है।
- शिक्षक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पर्वों, दिवसों का आयोजन करके परिवर्तन लाने में सहायता करते हैं।
- गतिशील तथा क्रिया–केन्द्रित शिक्षण विधियों के प्रयोग द्वारा शिक्षक परिवर्तन हेतु भूमिका तैयार करते हैं।
- शिक्षक अपनी कर्तव्यनिष्ठा तथा ईमानदारी के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावात्मक वातावरण सृजित करते हैं जिससे परिवर्तन को गति प्राप्त होती है।
- शिक्षक लोकतंत्रीय आस्थाओं में आस्था रखने के कारण परिवर्तन का अग्रदूत बनते हैं।
- शिक्षकों द्वारा पक्षपातरहित, त्याग, प्रेम, सहिष्णुता तथा परोपकार के नवीन प्रतिमानों की स्थापना द्वारा परिवर्तन में भूमिका निभाई जाती है।
- शिक्षक अपने चरित्र, आदर्श और जीवन मूल्यों के द्वारा शिक्षार्थियों में परिवर्तन की नींव रखता है।
- शिक्षक राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय विषयों का ज्ञाता तथा सामाजिक सरोकारों में रुचि लेकर परिवर्तन की गति को बढ़ाता है।
- शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञाता होना चाहिए। इस प्रकार वह परिवर्तन की गति को बढ़ाता है।
- शिक्षक को बाल केन्द्रित दृष्टिकोण से परिपूर्ण तथा व्यक्तिगत निर्देशन एवं परामर्श का ज्ञाता होना चाहिए।
- शिक्षक को अपने देश की संस्कृति के साथ–साथ अन्य देशों की संस्कृति के प्रति उदार होना चाहिए, जिससे सांस्कृतिक परिवर्तन में सहायता प्राप्त होगी।
- शिक्षक को विश्व शांति हेतु तत्पर होना चाहिए, जिससे वैश्विक स्तर पर परिवर्तन आएगा।
- शिक्षक को ज्ञान का जिज्ञासु, नवीन ज्ञान को आत्मसात करने, शिक्षार्थियों में जिज्ञासा उत्पन्न करने, सामाजिक सहयोग की प्राप्ति द्वारा परिवर्तन में योगदान दिया जाता है।

बाधक कारक

शिक्षक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, परंतु इसमें कुछ बाधक तत्व हैं जो शिक्षक के परिवर्तन लाने के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। ये बाधक तत्व तथा इनको समाप्त करने हेतु सुझाव निम्नलिखित हैं–

- **अशिक्षा** : भारतीय समाज में अशिक्षितों की संख्या अत्यधिक है। अतः वे शिक्षक को परिवर्तन की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान नहीं कर पाते हैं। अशिक्षा के कारण व्यक्ति परिवर्तन का महत्व नहीं समझते हैं और शिक्षक या जो भी परिवर्तन लाना

टिप्पणी

चाहते हैं, उनको इनका कोई सहयोग प्राप्त नहीं होता है, अपितु विरोध भी यदा–कदा झेलना पड़ता है।

- **रूढ़िबद्ध समाज** : हमारा समाज रूढ़िवादी समाज है जहां हम अपने पुराने विचारों, आदर्शों और मान्यताओं से इस प्रकार जकड़े हुए हैं कि नए विचारों, आदर्शों, मूल्यों और मान्यताओं को सरलता से स्थान नहीं प्रदान कर पाते हैं तथा शिक्षकों को ऐसा करने पर दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है।
- **धार्मिक तथा राजनैतिक कारक** : शिक्षकों के परिवर्तन लाने के कार्य में धार्मिक तथा राजनैतिक अड़चनें आती हैं। धर्म तथा राजनीति के द्वारा धार्मिक उन्माद, जाति आदि को बढ़ावा दिया जा रहा है। ऐसे में शिक्षक के प्रयास धरे रह जाते हैं।
- **संकीर्ण सोच** : हमारे समाज में फैली संकीर्ण सोच के कारण बहुत से लोग अपनी जाति, धर्म, भाषा एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानते हैं और अन्य को हीन समझते हैं। इस कारण विनिमय और अंतःक्रिया का सर्वथा अभाव हो जाता है, जिसके कारण शिक्षक चाहकर भी परिवर्तन के विषय में अपनी प्रभाविता का निर्वहन नहीं कर पाते।
- **स्वार्थपरकता** : समाज वर्गों, जातियों, संप्रदायों इत्यादि में विभक्त है, जहां इनके अपने–अपने कुछ स्वार्थ होते हैं और इस कारण वे परिवर्तन के प्रति समुचित दृष्टिकोण नहीं रखते हैं और परिवर्तन में बाधा उत्पन्न होती है।
- **अंधविश्वास** : अंधविश्वासों के परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन प्रभावित होता है। पुत्र विषयी, तकनीकी तथा विज्ञान विषयी, जाति, धर्म विषयी तमाम अंधविश्वास व्याप्त हैं, जिनके कारण जब शिक्षक परिवर्तनों से अवगत कराते हैं तो लोग समझ बैठते हैं कि वे समाज तथा बच्चों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। इस प्रकार शिक्षक की भूमिका प्रभावित होती है।
- **सांस्कृतिक अलगाव** : संस्कृति में पृथकता होती है और भारतीय संस्कृति में बहुलता है, जिसके कारण शिक्षकों को इन बहुल सांस्कृतिक तत्त्वों के मध्य समन्वय और सामंजस्य बिठाने में विरोध का सामना करना पड़ता है।
- **इच्छा–शक्ति की कमी** : शिक्षक तथा समाज दोनों में ही परिवर्तन के प्रति इच्छा–शक्ति का अभाव है। लोग सब कुछ सरकार के भरोसे छोड़ देते हैं। इच्छा–शक्ति के अभाव में शिक्षक केवल कार्य के घंटे पूर्ण करना मात्र ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता है, जिससे परिवर्तन में उसकी भूमिका पर प्रभाव पड़ता है।

अध्यापन या शिक्षा–विषयक तथा पाठ्यक्रम–स्तरीय परिवर्तन बिना अध्यापक के संभव नहीं है। अध्यापन समस्त शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सबसे अग्रगामी भूमिका एवं महत्व रखता है। इस प्रक्रिया में एक उत्प्रेरक की भूमिका में होने के बावजूद वह सूचना को संचारित करने वाला एक उपकरण मात्र बन कर रह गया है। सभी शिक्षा नीतियों एवं राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2000) में भी इसकी भूमिका को ध्यान में रखते हुए बार–बार दोहराया गया है कि "पूर्व–शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में विभिन्न विषय क्षेत्रों के विषयवस्तु ज्ञान पर बल देना चाहिए। साथ ही स्कूली विषयों के साथ शिक्षण

पद्धतियों को सही प्रकार से एकीकृत किया जाए तथा 'मूल्यांकन' के एक सुदृढ़ अंग को सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है।" इसमें ऐसे प्रशिक्षण का सुझाव दिया गया है जो कि अध्यापकों को 'नई पीढ़ी के पैकेज' को संभालने हेतु मदद करें। इसलिए जब बच्चों की रूपान्तरणकारी, रचनात्मक तथा अधिगम आवश्यकताओं को पहचान लिया जाता है तब अध्यापक सामान्यतः सर्वप्रमुख स्थान पर नहीं रहता, बल्कि अध्यापक तब केवल ज्ञान को सम्पादन या प्रबंधन के कार्य करने वाला रह पाता है न कि ज्ञान का निर्माण करने वाला।

टिप्पणी

परिवर्तन का अभिकर्ता माने जाने वाले शिक्षक के सामने अपनी कक्षा एवं विद्यालयों में लैंगिक समानता को स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है। जब बच्चा विद्यालय पढ़ने आता है तो वह अपने साथ बहुत सारे विश्वास, आदतें, भूमिकाएं एवं रूढ़िबद्धताएं भी लेकर आता है। बच्चा विद्यालय में बहुत कुछ सीखता है परंतु घर पर उन सभी बातों का दोहराव होता है जो उसने पहले से ही घर में सीखी हुई हैं। ऐसे में शिक्षा में एक अंतर्विरोध पैदा हो जाता है। इसको दूर करना भी शिक्षक का ही कार्य है। कृष्ण कुमार (2014) के अनुसार "ऐसे शिक्षक विरले होंगे जो समाज द्वारा तय किए गए लड़की के जीवन के उद्देश्य और शिक्षा के उद्देश्य के बीच मौजूद अंतर्विरोध को लेकर सचेत हैं और अपने शैक्षणिक प्रयास से शिक्षा के उद्देश्य का संवर्धन करने में संलग्न हैं।"

दरअसल शिक्षा को परिवर्तन का हथियार मानने में हम बहुत जल्दबाज़ी कर देते हैं। हमें लगता है कि शिक्षा जादू की छड़ी है और शिक्षा में बढ़ोतरी का मतलब है समाज की सभी रूढ़िवादी मान्यताओं की समाप्ति, जबकि ऐसा नहीं है। हमने समाजीकरण के बारे में पढ़ा है और उसकी प्रभावशाली प्रवृत्ति के बारे में भी समझा है। तो मात्र शिक्षा से समाजीकरण के प्रभावों एवं उसके कारण बनी मान्यताओं को इतनी आसानी से खत्म नहीं किया जा सकता। हाल ही में हुए शोध यह बताते हैं कि लैंगिक भेदभाव एवं उससे जुड़े कारक पढ़े–लिखे परिवारों में भी खूब होता है। वहां भी महिलाओं की स्थिति कम पढ़े–लिखे परिवार की महिलाओं जैसी ही है। उदाहरण के लिए पढ़े–लिखे परिवारों में दहेज लेने की प्रथा खूब प्रचलित है। कन्या भ्रूण हत्या की दर भी शिक्षित परिवारों में ही अधिक है। कृष्ण कुमार (2014) लिखते हैं कि "शिक्षा के जरिए लड़कियों की सामाजिक नियति बदल देने के इच्छुक लोग प्रायः स्त्री की परिस्थिति को और पराधीनता को गहराई में जाकर समझने का प्रयास नहीं करते। वे जल्दी से अपना लक्ष्य पा लेना चाहते हैं और इस चाह की अभिव्यक्ति नारीवादी सक्रियता को हाल के दशकों में मिली गिनी–चुनी सफलताओं में पाते हैं। ये सफलताएं अवश्य महत्वपूर्ण हैं पर नारी की पराधीनता के लंबे इतिहास को देखते हुए इन सफलताओं पर इतराना एक नादानी होगी"।

परिवर्तन सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक सभी क्षेत्रों के लिए आवश्यक है। परंतु परिवर्तन समाज के लिए हितकारी एवं सकारात्मक होने चाहिए। जो परिवर्तन समाज में नकारात्मकता फैलाते हैं उनके दुष्परिणाम समाज को झेलने पड़ते हैं। शिक्षक जो भविष्य का निर्माता है यह उसका दायित्व बनता है कि वह सकारात्मक परिवर्तन को सशक्त करने में अपनी भूमिका निभाए। लैंगिकता के दृष्टिकोण से समाज को बदलने में एक शिक्षक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। शिक्षक, जो स्वयं बहुत सारी मान्यताओं एवं रूढ़ियों से ग्रस्त होते हैं उनको अपनी मान्यताओं के खिलाफ जाकर,

उनका प्रतिरोध करते हुए अपने विद्यार्थियों को समाज की मान्यताओं एवं बाधाओं का सामना करते हुए चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करना है।

अध्यापकों के लिए यह घोषणा करना बहुत सामान्य है जैसे किसी छात्र रवि का व्यक्तित्व बहुत ही नियंत्रक प्रकार का है अर्थात इसका अर्थ यह हुआ कि छात्र बहुत ही विश्वसनीय नेता बन सकता है जबकि नीना बहुत अच्छा खाना बनाती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह घर की देखभाल बहुत अच्छे तरीके से रख सकती है तथा परिवार को खुश रखने में सहायता कर सकती है। इस प्रकार के वक्तव्य देखने में तो बहुत सीधे–साधे एवं निर्दोष प्रतीत होते हैं परंतु इनके द्वारा लिंग भेद के बहुत गहरे अर्थ प्रसारित होते हैं। इस प्रकार के वक्तव्यों के द्वारा एक प्रकार से बहुत युवावस्था में ही महिला एवं पुरुष की भूमिका का निर्धारण हो जाता है। हालांकि कुछ स्थितियों में लड़के भी लड़कियों की भांति खाना पका सकते हैं परंतु उन्हें कभी भी गृहिणी की भूमिका नहीं दी जाती है। लिंगभेद से संबंधित संज्ञा का उपयोग सभी प्रकार की सामाजिक संस्थाओं में फैलाया जाता है यहां तक कि शैक्षणिक संस्थान भी इससे अछूता नहीं रह गया है।

टिप्पणी

एक अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह विद्यालय में प्राकृतिक तथा उदासीन रूप से व्यवहार करें तथा उनके द्वारा दिए गए सभी प्रेक्षण लिंगभेद से मुक्त होने चाहिए तथा इसका पर्याप्त ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह अपनी किसी भी गतिविधि के द्वारा लिंग भेद की प्रथा का पोषण ना करें। सभी प्रकार की दंतकथाओं में किसी राजकुमार को सुंदर दिखाते हुए वर्णित किया जाता है, तथा वह इतना साहसिक होता है कि किसी दुखी राजकुमारी को किसी कठोर रानी के चंगुल से छुड़ा लेता है। अतः अध्यापक को दंतकथाएं कहते समय बहुत ही सावधान रहना चाहिए तथा उन्हें राजकुमार के साहसिक क्रियाओं को व्यक्त करते हुए बहुत ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार की दंतकथाएं पुरुषवादी चरित्र की बहादुरी को बढ़ावा देने के लिए होती हैं। अध्यापक को स्वयं भी इस बात को स्पष्ट कर लेना चाहिए कि वह सेक्स तथा लिंग के अंतर को भली–भांति समझ ले। उन्हें यह पता होना चाहिए कि सेक्स किसी व्यक्ति की प्राकृतिक विशेषता होती है जबकि लिंग को समाज के द्वारा विकसित किया जाता है तथा लैंगिक भूमिकाओं को सामाजिक व्यवस्था के अंदर ही रहकर बढ़ावा दिया जाता है। युवा मस्तिष्क यह नहीं समझ पाता है कि इस प्रकार के भेद सामाजिक व्यवस्था द्वारा ही उत्पन्न होते हैं तथा लिंग से संबंधित प्रथाओं का विद्यालय में अध्यापक के द्वारा, सभी छात्रों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

अध्यापक को सभी छात्रों को अपने शिक्षण कक्ष में सभी प्रकार की गतिविधियों में सम्मिलित करना चाहिए चाहे वह लड़के हों या लड़कियां हों चाहे वह किसी गणितीय समस्या को हल कर रहे हों या कक्षा में रखे हुए सामान की व्यवस्था कर रहे हों।

2.5.2 स्कूली गतिविधियां एवं संस्कृति

विद्यालय में आयोजित होने वाली विभिन्न गतिविधियां विद्यार्थियों में न केवल रचनात्मक प्रतिभा का उदय करती हैं बल्कि गुरु–शिष्य संवाद, सौहार्दपूर्ण संबंध, कल्पनाशीलता, रचनात्मक सृजन और कलात्मक भावनाओं को भी उजागर करके उनका विकास करती हैं।

आज का विद्यार्थी भविष्य के राष्ट्र व समाज का निर्माता है। बेहतर समाज की संरचना के लिए बच्चों का सर्वांगीण विकास आवश्यक है। अध्यापकों को विद्यार्थियों को

पाठन शिक्षा के साथ–साथ नैतिक व संस्कारित शिक्षा भी देनी चाहिए। अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों की दिनचर्या पर ध्यान दें तथा उन्हें सामाजिक बुराइयों के प्रति भी जागरूक करें ताकि वे बुरी संगत में न पड़ें। विद्यार्थियों को अपनी ऊर्जा का सदुपयोग पढ़ाई, खेलकूद, सांस्कृति व अन्य सामाजिक गतिविधियों में रखना चाहिए। स्कूली गतिविधियों में भाग लेने से बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास होता है।

टिप्पणी

विद्यालय की संस्कृति वहां के परिवेश, विद्यार्थियों की योग्यता एवं उनका मूल्यांकन करने की प्रविधियों, उत्सव, जयंतियां, अनुशासन, छात्र–शिक्षक संबंध एवं उपलब्ध भौतिक संसाधनों द्वारा पहचानी जाती है। इसके द्वारा विद्यालय की अलग पहचान बनती है।

जो विद्यालय एक सकारात्मक संस्कृति का विकास करने और उसे कायम रखने में सक्षम होता है वह जानता है कि सीखने के लिए प्रभावी वातावरण विकसित करने में संस्कृति के कौन–से पहलू महत्वपूर्ण होते हैं। वह अपने विद्यार्थियों को ये मूल्य जान–बूझकर सौंपता है। सामूहिक जागरूकता और कार्यवाही के माध्यम से, विद्यार्थियों के सीखने और उपलब्धि को बढ़ाने के लिए संस्कृति का सकारात्मक उपयोग किया जा सकता है। चाहे छोटे कामों के माध्यम से जैसे सार्वजनिक समारोहों में उपलब्धियों से जैसे पाठ्यक्रम के सुधार में योगदान करने के लिए शिक्षकों, विद्यार्थियों और अन्य हितधारकों के लिए प्रजातांत्रिक प्रक्रियाएं विकसित करना।

बालक के सर्वांगीण विकास हेतु निर्दिष्ट पाठ्यक्रम शिक्षा के साथ–साथ वर्ष पर्यंत पाठ्येत्तर गतिविधियां विद्यालय का एक वैशिष्ट है। विद्यालय का प्रयास रहता है कि हर बालक अपने मानसिक, शारीरिक व आध्यात्मिक विकास हेतु किसी न किसी गतिविधि में अवश्य रूप से भाग लें। जैसे–

1. वंदना : संगीतमय सस्वर ईश्वर की वंदना विद्यालय की गतिविधियों में शामिल है। इसमें बालक के साथ अध्यापकों की सहभागिता प्रातःकाल से ही एक संस्कारयुक्त वातावरण का निर्माण करती है।
2. शारीरिक गतिविधियां : विद्यालय में प्रातःकाल में सामूहिक शारीरिक अभ्यास बच्चों को नियमित रूप से करवाया जाता है, जिसमें योगासन, जिमनास्टिक, वालीबॉल, कबड्डी, खो–खो, बैडमिंटन आदि शामिल हैं।
3. सांस्कृतिक गतिविधियां : इनके अंतर्गत विद्यालय में उत्सव एवं जयंतियों का आयोजन किया जाता है। गीत–संगीत, नाटक, नृत्य आदि का अभ्यास कराया जाता है।
4. वैज्ञानिक गतिविधियां : वैज्ञानिक गतिविधियों के अंतर्गत पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट प्रायोगिक कार्यों के अतिरिक्त समय–समय पर विज्ञान मेला, विज्ञान प्रदर्शनी, वाद–विवाद, पत्रवाचन एवं गणित से संबंधित प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है।
5. बौद्धिक गतिविधियां : विद्यालयों में समय–समय पर बौद्धिक प्रतियोगिता का विद्यालय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक आयोजन किया जाता है। जिसमें सुलेख, चित्रकला, कविता–कहानी लेखन, अंत्याक्षरी आदि का अभ्यास कराया जाता है।

टिप्पणी

यह स्पष्ट हो ही चुका है कि लिंग भेद एक सामाजिक कृत्य है जिसका व्यक्तियों के आचरण एवं व्यवहार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज में लिंग को लेकर अलग–अलग प्रकार की व्यवस्थाएं हैं। भारत जैसे विविध सांस्कृतिक देश में, समाज में महिलाओं की स्थिति में मजबूती लाने के विकास क्रम में निरंतर संघर्ष की आवश्यकता है। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित की गई इस समस्या का हल विविधता पूर्वक ही निकल सकता है। शिक्षा के द्वारा समाज में व्याप्त लैंगिक संबंधों के इस जाल को तोड़ने तथा परिवर्तित करने के लिए सामूहिक प्रयास करने की त्वरित आवश्यकता महसूस की जा रही है।

वर्तमान समय में विद्यालय अबोध बालक से की जाने वाली अपेक्षाओं के कारण बहुत उच्च दबाव वाले वातावरण में सामाजिक तथा शैक्षणिक कार्य कर रहे हैं। विद्यालय एक बहुत ही संक्रमणीय काल है जोकि किशोरावस्था में बच्चों के संक्रमण काल को अनेक विधियों द्वारा व्यवस्थित करता है। कुछ संक्रमण तो बहुत सरलतापूर्वक हो जाते हैं परंतु कुछ संक्रमण बहुत अधिक मानसिक संघर्ष तथा आदरणीय प्रभाव भी डालते हैं। इनमें से एक मानसिक समस्या अवसाद की भी होती है। जबकि विद्यालय का वातावरण बहुत ही तनावपूर्ण होता है इसमें जैविकीय प्रकार यह भी किसी बच्चे के मनोवैज्ञानिक स्वस्थ होने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किशोरावस्था में हारमोंस में परिवर्तन होता है तथा इससे अवसाद भी उत्पन्न हो सकता है अथवा आक्रामक व्यवहार भी हो जाता है। इसे संक्रमण काल में लड़के तथा लड़कियों में एक बढी हुई आक्रमकता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है कुछ लड़कियों में बढ़ा हुआ टेस्टोसटेरोन (Testosterone) भी बढ़ते हुए अवसाद का एक संकेत हो सकता है।

माध्यमिक विद्यालयों के बच्चों में स्वयं का मार्गदर्शन करने की कमी भी समस्याओं को उत्पन्न करती है। यह देखा गया है कि स्वयं के मार्गदर्शन करने तथा अवसाद में सीधा संबंध होता है। स्वयं का मार्गदर्शन करना भी एक ऐसा उत्पाद है जो जैविकीय नहीं है वरन सांस्कृतिक रूप से अर्जित किया हुआ होता है। यह देखा गया है कि हाई स्कूल की लड़कियों में शारीरिक बनावट के कारण निम्न स्तर का स्वयं मार्गदर्शन पाया जाता है। रहने के कारण भी अवसाद हो जाता है एवं अपर्याप्त शैक्षणिक तथा सामाजिक सहायता के कारण हाई स्कूल बहुत ही चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इस प्रकार की किशोरावस्था में लड़की की सामाजिक स्थिति हाई स्कूल से प्रभावित होना प्रारंभ हो जाती है। हाई स्कूल लड़की तथा लड़के दोनों के लिए ही महत्वपूर्ण संक्रमण काल होता है क्योंकि इस समय उनका शारीरिक बनावट महिला एवं पुरुष में परिवर्तित हो रही होती है। इस संक्रमण काल के दौरान जो कि हाई स्कूल में होता है प्रत्येक लिंग शारीरिक आवश्यकताओं की विभिन्न प्रकार से पूर्ति करता है। उनका शरीर उसी प्रकार से परिवर्तित होता है जिस प्रकार के वातावरण में भी रहते हैं। शारीरिक प्रतिबिंब मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए भी बहुत निकटता से संबंधित होता है तथा किशोरावस्था में इसके हानिकारक प्रभाव भी हो सकते हैं। हाई स्कूल में पढ़ने वाला कोई भी छात्र या छात्रा इच्छा अनुरूप शारीरिक बनावट की आशा करने का अनुभव करता है। प्रारंभिक युवावस्था के दौरान शारीरिक आकर्षण तथा शरीर की बनावट लगभग स्थिर रूप से परिवर्तित होती है परंतु जैसे ही बालक या बालिका 18 वर्ष के आस पास पहुंचते हैं तो उनके हार्मोन बहुत तेजी से परिवर्तित होते हैं। इस काल में बालक–बालिका में अनेक प्रकार की समस्याएं आ जाती हैं। जैसे कोई लड़की पतली

रहना चाहती है तथा इसी प्रकार से लड़का चाहता है कि वह मजबूत तथा पुरुषत्व वाले शरीर का हो। इस प्रकार से यह सत्य है कि शरीर की भौतिक बनावट लैंगिक भेद को बढ़ाती है तथा इसके द्वारा सौंदर्य मानकों की स्थापना भी होती है। विद्यालय काल में शारीरिक दिखावट भी एक प्रमुख निर्णायक भूमिका रखता है जिसके द्वारा अनेक प्रकार की लैंगिक समस्याएं और जटिल हो जाती है।

टिप्पणी

2.5.3 कक्षा अभ्यास

शिक्षण कार्य के दौरान कक्षाओं में होने वाले क्रियाकलाप एवं दिनचर्या के द्वारा छात्रों में परस्पर अंतःक्रिया करने का बेहतर (Better Interaction) अवसर प्राप्त होता है। छात्रों के मध्य होने वाली यह दैनिक अंतःक्रिया लैंगिक आधार पर भेदभाव वाली नहीं होनी चाहिए। कक्षाओं में एक सकारात्मक वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए। अनेक शोधकर्ताओं ने वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में अनेक खामियों को उजागर भी किया है। इनका विश्वास एवं मानना है कि लड़के एवं लड़कियों को अलग प्रकार से लिया जाता है इसमें विद्यालय के अध्यापक एवं कर्मचारीगण भी सम्मिलित होते हैं। यह भेदभाव भरा आचरण चेतन अथवा अचेतन दोनों ही स्थितियों में होता रहता है। अकसर अध्यापकगण बिना जाने ही लिंगभेद को छात्र एवं छात्राओं के मध्य विभेदीकरण के माध्यम से कर देते हैं। जैसे कि छात्राओं एवं छात्रों को पृथक–पृथक पंक्तियों में लगा देना। इसका स्पष्ट आशय यह हुआ कि लड़का तथा लड़की को अलग–अलग तरीके से देखा जा रहा है। अध्यापक लड़कियों की तुलना में लड़कों के साथ अधिक संपर्क में होते हैं। इस संपर्क का एक कारण यह भी है कि कक्षा में सही अनुशासन बनाकर रखने के लिए उन्हें लड़कों की अकसर जांच करनी पड़ती है। कुछ शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया है कि लड़कियों की तुलना में लड़कों का शैक्षणिक परिणाम बेहतर होता है। क्योंकि लड़के ऊंची आवाज में बात करते हैं तथा उनकी आवश्यकता अधिक होती है इस कारण से वे कक्षा में अपनी प्रभुता बनाने में सफल हो जाते हैं। अभी तक भी लड़कों के द्वारा, गणित विज्ञान एवं अभियांत्रिकी में प्रवेश लिया जा रहा है जो कि लड़कियों की संख्या से अधिक है। प्रवेश लेने के यह प्रतिमान जीव विज्ञान, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषाओं के क्षेत्र में इसके विपरीत है क्योंकि इन विषयों में लड़कियां अधिक प्रवेश लेती हैं। वास्तविकता यह है कि महिलाओं को व्यावसायिक पाठ्यक्रमों गणित, विज्ञान, अभियांत्रिकी, मेडिकल तथा व्यवसाय के क्षेत्र में नेतृत्व करने की दृष्टि से कम करके आंका जाता है।

विद्यालय की कक्षाओं में अंतःक्रियाएं

कभी–कभी विद्यालय की कक्षाओं में होने वाली अंतःक्रियाओं के परिणामस्वरूप छात्रों में इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि वे ऐसा विश्वास करने लगते हैं कि कोई व्यवसाय विशेष किसी एक लिंग के लिए ही होता है। यह विश्वास एवं अवधारणा किसी छात्र के व्यक्तित्व एवं योग्यता पर आधारित नहीं होती है। बल्कि यह विशिष्ट प्रकार के स्तरीकरण के कारण होती है जो किसी एक व्यवसाय विशेष को दी जाती है। जैसे कि लड़कियों का काम खाना बनाना है, और यदि कुछ लड़कों का झुकाव खाने पकाने की कला की तरफ है तो भी वह खाने बनाने वाले शख्स का व्यवसाय चयन नहीं करते हैं। यदि किसी व्यवसाय में तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है तो लड़कियां इस प्रकार के पाठ्यक्रम को लेने से गुरेज करती हैं। यदि किसी लड़की की

इच्छा है कि वह हवाई जहाज उड़ाऐ तो भी उन्हें पायलट बनने से हतोत्साहित ही किया जाता है। इस प्रकार के प्रतीक शैक्षणिक निष्पादन से संबंधित नहीं होते हैं। पिछले कुछ वर्षों में देखा गया है कि लड़कियों के गणित एवं विज्ञान विषयों में प्राप्त अंकों की संख्या लड़कों से अधिक है। इस प्रकार की शैक्षणिक निष्पादन योग्यता को प्रारंभिक समय में नजर अंदाज ही किया जाता रहा है।

टिप्पणी

कक्षा में होने वाले पारस्परिक संवाद के कारण छात्रों के व्यावसायिक सही होने एवं उनकी संवेदनात्मकता के ऊपर गलत प्रभाव पड़ सकता है। छात्रों को यह भलीभांति समझ लेना चाहिए कि लिंग भेदभाव के द्वारा उनके द्वारा अर्जित किए जाने वाले रोजगार पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा एवं लिंग भेद आधारित गलत अवधारणा के द्वारा वह किसी अच्छे व्यवसाय को खो सकते हैं। वास्तव में किसी व्यावसायिक क्षेत्र में सफलता मुख्य रूप से किसी व्यक्ति की प्रबंधकीय गुणवत्ता एवं काबिलियत पर निर्भर करती है। स्वयं का आत्मविश्वास तथा अपना व्यक्तिगत विश्वास सही पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय को चयन करने में सहायक होता है जबकि सामाजिक तौर पर सही होना या ना होना जो कि लिंग पर आधारित होता है इसका उचित पैमाना नहीं होता है।

यदि विद्यालय की कक्षा में वातावरण बहुत ही सौहार्दपूर्ण है तो यह विशेष प्रकार के प्रभावी मंच के रूप में बन सकता है जिसके द्वारा किसी भी लिंग के छात्र के व्यक्तित्व उसकी उत्पादकता तथा काबिलियत को निखारने का अवसर प्रदान कर सकता है। कभी–कभी विद्यालय की कक्षा में इस प्रकार की बातचीत हो जाती है जिससे कि लड़की को मजबूरन गृहिणी के कार्य को स्वीकार करना पड़ता है तथा वह अपनी व्यावसायिक आकांक्षाओं को छोड़ने पर मजबूर हो जाती है क्योंकि ऐसी मान्यता एवं विश्वास है कि लड़कियां बेहतर गृहिणी हो सकती हैं। अनेक शोधकर्ताओं के अनुसंधान से यह स्पष्ट हो गया है कि विद्यालय की कक्षाओं में होने वाले पारस्परिक वार्तालाप एवं पारस्परिक क्रियाओं के कारण अध्यापकों एवं छात्रों के बीच इस प्रकार की जमीन तैयार होती है जोकि लिंगभेद से अछूती नहीं होती है। अनेक अंतःक्रियाओं में ऐसा भी देखा गया है कि लड़कियां सिर्फ लड़कियों के ही साथ बात करती हैं तथा वह अपने ही समूह में लड़कों के साथ सहृदयतापूर्वक बातें नहीं कर पाती हैं।

कक्षा में होने वाली अंतःक्रिया का महत्व

कक्षा में होने वाली विभिन्न प्रकार की अंतःक्रियाओं के द्वारा छात्र शैक्षणिक तथा अशैक्षणिक प्रकृति की प्रक्रियाओं में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इसके द्वारा छात्रों की सोचने समझने की शक्ति तथा सीखने के प्रक्रम का विकास होता है। इस प्रक्रिया से छात्रों का पारस्परिक सहयोगात्मक रवैया भी बढ़ता है। कक्षा में होने वाला पारस्परिक संवाद छात्रों एवं अध्यापकों के बीच होता है। छात्र, अध्यापक के मध्य होने वाला अंतःक्रियाकरण महत्वपूर्ण इसलिए भी होता है क्योंकि इसके द्वारा अध्यापक छात्रों को यह सिखाने का प्रयत्न करता है कि उनको अपने बुजुर्गों के साथ किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिए एवं उन्हें अपने अध्यापकों से किस प्रकार सीखना चाहिए। अतः अध्यापकों को बहुत सोच–समझकर वार्तालाप करना चाहिए एवं अध्यापक के वार्तालाप अथवा पारस्परिक संपर्क के दौरान कोई भी ऐसी बात नहीं होनी चाहिए जिससे कि लिंग भेदभाव दृष्टिगोचर हो। इसके अलावा कक्षा में छात्र परस्पर बात करते हैं। इस प्रकार की बातचीत के द्वारा छात्र सामूहिकता एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को सीखते

हैं। छात्रों के बीच होने वाले पारस्परिक वार्तालाप एवं संपर्क के द्वारा छात्र अपने अंदर संबंधों को बरकरार रखने तथा धैर्यपूर्वक दूसरे की बातें सुनना भी सिखाते हैं।

दोनों ही प्रकार के संवाद प्रक्रम में अध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि अध्यापक ही वार्तालाप अथवा संपर्क में होने वाले वातावरण में अवश्य ही सुधार कर सकते हैं। अध्यापक कक्षा में होने वाली गतिविधियों को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित कर सकते हैं जैसे कि किसी एक अभिनय को करना, विचार विमर्श करना, विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन करना इत्यादि। अध्यापक को छात्रों को इस प्रकार के विषय देने चाहिए जिनसे कि लिंग समानता का माहौल उत्पन्न ना हो सके। अध्यापक को यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि सभी प्रकार की गतिविधियों में दोनों ही लिंग के छात्र सम्मिलित हो सके।

टिप्पणी

कक्षा में होने वाली अंतःक्रियाओं में अध्यापक की भूमिका

अध्यापक का लक्ष्य एक व्यवस्थापक के रूप में भी हो सकता है जो छात्रों को परस्पर संवाद करने के लिए उत्साहित करता है। अध्यापक कक्षा में इस प्रकार का वातावरण बनाते हैं जो अध्ययन कार्य के लिए सौहार्दपूर्ण होता है। अध्यापक कक्षा में सकारात्मक वातावरण बनाकर रखने का प्रयत्न करते हैं जिसमें लिंगभेद जैसी किसी बात का खंडन किया जाता है। छात्र अध्यापक को अपना रोल मॉडल समझते हैं। अतः अध्यापक को अपने इसी रोल मॉडल के अनुरूप व्यवहार भी करना चाहिए।

अध्यापक विशेषज्ञ के रूप में भी कार्य करते हैं तथा वे छात्रों को इस प्रकार से मार्गदर्शन देते हैं तथा अपने मार्गदर्शन में हुए लिंग भेदभाव से पृथक लिंग समानता की भावना को प्रोत्साहित करते हैं। कक्षा में अध्यापक यह प्रश्न करते हैं कि सार्थक एवं उच्च गुणवत्ता का विचार विमर्श होना चाहिए। उदाहरण के रूप में ऐसा देखा गया है कि कुछ अध्यापक, लड़कियों द्वारा जवाब दिए जाने को उत्साहित नहीं करते हैं। इस प्रकार से किया गया प्रोत्साहन कक्षा में नकारात्मक माहौल उत्पन्न करता है। अध्यापकों को केवल पुस्तक पर आधारित ज्ञान ही नहीं देना चाहिए, वर्ण, जाति, धर्म के बंधनों से ऊपर उठते हुए लड़कियों को भी सभी प्रकार की अंतःक्रियाओं में सम्मिलित करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।

कक्षा का वातावरण किस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सम्मान तथा समझने की समझ का विकास हो सके। सभी छात्र एक दूसरे को सहयोग करने की भावना का विकास अपने अंदर उठकर न करें। छात्रों को लिंग संबंधित परिप्रेक्ष्य स्पष्ट रूप से समझा देना चाहिए जिससे कि वे सेक्स तथा लिंग के मध्य होने वाले अंतर को भली–भांति समझ सकें। छात्रों को अपनी इच्छा के अनुसार एवं अपनी योग्यता के आधार पर गतिविधियां करने की स्वतंत्रता प्रदान होनी चाहिए।

भारतवर्ष में विद्यालय एवं कक्षा अनेक ढांचागत आधारों पर एक दूसरे से पृथक होते हैं। कक्षाओं की व्यवस्था तथा इसका पर्यवेक्षण लिंग संबंधी बातों पर ध्यान देने के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अनेक शोधकर्ताओं ने अपने शोध कार्य द्वारा यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि कक्षा का वातावरण छात्रों में लिंगभेद समझती समस्याओं एवं रूढ़ियों को दूर करने में सहायक हो सकता है। इन शोधकर्ताओं ने यह भी परामर्श दिया है कि इस प्रक्रिया में अध्यापक का योगदान एवं भूमिका भी बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। इसकी प्रमुख आवश्यकता यह है कि अध्यापक को अपने व्यवसाय

में बहुत ही महत्वाकांक्षी होना चाहिए। यदि कक्षा में सौहार्दपूर्ण वातावरण होगा तो सकारात्मक पर्यवेक्षण के द्वारा बहुत अच्छे संबंध लड़के तथा लड़कियों में बन सकते हैं तथा उनके भविष्य की बहुत कुछ बुनियाद वहां पर रखी जा सकती है।

लड़के एवं लड़कियों में अनुशासन बनाने का प्रक्रम

टिप्पणी

हाई स्कूल तथा कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने में लड़के तथा लड़कियों के बचपन की व्यावहारिक समस्याओं का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बोस्टन की यूनिवर्सिटी के द्वारा किए गए एक शोध में यह बात समझ आई है। व्यावहारिक समस्याएं वाले बच्चों की पढ़ाई के छूट जाने की संभावना अधिक होती है। इस अध्ययन में यह पाया गया कि व्यावहारिक समस्याओं वाले बच्चों को जिनमें लड़के तथा लड़कियों दोनों सम्मिलित हैं अधिक दंड दिया जाता है। इसके अतिरिक्त लड़कों की कक्षा में आवश्यक हाजरी भी होती है जिसके कारण ही उन्हें इस व्यवहार के कारण दंडित किया जाता है। कुछ अन्य निष्कर्षों के अनुसार प्रारंभिक विद्यालयों में लड़कों के ऊपर स्कूल के सहपाठी छात्रों का नकारात्मक दबाव लड़कियों की अपेक्षा अधिक होता है। वहीं पर हाई स्कूल की पढ़ाई के दौरान उनके अच्छे अंक प्राप्त करने की पुनरावृत्ति तथा निम्न शैक्षणिक महत्वकांक्षाएं होती हैं।

क्या लिंगों के लिए अलग–अलग अनुशासन विधि होनी चाहिए?

अध्यापक इस बात को लेकर आश्चर्य करते हैं कि लड़के तथा लड़कियों के लिए अलग–अलग प्रकार का अनुशासन होना चाहिए? इस प्रकार के विषय पर एक सामान्य विचार बना कि यदि कोई एक बच्चा दुर्व्यवहार करता है तो क्या उसे दंड मिलना चाहिए। यह दंड उस बच्चे के लिंग पर आधारित नहीं होना चाहिए वरन उसकी क्रिया के अनुसार होना चाहिए। अकसर यह देखा गया है कि अध्यापक यह कहते हैं कि लड़कियों को ऐसा करना चाहिए तथा लड़कों को ऐसा करना चाहिए तथा दोनों एक जैसा नहीं होना चाहिए। अतः यदि कोई छात्र किसी एक ही गलती को करते हुए पाया जाता है तो यदि वह लड़का है तो उसको प्रथम दंड दिया जाता है और यदि वह लड़की है तो उसके लिए अलग प्रावधान किया जाता है। देखा गया है कि लड़कों को बहुत कठोरता के साथ दंड दिया जाता है जबकि लड़कियों के मामले में ऐसा नहीं होता है। कई बार ऐसा होता है कि कोई अध्यापक किसी छात्र को शैक्षणिक क्षेत्र में बेहतर करने के लिए सिर्फ सावधान करके ही छोड़ देते हैं। कई बार इस प्रकार के भेदभावपूर्वक रवैये से एक प्रकार का नकारात्मक वातावरण कक्षा में बन जाता है जिसके लिए दूसरे लिंग के छात्र को उत्तरदायी माना जाता है तथा इसे लिंग के साथ संबंधित समस्या के रूप में देख लिया जाता है। ऐसी स्थिति में अध्यापक को बीच का रास्ता अख्तियार करना चाहिए तथा उसे किसी भी लिंग के छात्र के साथ एक ही प्रकार का रुख अपनाना चाहिए।

विद्यालय को चाहिए कि वह समय–समय पर इस प्रकार के आयोजन करें कि वह गलती करने वाले छात्रों को समझाने बुझाने का कार्य कर सके जिससे कि छात्रों में एक सकारात्मक विचारधारा बन सके तथा वे अपनी गलती का एहसास करके उसमें सुधार कर सकते हैं। इसके लिए अध्यापकों का प्रशिक्षण भी आवश्यक होता है।

क्योंकि छात्र अपना अधिकांश समय विद्यालय में ही व्यतीत करते हैं अतः अध्यापक की भूमिका इस दैनिक कार्य में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। अध्यापक, छात्रों

के रोल मॉडल होते हैं तथा वे विपरीत लिंग के प्रति दृष्टिकोण बनाने में भी बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। छात्रों के लिए अध्यापक को कक्षा में इस प्रकार का वातावरण बनाना चाहिए जिससे कि समानता का संदेश प्रसारित हो तथा सभी छात्र एक प्रकार से समझे जाएं। यदि कोई अध्यापक छात्रों के साथ लिंग भेद करते हुए अध्यापन का कार्य करता है तथा लड़का या लड़की देखकर उसकी योग्यता का निर्धारण करता है तो ऐसा अध्यापक शिक्षा के लिए योग्यता तथा उसके रुझान को हानि पहुंचा सकता है।

टिप्पणी

विद्यालय का प्रमुख लक्ष्य छात्रों में जन संबंधी शैक्षणिक विज्ञान तथा छात्र की विशेष योग्यता का विकास करना होता है जिससे कि छात्र भविष्य में जाकर आदर्श नागरिक बन सके तथा राष्ट्र के विकास एवं निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में समझते हुए योगदान कर सकते हैं। विद्यालय को आवश्यक रूप से सभी छात्रों को बिना लिंग भेदभाव किए हुए एक समान अवसर प्रदान करने चाहिए। शिक्षा के माध्यम से छात्र अपना उज्ज्वल भविष्य बना सकते हैं जिसके लिए उन्हें सिर्फ अपने शैक्षणिक विषय सामग्री एवं पाठ्यक्रम से ही वास्ता नहीं होना चाहिए वरन उनको समाजीकरण की कला में भी दक्ष हो जाना चाहिए। अध्यापन करने वाले व्यक्ति का यह उद्देश्य भी हो जाता है कि वह छात्र को विभिन्न प्रकार के सामाजिक संबंधों के बारे में भी सूचित करें जो विद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद जीवन पर्यंत उसके काम आती रहे।

अपनी प्रगति जांचिए

7. शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक एवं शिक्षार्थी के अलावा पाठ्यक्रम को भी सम्मिलित करके शिक्षा को 'त्रिमुखी' प्रक्रिया का नाम किसने दिया?

   (क) स्मिथ (ख) जॉन डीवी

   (ग) नेल्सन (घ) इनमें से कोई नहीं

8. राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान कब प्रारंभ किया गया था?

   (क) 2002 (ख) 2005

   (ग) 2009 (घ) 2011

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (घ)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ख)
8. (ग)

2.7 सारांश

टिप्पणी

बचपन में बालकों को यह पता होता है कि वे भविष्य में जाकर क्या बनेंगे, यह पूर्व निर्धारित ही होता है। बालकों को उनके लिंग के आधार पर नाम दिए जाते हैं। बालकों को लिंग के आधार पर ही प्रतीकात्मक चिह्न प्रदान किए जाते हैं। बचपन में बालक को खेलने के लिए जो खिलौने दिए जाते हैं वे भी लिंग के आधार पर ही होते हैं। ये खिलौने समाज की मान्यता के अनुसार ही बच्चों को दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए लड़कियों के लिए गुड़िया तथा लड़कों के लिए कार के खिलौने दिए जाते हैं। समाज में व्यक्ति बालक के लिंग के बारे में पूछने के बजाय वह देख कर ही बालक की पहचान कर सकते हैं। समाज में व्यक्ति बालक के लिंग की पहचान बालक के रुझान को देखकर कर लेते हैं। हमारे समाज में व्यक्तियों द्वारा इस तथ्य को भी महत्व दिया जाता है जिसके द्वारा वह किसी बच्चे के लिंग को इंगित कर सकते हैं।

लैंगिक परिप्रेक्ष्य के द्वारा यह आकलन करने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्तिगत आधार पर मनुष्य के लिंग का तथा उसके संबंधों का क्या प्रभाव पड़ता है। लैंगिक परिप्रेक्ष्य का अनेक प्रकार की नीतियों, योजनाओं, परियोजनाओं, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने का सीधा एवं प्रभावी प्रभाव पड़ता है। लैंगिक परिप्रेक्ष्य का संपूर्ण सामाजिक प्रकरणों पर प्रभाव पड़ता है तथा यह समाज के किसी भी व्यक्ति के लिए सभी पहलुओं का एक केंद्रीय तत्व होता है। किसी सही परिप्रेक्ष्य के द्वारा समाज में किसी भी महिला अथवा पुरुष के दैनिक जीवन में एवं व्यक्तिगत जीवन में आर्थिक तथा सामाजिक लाभ पहुंचाया जा सकता है। अनेक समाजशास्त्रियों के अनुसार नर एवं मादा के मध्य पाए जाने वाले जैविक अंतर को ही अंतर के रूप में समझा जाता है तथा यह प्राकृतिक होता है। यही सामाजिक विभेद लैंगिक विभेद कहलाते हैं। इन विभेदों के द्वारा नर तथा मादा के मध्य असमानताओं को भी व्यक्त किया जाता है, हालांकि उनके प्रभाव बहुत ही विविध प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार की योनि श्रेणी एक अपरिवर्तनीय जैविक गुणवत्ता होती है जो कि पूरी सृष्टि में एक समान रूप से विद्यमान है। इसके विपरीत लैंगिक स्तर समाज के ऐतिहासिक संबंधों में भी देखा जा सकता है।

स्त्री शिक्षा लैंगिक असमानता को दूर करने का महत्वपूर्ण उपाय है। वैसे तो वर्तमान समय में स्त्री एवं पुरुष दोनों के हस्तक्षेप के बिना समानता की अवधारणा एक कोरी कल्पना है परंतु चूंकि असमानता का दंश स्त्री को अधिक झेलना पड़ता है इसलिए असमानता को दूर करने के जितने प्रयास स्वयं स्त्रियों द्वारा किए जाएं उतना बेहतर होगा।

अधिकांश लोगों का मानना है कि लिंग के बारे में बच्चे की धारणा और इसकी पहचान विकसित करने में परिवार सबसे प्रभावशाली कारक है। हालांकि, सहपाठी एक और महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि यह उसके परिवार के बाद बच्चे की सामाजिक दुनिया का एक हिस्सा बन जाता है। शब्द "सहपाठी" दो या दो से अधिक व्यक्तियों और परिवर्तनों के बीच बातचीत का संदर्भ देता है जो पारस्परिक विचार–विमर्श के कारण होता है। मनोवैज्ञानिक, रॉय बॉयमेस्टे और मार्क लेरी ने निष्कर्ष निकाला है कि व्यक्तियों को एक–दूसरे के साथ संबद्ध करने की मूल आवश्यकता है। बच्चों के

साथ–साथ वयस्कों में, इस इच्छा से संगति और सहकर्मी समूहों का निर्माण होता है। सामाजिक पहचान सिद्धांत के अनुसार, पीयर ग्रुप स्वयं–मूल्यांकन को जन्म देती है और व्यक्ति अपनी सदस्यता बनाए रखने के लिए समूह के मानकों का पालन करने के लिए उत्सुक है।

टिप्पणी

पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया में चूंकि शिक्षक प्रभावशाली कार्यकर्ता है। इसलिए उपयुक्त और पर्याप्त शिक्षक प्रशिक्षण ज़रूरी है, जो पूर्व–सेवाकालीन और सेवाकालीन दोनों ही कार्यक्रमों पर लागू होगा। सेवाकालीन प्रशिक्षण को तो पाठ्यक्रम विकास प्रक्रिया का आंतरिक अंग बनना होगा और प्रशिक्षण में अनिवार्य रूप से दोनों तत्त्वों, शिक्षण प्रविधि और मूल्यांकन प्रक्रिया को शामिल करना होगा।

पाठ्यक्रमागत परिवर्तनों के अनुसार पाठ्यक्रमों की रचना और विकास से शिक्षकों को अलग रखने से यदि कोई परिवर्तन की संभावना हुई थी तो वह इस पूरे परिदृश्य में बहुत मामूली किस्म का परिवर्तन होगा। पाठ्यक्रम परिवर्तन के प्रति प्रेरित करेंगे और उनमें पाठ्यक्रम के प्रति 'अपनत्व' पैदा करेंगे जिन्हें कि स्वयं उन्हें ही लागू करके आजमाना है।

पाठ्यक्रम विकास की दृष्टि से 1986 व इससे पूर्व की शिक्षा नीतियों में, शैक्षिक अवसरों की समानता की जो बात कही गई है उसका तात्पर्य लैंगिक भेदभाव को कम करने से है। शिक्षा इस भेदभाव को कम करे और अंततः उसे मिटाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

एनसीईआरटी के अनुसार नई पाठ्यपुस्तकें लिखते और तैयार करते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि बच्चों को कम उम्र से ही लैंगिक संवेदनशील बनाना है तथा उन्हें लैंगिक पक्षपात से दूर रखना है। इसके पीछे सम्पूर्ण भावना है कि विद्यार्थी यह महसूस कर सकें कि महिलाएं पुरुषों से कम योग्य अथवा समर्थ हैं, इस सोच का कोई आधार नहीं है। वर्तमान संदर्भ में उठने वाले मुद्दों के आधार पर कहा जा सकता है कि एनसीएफ़ 2005 में प्रस्तावित सुधार स्वागत के योग्य है और इसके आधार पर जिन पुस्तकों का निर्माण किया गया वह पिछली पाठ्यपुस्तकों से अधिक बेहतर और लैंगिकता के प्रति संवेदनशील नज़र आती हैं। परंतु लैंगिक दृष्टि से किए गए शोध अभी भी ये बताते हैं कि अभी भी बहुत सारी पाठ्यपुस्तकों में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जहां लैंगिक रूढ़िबद्धताएं दर्शाई गई हैं। स्त्री एवं पुरुष में से पुरुष को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। स्त्री एवं पुरुषों की छवियों को पारंपरिक तरीके से दर्शाया गया है।

शिक्षा में गुणवत्ता और समानता निकटता से जुड़े हैं। जो छात्र गरीब परिवारों के हैं, सबसे अधिक संभावना में, उनके माता–पिता अशिक्षित होंगे और स्वयं बहुत कुछ नहीं पढ़ पाएंगे। इसलिए, उन्हें शिक्षक से अधिक ध्यान देने की जरूरत है। पर्याप्त शिक्षा की अनुपस्थिति में, ये छात्र बुरी तरह से प्रदर्शन और शिक्षाविदों में रुचि खोने के लिए बाध्य होते हैं। लड़कियों में लड़कों की तुलना में शिक्षकों की गुणवत्ता से प्रभावित होने की अधिक संभावना होती है। कई अवसरों पर, शिक्षा आज के रोजगार और वयस्कता के लिए छात्रों को तैयार करने में असमर्थ होती है क्योंकि जीवन जीने के लिए और आत्मनिर्भर बनने के लिए उपयुक्त कौशल प्रदान नहीं किए जाते हैं।

भारतीय संविधान में धारा 15(3) में स्त्रियों और बच्चों के लिए शिक्षा की विशेष व्यवस्था बनाने की सरकार को छूट दी है। धारा 45 में 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए

मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। यह फैसला सुप्रीम कोर्ट द्वारा लिया गया था जिसमें शिक्षा के अधिकार को मूलाधिकार माना गया था। और इसको संविधान की धारा 21 में दिए गए जीने के अधिकार के साथ जोड़ दिया गया है। धारा 46 में कमजोर वर्गों खासकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की शिक्षा और आर्थिक हितों के संरक्षण पर जोर दिया गया है।

टिप्पणी

शिक्षा में लैंगिक भेद की समस्या का समाधान करना आसान नहीं है। असमानता की परतों एवं जाति तथा समुदाय आधारित लामबंदी की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए नामांकन एवं बदलाव के मानक सूचकों से परे जाने एवं स्कूलों में बच्चों के अनुभव को गहराई से देखने की आवश्यकता है। शिक्षा में लैंगिक समानता की प्रगति मापने वाले उपकरण समाज में व्याप्त तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था द्वारा बढ़ाई जा रही असमानताओं की बनावट के बारे में बहुत कम बताते हैं। शिक्षा में लैंगिकता एवं सामाजिक समानता के मुद्दों को ऐसे ढांचे की आवश्यकता है, जो विषमांगी लैंगिक यथार्थों एवं विविध दोषों को प्रदर्शित कर सके।

कक्षायी प्रक्रियाएं, विद्यालय का ऐसा अभिन्न अंग है, जिस पर पूरी शिक्षा व्यवस्था की नींव टिकी हुई है। कक्षायी प्रक्रियाएं दिखने में एकदम सहज प्रतीत होती हैं परंतु यदि गहराई से उनका विश्लेषण किया जाए तो किसी भी विषय की कक्षा में ऐसी बहुत सारी बातें होती हैं जिनमें लैंगिक भेदभाव एवं लैंगिक रूढ़िबद्धता निहित होते हैं और साथ ही ये प्रक्रियाएं लैंगिक भूमिकाओं को भी बढ़ावा देती हैं। इन प्रक्रियाओं में पाठ्यपुस्तकों द्वारा शिक्षण, शिक्षक द्वारा करवाई गई विभिन्न गतिविधियां, शिक्षक द्वारा छात्रों से संवाद के लिए प्रयुक्त की गई भाषा, विभिन्न कार्यों में विद्यार्थियों की भागीदारी, मॉनिटर की भूमिका आदि शामिल है। एक शिक्षक को स्वयं सभी लिंगों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।

अध्यापक विशेषज्ञ के रूप में भी कार्य करते हैं तथा वह छात्रों को इस प्रकार से मार्गदर्शन देते हैं तथा अपने मार्गदर्शन में हुए लिंग भेदभाव से पृथक लिंग समानता की भावना को प्रोत्साहित करते हैं। कक्षा में अध्यापक यह प्रश्न करते हैं कि सार्थक एवं उच्च गुणवत्ता का विचार विमर्श होना चाहिए। उदाहरण के रूप में ऐसा देखा गया है कि कुछ अध्यापक, लड़कियों द्वारा जवाब दिए जाने को उत्साहित नहीं करते हैं। इस प्रकार से किया गया प्रोत्साहन कक्षा में नकारात्मक माहौल उत्पन्न करता है। अध्यापकों को केवल पुस्तक पर आधारित ज्ञान ही नहीं देना चाहिए, वर्ण, जाति, धर्म के बंधनों से ऊपर उठते हुए लड़कियों को भी सभी प्रकार की अंतःक्रियाओं में सम्मिलित करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **संस्कृति** : सीखे हुए व्यवहार–प्रकारों की उस समग्रता को, जो किसी समूह को वैशिष्ट्य प्रदान करती है, संस्कृति की संज्ञा दी जाती है।
- **जाति** : जाति एक प्रकार की व्यवस्था है जो हमारे समाज को कई पृथक इकाइयों में विभाजित करने का मापदंड है।

- **कक्षायी प्रक्रियाएं** : विद्यालय में कक्षा में चलने वाले सभी गतिविधियां, शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया, खेल–कूद, शिक्षक–विद्यार्थी एवं विद्यार्थी–विद्यार्थी की अंतःक्रियाएं आदि कक्षायी प्रक्रियाओं के अंतर्गत आते हैं।
- **शिक्षणशास्त्र** : शिक्षाशास्त्र के अंतर्गत अध्यापन की वे सभी शैलियां और विधियां आती हैं जिनकी मदद से अध्यापक कक्षा में पढ़ाता है।
- **समाजीकरण** : वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से हम समाज का सदस्य बनना सीखते हैं।
- **लैंगिक पहचान** : समाज द्वारा निर्मित पहचान जहां समाज लिंग के आधार पर एक विशेष प्रकार की छवि गढ़ देता है।
- **लैंगिक असमानता** : विभिन्न लिंगों के बीच होने वाले किसी भी प्रकार के भेदभाव को लैंगिक असमानता कहा जाता है।

टिप्पणी

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा कब हुई थी?
2. लड़कियों की शिक्षा में असमानता के प्रमुख कारण बताइए।
3. पाठ्यक्रम में लैंगिक भेदभाव के प्रमुख पहलुओं को स्पष्ट कीजिए।
4. पाठ्यपुस्तकें एवं लैंगिकता पर टिप्पणी कीजिए।
5. लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने वाले प्रमुख संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. लैंगिकता के दृष्टिकोण से पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करते हुए किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? उल्लेख कीजिए।
2. विद्यालय में लैंगिक असमानताओं को समाप्त करने में एक अध्यापक की क्या भूमिका होती है? स्पष्ट कीजिए।
3. कक्षायी प्रक्रियाएं किस प्रकार लैंगिक असमानता को प्रोत्साहित करती हैं? वर्णन कीजिए।
4. पाठ्यक्रम में लैंगिकता के मुद्दों पर प्रकाश डालिए।
5. लड़कियों की स्कूली शिक्षा में लैंगिक पूर्वाग्रह पर टिप्पणी कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. Dr. Senllina, *Gender Analysis of State Policies : A Case Study of Chhattisgarh.*
2. R. Govinda, *Towards Gender Equality in Education : Progress and Challenges in Asia-Pacific Region,* National University of Educational Planning and Administration, New Delhi.

टिप्पणी

3. Bhattacharjee, Nandini (1999), Through the Looking Glass : Gender Socialisation in a Primary School in T.S. Sarswathi (ed). *Culture, Socialization and Human Development : Theory Research and Applications in India,* Sage: New Delhi.
4. Geetha, V. (2007), *Gender,* Stree: Calcutta.
5. Ghai. Anita (2008) Gender and Inclusive Education at all levels in Ved Prakash & K. Biswal (ed.), *Perspectives on Education and Development: Revising Education Commission and After,* National University of Educational Planning and Administration, New Delhi.
6. Jeffery. P. and R. Jeffery (1994), Killing My Heart's Desire: Education and Female Autonomy in Rural India. in Nita Kumar (ed.), *Women as Subjects: South Asian Histories.* New Delhi: Stree in association with the Book Review Literacy Trust: Kolkata, pp 123-171.
7. Ghai Anita (2006), Education in a Globalising Era: Implications for Disable Girls. *Social Change,* 30(3) pp 161-176.
8. Mehrotra. D.P., India: Sexism and Patriarchy in the Textbooks, Good Girls are submissive and subsidiary, Thursday 22 November 212. South Asia Citizen's Web